महाभारत के गूढ रहस्य

संशोधित वर्धित

द्वितीय संस्करण

ग. वा. कवीश्वर

इस शोधकार्य पर कुछ संमतियाँ :

"विश्व संस्कृति में एक महत्वपूर्ण योगदान .... इतिहास की बहुत बड़ी जटिल गुत्थी सुलझाने का प्रयास।" - विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

"वस्तुत: आप जानते है महाभारत को" - प्रधानमंत्री अखिल भारत पंडित महापरिषद, वाराणसी.

"महाभारत की रचना के बाद ऐसा महान कार्य कोई भी व्यक्ति या संस्था से संभव नही हुआ. महाभारत संबंधी कूटरहस्य भेदन के लिए परमात्मा ने आपको चुना" - पं. मुरलीधर हरिहरो, अध्यक्ष प्राच्यविद्याशोध मंडल, रायपुर; अध्यक्ष भारतीय ज्योतिष परिषद, राजनंदगांव

(आवरण के पृष्ठभाग पर चालू)

हिंदी के साथ मराठी एवं अंग्रजी मे भी प्रकाशित इस शोधकार्य कुछ संमतियाँ।

(आवरण के अग्रभाग से चालू)

"आपके वैदुष्यपूर्ण व्याख्यानों से श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (दिल्ली) गौरवान्वित हुआ है। आपके मन्तव्य विस्तार के साथ विद्वत्समूह के सामने आने से .... अब तक की उलझी हुई गुत्थियां सुलझ जायेंगी। पाश्चात्य विद्वानों की भी आँखें खुलेंगी। महाभारतके असंख्य श्लोकों का तात्पर्य भी स्पष्ट होगा।" - महामहोपाध्याय पं. परमेश्वरानंद शास्त्री, विद्याभास्कर, दिल्ली.

"महान शोधकार्य - आप जैसे विद्वानों से विक्रम विश्वविद्यालय विशेषत: और भारतवर्ष सामान्यत: गौरवान्वित हो रहा है"। डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, उज्जेन

"व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति वेत्ति चायं कवीश्वर:। रहस्यं व्यासकूटानां तुरीयो वेत्ति वा न वा॥" - पंडित उपेन्द्रनाथ राय, शास्त्री, मेखेली (जलपैगुडी), पश्चिम बंगाल.

" Very original " - Editorial note in the book 'Age of Bharata War'.

'This one man probe .... The discovery which is his own.... Events which drove many of our learned scholars into a blind lane and which baffled all attempts so far have been explained by him and linked into a cogent story...." - **Nagpur Times**

" Most revealing and important for future research"- Dr. Stella Kramrisch, Professor of Indian Culture, New York, U.S.A.

"आपने इस विषय पर जो नया प्रकाश डाला है-वह सर्वथा उपादेय है" - डॉ. संपूर्णानंद, भूतपर्व मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश.

"G.W. Kaveeshwar has propounded the theory that though the Bharata war was actually fought for 18 days, its duration was of 35 days, every alternate day being the day of rest ..... interpreting all the difficult verses in this regard he has very convincingly explained the whole matter" - ' The Study of Indian History and Culture ', Vol. I., pp. 302-308.

'महाभारत युद्धतिथियों पर सर्वोतम प्रकाश' - तरुण भारत, मराठी दैनिक, नागपुर

'आचार्य ग. वा. कवीश्वर ने महाभारत के युद्धविषयक वचनों का सूक्ष्म अध्ययन कर वे सब सुसंगत है यह सविस्तर बताया है। यह प्रथम विस्तारपूर्वक प्रतिपादन करने का श्रेय पूर्णतया प्रा. कवीश्वर को है ... प्रचलित कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ (गीताजयंती तिथि), भीष्मनिधन तिथि, बदलनी पडेगी। (मराठी) - महामहोपाध्याय डॉ.वा.वि मिराशी, नागपुर

'प्रा.ग.वा.कवीश्वर ने गहन अध्ययन द्वारा महाभारत की आज तक गूढ रही तिथियों की साधार सुसंगति लगाने का आश्चर्यजनक कार्य किया है। इस मौलिक कार्य के लिये महाभारत के चिकित्सक अभ्यासक नि:संदेह आपके ऋणी होंगे। - धर्मभास्कर (मराठी) मासिक, मुंबई

PRINT AT : A NICE GRAPHICS 367054

महाभारत के गूढ रहस्य

संशोधित वर्धित
द्वितीय संस्करण

ग. वा. कवीश्वर

२००१

मूल्य : दो सौ रुपये

प्रकाशक
ग. वा. कवीश्वर
३४, जानकी नगर
इन्दोर -१
मध्य प्रदेश
४५२ ००१

मुद्रक
ए नाइस ग्राफिक्स
२३३, राज प्लाजा,
छावनी, इन्दोर -१
मध्य प्रदेश
४५२ ००१

प्रस्तावना

महाभारत के विविध कूट स्थलों का साधार सुसंगत स्पष्टीकरण करने वाले इस पुस्तक का प्रथम संस्करण समाप्त होने से, यह संशोधित वर्धित द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है। प्रथम संस्करण में केवल युद्धकाल संबंधी विवेचन होकर, पांडवों के वनवास अज्ञातवास काल का विवेचन 'महाभारत के तेरह वर्ष' शीर्षक से अलग छापा था; अब वह भी इस में समाविष्ट किया है। तथा अंतिम भाग में दो नये प्रकरण जोडे है। इसके अलावा यत्र तत्र भी कुछ सुधार किये है।

समग्र महाभारत अब कालगणना, ज्योतिष, तथा प्रसंगवर्णन की दृष्टियों से (क्वचित एक दो स्पष्टतया प्रक्षिप्त प्रतीत होनेवाले अपवाद छोडकर) पूर्ण सुसंगत अतिशय मार्मिक रचना सिद्ध हो रहा है; तथा इस पर विसंगति के, असंभवता के, विभिन्न लेखको की मिश्रित रचना होने के, किये गये आरोप निराधार सिद्ध हो रहे है।

इस विवेचन का दीर्घकालीन महत्त्व देखकर, मैने इसमें प्रस्थापित निष्कर्षो के आधार मे महाभारत के श्लोक विपुलता से उद्धृत किये है। तथा भविष्य मे किसी जिज्ञासु द्वारा कुछ शंकाए लेने का कहीं कहीं संभव सोचकर, उनका भी निराकरण कर दिया है। इस कारण कतिपय विवेचन विशेष सूक्ष्म हुआ है। यदि पाठक चाहे तो प्रथम वाचन में वे स्थल छोडकर शेष वाचन किया जा सकता है। ऐसे कुछ शीर्षकों का उल्लेख करता हूं -पृ. २२, 'एक पाठभेद'; पृ. २७ 'ग्रीष्म ऋतु के प्रमाण'; पृ. ३६, 'एक स्पष्टीकरण'; पृ. १५४, 'क्या महाभारत का उत्तरायण प्रारंभ श्रवणारंभ पर होता था ?'; पृ. १६६, 'निरयन कालगणना'; पृ. १६७, 'माघ पूर्णिमा और उत्तरायण प्रारंभ'; पृ. १८०, 'एक संदिग्ध श्लोक का स्पष्टीकरण'; पृ. २११, 'एक श्लोक का भिन्न अर्थ'।

इस शोधकार्य को मान्यता देकर जिन विद्वानों ने, संस्थाओं ने, तथा नियतकालिको ने मुझे प्रोत्साहित किया उनका में हृदय से आभारी हुं। इसी के साथ कही कही से आलोचना भी अपेक्षित ही थी। इसमे जो वास्तविक जिज्ञासु वृत्ति की थी उसका समाधान मैने किया। किंतु कुछ आलोचना विपर्यस्त एवं मूलतः निराधार थी। उसके एक दो उल्लेख यहाँ करता हूँ।

महाभारत के अनुसार अभिमन्यु वध के दिन सायंकाल अर्जुन ने 'श्वः' (अगले दिन की लडाई मे) सूर्यास्त पूर्व जयद्रथ वध करूंगा या अग्नि प्रवेश करूंगा ऐसी घोर प्रतिज्ञा करने पर, अति चिंताग्रस्त श्रीकृष्ण का अर्जुन से रात्रि मे संवाद चालू रहा; और अंत मे (अशुभ कबंध चिन्ह से युक्त) सूर्यबिंब दिखने लगा, अर्थात रात्रि समाप्त होकर दूसरा दिन आरंभ हुवा, तब अर्जुन की सूचना से श्रीकृष्ण शोकग्रस्त सुभद्रा का सान्त्वन करने अर्जुन के शिबिर गये; तथा, वहाँ से वापिस आने पर वे दोनो, तथा अन्य राजे भी अपने शिबिरों को चले गये; इससे यह दिन विश्रामदिन सूचित होता है, क्योंकि "यदि वह दिन प्रत्यक्ष लडाई का होता तो इस समय वे शिबिरों को नही, अपितु सीधे रणभूमि पर लडने जाते" ऐसा मैने प्रतिपादित किया है (देखिये पृ १०२-१०४)। अब एक आलोचक कहते है कि ,मेरा यह प्रतिपादन 'युद्ध प्रथा के संबंध मे अज्ञान का द्योतक है, सभी सैनिक एक ही समय लडाई में भाग नही लेते है, कुछ सेनाएँ राखीव होती है'। महाभारत युद्ध में श्रीकृष्णार्जुन कभी कभी 'राखीव' रहते थे, और इसलिए उक्त प्रातःकाल वे युद्धभूमि पर न जाते शिबिर को गये, ऐसा माननेवाले इस आलोचक को क्या उत्तर देना ?

इसी प्रसंग के संदर्भ में एक और आलोचना का उल्लेख करता हूँ। 'पूज्यपाद श्री हरिहरानन्द सरस्वती श्री करपात्रीजी महाराज' के नाम से, उनके स्वर्गवास के बाद, "गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रांती" पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसकी भूमिका स्वामी निरंजन देव तीर्थ द्वारा लिखी होकर, संपादकीय दिग्दर्शन स्वामी निश्चलानंद द्वारा लिखा है। (कबंधयुक्त) सूर्यबिब दीखने लगा, अर्थात वह रात्रि समाप्त होकर दूसरा दिन शुरू हुवा (तब श्रीकृष्ण सुभद्रा का सान्त्वन करने गये) इस मेरे प्रतिपादन की आलोचना में, इस पुस्तक में (पृ.१३७) लिखा है, "सूर्य में कबंध का दृष्टिगोचर होना रात्रि में भी संभव है जैसे दिन न होने पर भी रात्रि में सोये हुये व्यक्ति को स्वप्न में दिन की घटनाओं का आभास होता है"। अब, सूर्यबिंब रात्रि में भी दृष्टिगोचर होना संभव है इस कथन पर में क्या कहूँ ?और जहां

तक स्वप्न की बात है , महाभारतकार स्पष्ट कहते है कि, उस रात्रि में चिंताग्रस्त श्रीकृष्णार्जुन को नींद नहीं आई (द्रोण पर्व ७७-१, मेरी पुस्तक में पृ १०२ पर उद्धृत)। इसके अलावा, वह सूर्यबिंब केवल श्रीकृष्णार्जुन को ही दिखा ऐसा महाभारतकार नहीं कहते। तो, क्या वहां उपस्थित सभी को नींद आ कर सभी को वैसा एक ही स्वप्न आया ? उक्त पुस्तक के भूमिकाकार कहते है कि, दिग्दर्शन कार स्वामीजी ने करपात्रीजी के निदेशों का निरन्तर चिन्तन तथा अनुसरण करते हुऐ इस ग्रंथ में परिपूर्ण उहापोह के साथ प्रत्येक घटना के साथ संबद्ध मास पक्ष, तिथि और दिन रात्रि के अवयवों की ठीकठीक संगति बैठाकर प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है। और दिग्दर्शनकार लिखते है कि, उक्त भूमिकालेखक ने कई स्थलों पर आवश्यक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किये है। यह परस्पर कथन देखते, कबंधयुक्त सूर्यबिंब रात्रि में भी दिख सकता था इस आशय का उक्त वचन, (तथा इस पुस्तक में मेरे प्रतिपादन की अन्य भी आलोचना,) कहां तक स्वयं विद्वद्वर्य करपात्रीजी का लेखन है, यह तो उक्त भूमिकाकार एवं दिग्दर्शनकारही जाने ! किन्तु , प्रयाग के कुंभ मेले में वाराणसी के धर्मसंघ द्वारा आयोजित महाभारत पर मैरे व्याख्यान स्वयं स्वामी करपात्रीजी ने श्रवण किये थे, तथा बाद में उन्होनें मेरी पुस्तक भी देखी।और मेरे विवेचन से वे प्रभावित हुए ऐसा पत्र मुझे आया। उपरोक्त भूमिका लेखक भी मेरे उन व्याख्यानों में उपस्थित थे; उनका पत्र आया कि मेरा सारा प्रतिपादन व्यर्थ है। वह पुस्तक पूज्य करपात्रीजी के नामपर छपी है इसलिए उक्त पंक्ति के बारे में मैने यह स्पष्टीकरण दिया; अन्यथा में उस आलोचना की उपेक्षा कर देता।

अस्तु। इस शोधकार्य में साधार प्रस्थापित कुछ प्रमुख निष्कर्ष संक्षेप में यहां निर्दिष्ट करता हूँ।

द्यूत की, अर्थात पांडवो के वनवासारंभ की, तिथी ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी होकर, अज्ञातवास समाप्ति तिथी ज्येष्ठपूर्व आधिक मास की वद्य अष्टमी थी। पांडवों ने अधिक मास समय सहित तेरा सौर वर्ष बराबर पूर्ण किये थे। किन्तु दुर्योधन ने उस संबंध में कुछ वाद उपस्थित किया, और पांडवों ने अज्ञातवास में १८ दिन कम बिताये ऐसा आरोप कर इन्द्रप्रस्थ राज्य वापिस करने इन्कार किया। परिणाम स्वरूप कुरुक्षेत्र युद्ध हुआ। इस प्रकार वह महायुद्ध १८ दिनों के कारण हुआ, और प्रत्यक्ष में १८ दिन लड़ा गया। किन्तु उन १८ दिनों मे एक एक अवकाश दिन होकर पूरा युद्धकाल ३५ दिन का था। युद्ध के ये अवकाश दिन पूर्णतया सिद्ध हुये है।

युद्धारंभ तिथी अर्थात गीताजयंती तिथी, वर्तमान में प्रचलित मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी न होकर, प्रत्यक्ष श्रीकृष्णवचनानुसार, उसके पूर्व की अमावास्या है। युद्धारंभ के समय चन्द्र चित्रा नक्षत्र में था। इसके बाद विभिन्न युद्धदिनों की महाभारत कार ने दी ग्रहस्थिति पूर्णतया सुसंगत होकर स्पष्ट की गई है।

बलराम यात्रा युद्धारंभ के सात दिन पूर्व पुष्य नक्षत्र पर आरंभ होकर, ठीक बयालीसवे दिन अंतिम भीम -दुर्योधन गदायुद्ध के समय श्रवण नक्षत्र पर समाप्त हुई।

प्रत्यक्ष लडाई के दसवे दिन भीष्म का रणभूमि पर पतन होकर, उन्होने शरशय्या पर अठावन रात्रि बिताई, और माघ पूर्णिमा के रात्रि समाप्ती समय उत्तरायण प्रारंभ पर प्राणत्याग किया। उस समय सूर्य उत्तराषाढा नक्षत्र में आठ दिन बिताकर स्थित था। इसके पूर्व पाच दिन भीष्म ने युधिष्ठिर को शरशय्या से धर्मोपदेश दिया।

महाभारत के कई श्लोको के प्रचलित अनुवाद इन निष्कर्षों के अनुरूप बदलना इष्ट होगा।

इस शोधकार्य में महाभारत के अनेकानेक गूढ कूटो का अब ससुंगत स्पष्टीकरण प्राप्त हो रहा है ऐसा मेरा कहना है। किंतु महाभारत का अध्ययन सदियों से, तथा अनेक भाषाओं मे, आस्थापूर्वक होते आया है। मेरी जानकारी मे आये अनेक पूर्व अध्ययनों का मैंने मेरे प्रतिपादन में उल्लेख किया है। किंतु उनके अलावा, अबतक उपेक्षित कहे गए मुद्दे पर किसी के अध्ययन में विचार इसके पूर्व किया देखने मे आया, तो उसपर भी ध्यान देना इष्ट होगा। ऐसे अनेकभाषी एवं दीर्घकालीन विषय विवेचन के संबंध में मौलिकता का निर्णय यथाकाल आप ही दिया जावेगा। तथा मुझे इसका भी भान है कि, वह दिया जाने बाद और कालप्रवाह मे उस बात का विशेष महत्व न रहकर, महाभारतकार महाविभूति की प्रासादिक वाणी एवं उसका मार्मिक आशय साधारणतया जनता की दृष्टि मे रहेगा, और रहना पर्याप्त होगा।

गीताजयंती तिथी - पौर्णिमान्त मार्गशीर्ष
(= अमावास्यान्त कार्तिक) अमावास्या
२५-११-२०००

ग. वा. कवीश्वर

अनुक्रमणिका

प्रार्थना

उपोद्घात, १

भाग १

निर्वासन के तेरह वर्ष

प्रकरण १

भीष्म का गूढ वचन

प्रकरण २.

अज्ञातवास समाप्ति का दिन

प्रकरण ३

वनवास आरंभ की तिथि

प्रकरण ४

तेरह वर्षों की गणना एवं क्रमबद्ध धटना

प्रार्थना



वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ
निर्विघ्नं कुरु मे देव शुभकार्येषु सर्वदा ॥

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

॥ श्री ॥

महाभारत के गूढ रहस्य

उपोद्घात

महाभारत विश्व साहित्य में कई दृष्टियों से एक अद्वितीय ग्रंथ है। परंपरासे प्रचलित धारणा के अनुसार महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास इसके रचियता माने जाते हैं। इसकी रचना के विषय में इस काव्य के प्रारम्भ में एक मनोरंजक कथा दी है। जब इस महाकाव्य के रचयिता ने इसका पूरा कथानक मन में तैयार कर लिया, तब काव्यरूप में उसको प्रत्यक्ष लिखने उन्होंने साक्षात श्रीगणेश से अनुरोध किया। गणेश ने शर्त रखी कि, उनकी लेखनी अविरत चलती रहकर काव्य रचना में विलंब के कारण लेखन में रुकावट नहीं आनी चाहिये। उत्तर में महाकवि ने भी शर्त रखी कि, गणेशजी ने प्रत्येक श्लोक उसका वास्तविक सुसंगत आशय समझने के बाद ही लिखना चाहिये। दोनों के इस शर्तो के विलक्षण संदर्भ में महाभारतकार ने अपनी काव्यरचना में स्थान स्थान पर ऐसे गहन कूट श्लोक करना प्रारम्भ किया कि, उनका गूढार्थ समझने में विद्या की देवता गणेश को भी कुछ समय सोचना पड़ता, ओर उतने में महाकवि आगे के कई श्लोक तैयार कर रखते। इस प्रकार रचना ओर लेखन का क्रम अविरत चलता रहा, और करीब एक लाख श्लोकों का यह विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य निर्माण हुआ !

इस कथा के साथ महाभारत में इन कूट श्लोकों के विषय में ये वचन भी हैं*—

ग्रंथग्रंथिं तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात्
यस्मिन् प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम् ॥ आदि पर्व, १-८०
अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ॥ —८१

''और फिर महामुनि द्वैपायन व्यास ने उत्कंठापूर्वक अपनी रचना में जटिल गुत्थियाँ निर्माण कर दी, जिनके बारे में उन्होंने प्रतिज्ञापूर्वक कहा कि, इसमे आठ हजार आठ सौ ऐसे (कूट) श्लोक हैं जिनका वास्तविक आशय मैं जानता हूं, (मेरा पुत्र) शुक जानता है, और (मेरा शिष्य) संजय अंशत: ही जानता होगा''।

उक्त दन्तकथा में सार हो या न हो, यह तो सर्वप्रसिद्ध हैं कि, महाभारत काव्य में कई दुर्गम गूढ श्लोक हैं, जिनका वास्तविक आशय खोजने के प्रयास विद्वानों द्वारा सदियों

* इस पुस्तक में महाभारत के श्लोक गीता प्रेस (गोरखपुर) की आवृत्ती से लिये हैं। किन्तु मैंने उनकी तुलना पुणें की भांडारकर प्राच्य अनुसंधान संस्था द्वारा प्रकाशित महाभारत से भी कर ली है। उसमें प्राप्त यत्र तत्र शाब्दिक पाठभेद से मेरे मुख्य प्रतिपादन पर प्राय: कोई असर नहीं पड़ता। जहाँ एक दो स्थान पर विशेष महत्त्व का भेद दिखा, मैंने उसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

से किये जा रहे हैं। इन कूटस्थलों के कारण महाभारत काव्य में कई स्थानों पर परस्पर विसंगतिओं के आभास निर्माण हो गये हैं ; जिनको देखकर अनेक विद्वान विचार व्यक्त करते हैं कि यह महाकाव्य एक से अधिक व्यक्तियों की रचना है। किन्तु इनमें से प्राय: सब कूटों के सुसंगत हल अब प्राप्त हो गये हैं, और महाभारत कथा का एक प्रदीर्घ, सूक्ष्म, किन्तु पूर्ण सुसंगत चित्र हमारे सामने खड़ा होता है।

महाभारत में रखे ये कूट विविध प्रकार के हैं। कुछ दर्शनशास्त्र विषयक होकर वे मुख्यत: भीष्म पर्व मे श्रीकृष्णार्जुन गीतासंवाद में आते हैं। कुछ कूट प्रसंगवर्णन मे होकर कुछ कूट स्थलनिर्देश के संबंध मे भी हैं। फिर, महाभारतकार ने ज्योतिष के विषय मे भी कूट कर रखे है। और इन सब के अलावा वे गहन कालगणनात्मक कूट हैं, जिनका संबंध महाभारत कथा के अनेक प्रमुख घटनाओं की तिथियों से एवं कालानुक्रम से है।

इनमें से दार्शनिक कूटों की चर्चा प्रस्तुत पुस्तक में नहीं है *। इस पुस्तक के प्रथम भाग में युद्धपूर्व, यानी पांडवों के वनवास - अज्ञातवास संबंधी, कालगणनात्मक कूटों का विवेचन है।❑ द्यूत के समय हुए करार के अनुसार पांडवों ने निर्वासन में तेरह वर्ष पूर्ण किये थे या नही, यह महाभारत कथा का एक मूलभूत यक्षप्रश्न है। जहां पांडवों के अनुसार उन्होंने वे पूर्ण किये थे, वहां दुर्योधन वह अमान्य करता था। कौन सही था ? इसका उत्तर द्यूत की यानी वनवास प्रारम्भ की तिथि, तथा पांडवों ने अज्ञातवास समाप्त किया वह तिथि, इन पर निर्भर करता है। किन्तु कूटसम्राट महाकवि ने ये तिथियां खूबी से गूढ़ रखी है। अब वे स्पष्ट होकर उक्त प्रश्न का समुचित उत्तर यहां देखा जा सकता है।

द्वितीय भाग में युद्धकालीन तिथियों की चर्चा होकर, उसमें महाभारत के और अनेक कालगणनात्मक रहस्य प्रकट हुऐ हैं। इसका आरंभ श्रीकृष्ण ने युद्ध पूर्व अंतिम शांतिवार्ता हेतु उपप्लव्य से हस्तिनापुर को किये प्रवास की तिथियों से होकर, कुल विवेचन में युद्धप्रारंभ, युद्धदिवस, आखिरी भीम-दुर्योधन गदायुद्ध, बलराम की तीर्थ यात्रा, भीष्म ने शरशय्या से किया महान धर्मोपदेश, एवं अंत में उत्तरायण प्रारम्भ पर भीष्म का प्राणत्याग, आदि घटनाओं कि निश्चित तिथियां अब सिद्ध हो रही है। यह तो कहने की आवश्यकताही नहीं कि, युद्धप्रारम्भ तिथि यानेही प्रतिवर्ष श्रद्धापूर्वक मनाई जानेवाली गीताजयंती की वास्तविक तिथि।

तृतीय विभाग में युद्धकालीन ज्योतिषात्मक कूटों का विवेचन है। कितनेही विद्वान महाभारत के इन ज्योतिषात्मक वचनों को असंबद्ध एवं असंभव बताते हैं। इन आलोचनाओं में कितना तथ्य है यह इस तीसरे विभाग से स्पष्ट होगा।

अंतिम चौथे विभाग में महाभारत के कुछ अन्य गूढ़प्रसंगों एवं वचनों का स्पष्टीकरण है।

---

* इनकी चर्चा मैंने 'गीतातत्वमीमांसा' में की है।

❑ यह भाग इसके पूर्व 'महाभारत के तेरह वर्ष' शीर्षक से प्रकाशित था; कुछ पुनर्रचना एवं वृद्धि कर वह यहां समाविष्ट किया है।

❑

भाग १

निर्वासन के तेरह वर्ष

प्रकरण १

भीष्म का गूढ वचन

कुछ पृष्ठ भूमि

इन्द्रप्रस्थ के सम्राट होते हुए भी, कौरवों के साथ द्यूत में हारने से पांडवो को बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास भुगतना पड़ा। सती दौपदी भी उनके साथ रहीं। पांडवों ने वनवास के बारह साल पूर्ण किये, और वे विराटनगर में अज्ञात रहने लगे। द्यूत समय की शर्त अनुसार अज्ञातवास समय में एक भी पांडव पहचान लिया जाने पर, उन सब को पुन: बारह वर्ष वनवास एवं एक वर्ष अज्ञातवास करना पड़ता। अज्ञातवास वर्ष काफी मात्रा में बीत जाने पर भी पांडवों को ढूंढने में विफल होने से दुर्योधन चिंतित होकर, उसने और चतुर गुप्तचर नियुक्त करने का सोचा। किंतु इतनेमें उसके मित्र त्रिगर्तराज सुशर्मा ने एक अन्य प्रस्ताव रखा। उसका राजा विराट से बैर था। और इन्ही दिनों समाचार प्रचलित हुआ था कि, विराट के महाप्रतापी सेनापति कीचक का वध हो गया है। वास्तव में वह वध सैरन्ध्रीरूपी द्रौपदी के शीलरक्षणार्थ अज्ञातवासी भीम ने गुप्त तरीके से किया था; किन्तु वार्ता यह प्रसारित हुई थी कि, किसी अज्ञात गंधर्व ने कीचक को मार डाला। कीचकवध से विराट राजा दुर्बल हो गया होगा यह सोच कर, कौरवों की सहायता से उस पर आक्रमण कर पूर्व पराजय का बदला लेने की सुशर्मा की इच्छा थी। तदनुसार तय हुवा कि, स्वयं सुशर्मा ने एक पूर्वनिश्चित तिथि को विराट राज्य पर दक्षिण - पूर्व दिशा से हमला करना, और उसके प्रतिकार में राजा विराट अपनी सेना के साथ उधर गया होगा तब दूसरेही रोज कौरवों ने उत्तर दिशा से आक्रमण कर विराट की गायें हरण करना।

इस योजना के अनुसार पूर्व निर्धारित दिन को सुशर्मा ने विराट पर आक्रमण किया। अपेक्षा अनुसार उसका सामना करने हेतु राजा विराट अपनी सारी सेना लेकर उधर गया। उसके साथ अभी अज्ञातवास में होने वाले युधिष्ठिर, भीम, नकुल एवं सहदेव भी गये। आधी रात तक लड़ाई चली। युद्ध में सुशर्मा जीतने लगा, किन्तु आखिर पांडवों के पराक्रम से सुशर्मा की हार हुई। फिर भी इसके बाद तत्काल राजधानी न लौटते राजा विराट ने उन चार (अभीतक अज्ञातवासी) पांडवों सह रणभूमि पर ही रातभर विश्राम किया।

कौरवों का विराट पर हमला

इधर पूर्वयोजनानुसार दूसरे रोज सूर्यउदय के समय कौरवों ने उत्तर दिशा से आक्रमण कर विराट का गोधन पकड़ लिया। वह समाचार लेकर प्रमुख गोपाल भागता हुआ तुरंत राजधानी में आया। तब राजवाडे मे प्रमुख पुरुष व्यक्ति केवल राजपुत्र उत्तर ही उपस्थित था। मेरे पास कोई कुशल सारथी नहीं अन्यथा मैं अकेला सब कौरवों को पराभूत कर गायें छुडा लाता ऐसी बडाई वह मारने लगा। किन्तु (आगे स्पष्ट किये अनुसार) पांडवों की गणना से उसी सूर्यउदय पर उनका अज्ञातवास वर्ष समाप्त हो रहा था, अतः बृहन्नलारूपी अर्जुन ने सुझाव दिया कि, वह उत्तर का सारथ्य करने तयार है।

तदनुसार राजपुत्र उत्तर व बृहन्नलारूप में अर्जुन एक रथ में कौरव सेना का सामना करने निकले। किन्तु कौरव सेना प्रत्यक्ष देखतेही उत्तर डर गया और वापिस भागने लगा। अर्जुनने उसे पकड रखा, और कहा कि मैं कौरवों से लडूंगा तू केवल मेरा सारथ्य कर। नगर के बाहर शमीवृक्ष पर अज्ञातवास के आरम्भ मे पांडवों ने अपने शस्त्र छिपा रखे थे; अर्जुन ने उत्तर के द्वारा वहां से अपने गांडीव धनुष्यादि निकाले,* तथा इसी के साथ उत्तर को अपना वास्तविक परिचय भी दिया। इसके बाद अर्जुन का रथ कौरव सेना की और बढा।

अर्जुन प्रकटीकरण तथा दुर्योधन का कालगणनात्मक आक्षेप

किसी अकेले व्यक्ति को, और वह भी बृहन्नला वेष में, अपना सामना करने आते देख कौरवों ने प्रथम मजाक उडाई। किन्तु शीघ्र ही उन्हें शंका हुई कि यह प्रतापी अर्जुन तो नहीं ? जैसी ही यह शंका व्यक्त हुई दुर्योधन बोला कि, पांडवों का तेरहवा अज्ञातवास वर्ष अभी समाप्त नहीं हुवा है, ओर यदि उसके पूर्व अर्जुन यहां हमारे सामने प्रकट हो रहा हो,तो पांडवों को पुनः १२ वर्ष वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास भुगतना पडेगा।

तेषाम् न तावन्निर्वृत्तं वर्तते तु त्रयोदशम्
अज्ञातवासो बीभत्सुरथास्माभिः समागतः ॥ विराट पर्व ४७ - ४
अनिवृत्ते तु निर्वासे यदि बीभत्सुरागतः
पुनर्द्वादश वर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ५
लोभात् वा ते न जानीयुरस्मान् वा मोह आविशत्
हीनातिरिक्तमेतेषां भीष्मो वेदितुमर्हति ॥ ६

" उनका (पांडवों का) तेरहवां वर्ष अभी समाप्त न होकर चल रहा है और (इस समय) अर्जुन, जो अज्ञातवास में होना चाहिये, यहां हमसे युद्ध करने आया है - ४. यदि

* यहां महाभारतकार ने एक संख्यावाचक कूट रखा है, जिसका स्पष्टीकरण प्रकरण १९ में किया है।

निर्वासन समय (जिसका अंतिम वर्ष अज्ञातवास स्वरूप है) पूर्ण होने के पहिले ही अर्जुन इस प्रकार उपस्थित हो, तो पांडवों ने फिर बारह वर्ष वनवास करना चाहिये - ५. या तो (राज्य के) लोभ के कारण वे (पांडव) (वास्तविक कालगणना) नहीं जान रहे हैं,या हमारी गणना की कुछ भूल हो। अतः इस बारे में जो कुछ कम ज्यादा (गलत) हो वह कृपया भीष्म बतावे "।

भीष्म का उत्तर

इस पर भीष्म ने दिया उत्तर महाभारत का एक गहन कूट हो गया है। भीष्म ने कहा -

कलाः काष्ठाश्च युज्यन्ते मुहूर्ताश्च दिनानि च
अर्धमासाश्च मासाश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ विराट पर्व ५२-१
ऋतवश्चापि युज्यन्ते तथा संवत्सरा अपि
एवं कालविभागेन कालचक्रं प्रवर्तते ॥ २
तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्
पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥ ३
एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥ ४
सर्वं यथावच्चरितं यद् यदेभिः प्रतिश्रुतम्
एवमेतद् ध्रुवं ज्ञात्वा ततो बीभत्सुरागतः ॥ ५

" कला और काष्ठा (एक कला का तीसवां भाग), दिन और मुहूर्त (एक पूरे दिन का तीसवां भाग), तथा पक्ष और मास, और इसी प्रकार नक्षत्र और ग्रह आपस में मिल जाते है - १. ऋतु भी आपसे में, तथा वर्ष एक दूसरे में जुड़ जाते है ;इस प्रकार काल का विभाजन होकर समय चक्र (निरंतर) चलता रहता है - २. उसमें होनेवाली कालवृद्धि से, तथा ग्रहों द्वारा (अपनी सामान्य गति का) उल्लंघन करने से, हर पांचवे वर्ष में दो मास अधिक हो जाते है - ३. (पांडवों की प्रतिज्ञा के) इन तेरह वर्षों पर (इस प्रकार) पांच मास बारह रात्रि (क्षपाः) अधिक होती है ऐसा मेरा मत है - ४. उन्होंने (पांडवों ने) जो - जो प्रतिज्ञा की थी उस सब का उन्होंने पूर्णतया उचित पालन किया है, और यह निश्चित जानकर ही अर्जुन यहां (प्रकट रूप से) आया है - ५ "।

भीष्म ने दुर्योधन को यह उत्तर देने में अधिक मासों की विशेष चर्चा की है। इस उत्तर के सूक्ष्य अध्ययन से महाभारत की युद्धपूर्व कालगणना के अनेक प्रश्नों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पडेगा। इसमें बताये अधिक पाच माह एव बारह रात्रियों का वास्तविक गणित क्या है? अर्जुन कौरवों के समक्ष इस प्रकार प्रकट हुवा उस दिन नक्की कौनसे मास की

कौनसी तिथि थी ? क्या पाडवों ने प्रतिज्ञा का संपूर्ण काल अधिक मासों सहित पूर्ण किया ? वनवास प्रारंभ की तिथि कौनसी थी ? और, पांडवों ने तेरहवा वर्ष अज्ञातवास में पूर्ण नही किया इस दुर्योधन के आक्षेप में कौनसा विशेष मुद्दा था ?

भारतीय पचांगों में अधिक मास

भीष्म के उस उत्तर का विश्लेषण करने पूर्व अधिक मासों के विषय मे कुछ स्पष्टीकरण इष्ट होगा। भारतवर्ष मे बारह महीनो के एक वर्ष में छ: ऋतु मानकर हर ऋतु को दो माह गिने जाते है (चैत्र - वैशाख में वसंत ऋतु, ज्येष्ट-आषाढ़ में ग्रीष्म ऋतु, आदि)। किन्तु भारतीय मास चान्द्र होकर, छ: ऋतुओं का एक सौर वर्ष होता है। यदि बारह चान्द्र मासों में एक सौर वर्ष, अर्थात् छ: ऋतुओं का एक चक्र, पूरा होता, तो ऋतु और चान्द्र मास इनका हमेशा मेल बैठते रहता। किन्तु प्रत्यक्ष मे एक सौर वर्ष बारह चान्द्र मासों से कुछ अधिक, और इस कारण एक ऋतु दो चान्द्र मासो से कुछ अधिक होता है। मासों की तुलना मे ऋतुओं का अधिक समय क्रमश: बढते बढते, कुछ समय बाद एक पूरा ऋतु दो चान्द्र मास आगे खसक जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी वर्ष में वसंत ऋतु ठीक चैत्र आरंभ पर प्रारंभ होता है, तो वह वैशाख के अन्तपर समाप्त न होते थोडा ज्येष्ठ मे प्रवेश कर जायगा। और आगे जाकर ग्रीष्म ऋतु आषाढ़ के अंत पर समाप्त न होकर श्रावण मास में प्रवेश करेगा। इस प्रकार चलते चलते कुछ समय बाद (जो भीष्म ने अपने उत्तर में गूढ रूप से बताया है) एक पूरा ऋतु चान्द्र मासों मे अपना नियमित स्थान छोडकर दो मास आगे खसक गया दीखता हैं ; जैसे शरद ऋतु आश्विन-कार्तिक में आने के बजाय मार्गशीर्ष-पौष में आया दीखता है। तब कार्तिक के बाद दो 'अधिक' मास जोडकर उसमें शरद ऋतु बताने से, मार्गशीर्ष के आरंभ मे फिंर हेमंत ऋतु बराबर आरंभ होता है। इस प्रकार इन 'अधिक' मासों का प्रयोजन चान्द्र मास और सौर ऋतु (तथा सौर वर्ष) इनमें क्रमश: बढते आनेवाला अंतर हटाना है। किन्तु जहां भीष्म दो अधिकमास एकसाथ जोडने का उल्लेख करते हैं, वहां वर्तमान मे एक-एक अधिकमास बीच बीच में जोडा जाता है।

भीष्म की सूक्ष्म गणना

अब भीष्म के उत्तर पर विचार करें। उसके तीसरे श्लोक मे हर पाचवे वर्ष का दो अधिक मासों से संबंध बताया होकर, उस आधार पर चौथे श्लोक में (पांडवो के निर्वासन काल के) तेरह वर्षों पर पाच माह बारह रात्रि 'अधिक' समय गिना है। महाभारत के अभ्यासकों के लिये प्रथम यही एक गणित का कूट हो गया है ! महाभारत के मराठी अनुवादक चिं. वि. वैद्य लिखते हैं ('महाभारताचा उपसंहार,' पृ. १२८, हिंदी अनुवाद मेरा), "यह मानना ही पडता है कि महाभारत में भिन्न-भिन्न स्थानों पर जो संख्याएँ दी हुई हैं, उनमें प्राय: कुछ गूढ या गुह्य बात होती है.... अधिक मासों का हिसाब लगाने में प्रति

पांच साल से दो माह इस हिसाब से, तेरह वर्षों में पांच माह और बारह रात्रि यह भीष्म के वचन में दिया हिसाब बराबर बैठता नहीं। यदि पांच साल से दो माह, तो तेरह वर्षों पर $\frac{१३x२}{५} = ५\frac{१}{५}$ ऐसा हिसाब होता है, अर्थात् पांच माह और छ: दिन यह उत्तर आता है। किन्तु भीष्म यहाँ 'त्रयोदशानां वर्षाणां पंच च द्वादश क्षपा:' कहते हैं। यह कैसा ? बारह रात्रि यानि छ: दिन ऐसा अर्थ करना सम्भव है, किन्तु वह कुछ तो भी है।"

कूट हल करने के विविध प्रयास

महाभारत के संस्कृत भाष्यकार नीलकंठ यहां 'द्वादश क्षपा:' यानी बारह (अहोरात्रियुक्त) पूर्ण दिवस ऐसा अर्थ लेकर कहते हैं, "तत्र प्रायेण ज्योतिर्विद: सौरसंवत्सरानुरोधेनैव वर्षप्रवेशादिकं कुर्वन्ति। स्मार्तं वर्धापनादौ तु चान्द्रेणेति विशेष सत्यपि यदा एतयोरान्तकालिक: सावनाब्दो गण्यते तदा सौरगता वृद्धिस्तत्र गण्यते। एवं गणनायां क्रियमाणायां त्रयोदशस्वब्देषु पञ्च चान्द्रमासा: द्वे दिने सप्तत्रिंशन्नाड्य: पञ्चचत्वारिंशत्पलानि पञ्च दशाक्षराणि च। तथा च किंचिदधिकानि नवदिनान्यवधिपूतेरधिकानि जातानि ज्योतिषां नक्षत्राणां व्यतिक्रमात् सूर्येण चन्द्रेण च लङ्घनात् उपजायत: अधिकौ भवत:।" नीलकंठ का आशय यह कि, तेरह सौर वर्षो मे तेरह 'सावन' वर्षों से (जो तीन सौ साठ दिवसों का होकर चान्द्र और सौर वर्ष के बीच का होता है) पाच चान्द्र मास दो दिन सैंतीस नाडियाँ अधिक होती हैं ; और उसमें सूर्य चन्द्र के गतिभेद के कारण नौ दिन एवं 'किंचित् अधिक' और वृद्धि मानकर, कुल 'अधिक' समय पाच माह बारह दिन होता है। किन्तु यह अधिक समय दो बार क्यों जोडना ? और दूसरी बार जोडने में किस अनुपात से ? स्पष्टही नीलकंठ ने (पाच महिनों के अलावा) दो दिवस एवं सैंतीस नाडियों को कैसे तो भी बढाकर भीष्म प्रतिपादित बारह दिनों तक लाने, कुल तेरह वर्षों के लिये नौ दिन एवं 'किंचित् अधिक' समय और जोड दिया। किन्तु भीष्म ने पाच चान्द्र वर्षों का अधिक मासों से संबंध बताकर जो अधिक समय का एक ही प्रमाण स्पष्ट कहा है, उसका नीलकंठ के इस भाष्य में कुछ भी स्पष्टीकरण नही।

एक अन्य संस्कृत भाष्यकार चतुर्भुज मिश्र 'द्वादश क्षपा:' का ही अर्थ छ: पूरे दिन करते हैं, और इसके लिये दो समर्थन देते हैं। 'द्वादश क्षपा:' को ('शाकप्रियपार्थिव: शाकपार्थिव:' के समान) मध्यमपदलोपी समास मानकर, उनके बीच 'अर्धं' शब्द मान लिया जावे, जिससे 'द्वादशार्धं क्षपा:' का अर्थ छ: रात्रि (यानी छ: दिन) ऐसा होगा। या फिर द्वादशक्षपाओं का ही आशय छ: अहोरात्र (पूर्ण दिवस) लिया जावे। "द्वादशार्धं क्षपा: द्वादश क्षपा:। शाकपार्थिवादित्वात् षडहोरात्रा इत्यर्थ:। यद्वा क्षपा शब्दो मुख्य गौणवृत्या रात्रौ दिने च वर्तते तेन षड्दिनानि षडरात्रयश्चेति मिलित्वा द्वादशक्षपा:। न तु द्वादशाहोरात्रा इति।" जहाँ नीलकंठ 'द्वादशक्षपा:' से बारह अहोरात्र लेते हैं, चतुर्भुज

मिश्र उसे नकार कर केवल छ: अहोरात्र (पूरे दिन) लेते हैं। उससे भीष्म ने दिया अनुपात सार्थक होता दिखता हैं ; किन्तु संख्या वाचक शब्द प्रयोगों मे इस प्रकार मध्यमपदलोपी समास मानना कहां तक उचित होगा ? महाभारत में ही क्या पांडव वनवास के ' द्वादश वर्षाणि ' का आशय 'द्वादशार्धं वर्षाणि ' अर्थात छ: वर्ष ऐसा कर सकते थे ? अब, जहां तक चतुर्भुज मिश्र ने दिये दूसरे वैकल्पिक स्पष्टीकरण का सवाल है, 'द्वादश क्षपा:' (बारह रात्रि) याने छ: पूरे दिन (अहोरात्र), ऐसा अर्थ करना (चिं.वि.वैद्य ने ठीक ही कहे अनुसार) कुछ तो भी शाब्दिक खीचतान है।कोई भी एक पूरा दिन दर्शाने 'दो रात्रि' नही कहेगा। इसके विपरीत, अमुक स्थान पर (या अवस्था में) मेंने दो रात्रियाँ बिताई ऐसा कहने में दो पूरे दिन (अहोरात्र) यह आशय हो सकता है।* स्वयं भीष्म यहां 'छ: दिन' न कहते बारह 'क्षपा:' (रात्रियाँ) कह रहे है। अंत में, आगे स्पष्ट किये अनुसार उस अधिक समय में वस्तुत : छ: अहोरात्र न हो कर बारह अहोरात्र ही थे।

'विरोधार्थभंजिनी' भाष्य में भी 'क्षपा' का अर्थ पूर्ण दिवस (अहोरात्र) कर उस कुल अधिक मास समय का हिसाब दो प्रकार से बताया है। (अ) चान्द्रमानानुसार:- प्रति पांच साल के दो अधिक माह इस प्रकार तेरह वर्षा के पांच माह छ: दिन लेकर, उन पाच माह के भी (प्रतिमास एक अधिक दिन के हिसाब से) और पांच दिन जोडने से कुल पांच माह ग्यारह दिन होते हैं , इनमें वर्तमान दिन का एक और दिवस मिलाकर पांच माह बारह दिन होते हैं। ''तथाच त्रयोदश वर्षै: पञ्च मासा: षड्दिनानि च भवन्ति। एवमधिकपञ्चमासै: पञ्चदिनानि ! एवं वृद्धेरेकादशदिनानि । तेन वर्तमानदिनं परिगृह्य.....''।किन्तु अधिक मासों पर भी (चक्रवाढब्याज के समान) और अधिक दिवस जोडने की कोई प्रथा नही है। इस भाष्य में बताया दूसरा स्पष्टीकरण यह है- (आ) सावनमानसे - सावन वर्ष से सौर वर्ष में छ: दिन अधिक होते हैं ; अत: तेरह सौर वर्ष हेतु तेरह सावन वर्षों में ७८ दिन यानी दो माह अठारह दिन अधिक जोडना आवश्यक होता है। फिर इसमें से वर्तमान दिन छोडकर दो माह सत्रह दिन रहते हैं। उसका मेल बैठाने ये भाष्यकार 'पंचमे पंचमे वर्षे 'का अर्थ करने में हर पांचवा के बजाय पाच और पाच मिलकर दस वर्ष ऐसा करते है, और मूल संस्कृत पाठ में 'मासा:' के स्थान पर 'मासौ' पढकर 'पञ्च' का भी संबंध 'द्वादश' के साथ 'क्षपा:' से जोड़ते हुए , कुल सत्रह 'क्षपा:' गिनना चाहते हैं। इस प्रकार वे कुल अधिक समय 'पांच माह बारह रात्रि' को ही बदलकर 'दो माह सत्रह रात्रि' करना चाहते हैं। ''सावने वर्षे दिनषट्कवृद्धि: । तथा च पंचमे पंचमद्वये द्वौ मासौ भवत: वर्षत्रयेण च

* 'रात्रि ' शब्द का पूरे दिन के आशय मे ऐसा प्रयोग भीष्म ने ही मरण समय पर ''अष्टपंचाशतं रात्र्य: शयानस्याद्य मे गता: । शरेषु निशिताग्रेषु ....'' (अनुशासन पर्व १६७-२८) में किया है (देखिये प्रकरण ६ एवं ८)।

अष्टादशदिनानि । तेन वर्तमान दिनं परित्यज्य द्वौ मासौ सप्तदश दिवसा अधिकस्तदाह- एषामिति । मासौ अत्र स्त: इति मासा मासद्वययुता: पञ्च च द्वादश क्षपा: ।'' किन्तु यदि इस प्रकार 'मासा:',जो बहुवचनी रूप है, के बजाय 'मासौ' (जो द्विवचन का रूप है) पढ़ना हो, तो महाभारत के किसी भी श्लोक का चाहे जो अर्थ लगाया जा सकता है !

'विषमपादविवरण' (संस्कृत) भाष्य में 'पंचमे पंचमे वर्षे 'को 'पंचमे मासे पंचमे वर्षें' मानकर कहा है कि, 'मासे' का लोप कविता की दृष्टि से लिया जावे। इस भाष्य में अधिक मास गणना का भीष्म ने दिया अनुपात ही बदलने का प्रयास है। अंत में, 'लक्षाभरण' (संस्कृत) भाष्य में 'क्षपा' का अर्थ अर्ध दिन कर 'द्वादश क्षपा:' याने छ: पूर्ण दिन ऐसा आशय लिया है ; ''क्षपापदेन त्रिंशत्घटिकात्मकम् अर्धदिनम् उच्यते। सम्पूर्णा: षड् दिवसा इति यावत्।'' इस स्पष्टीकरण की समुचित आलोचना ऊपर की है। इस प्रकार भीष्म के उत्तर मे आये उस जरासे गणितीय कूट का अर्थ लगाने कितने विविध प्रयास किये गये हैं यह स्पष्ट होगा।

आधुनिक लेखकों में चिं.वि.वैद्य का मत ऊपर उद्धृत किया है; वे भीष्म के उत्तर को अगम्य 'गूढ' मानते हैं। डॉ. के. ल. दप्तरी ने यहां तक कह दिया है कि, भीष्म ने (अर्थात महाभारतकार ने) इसमें कुछ गणित की गलती करना भी संभव होकर , वह 'क्षपा' का आशय ' आधा दिन ' लेकर सुधारी जा सकती है।*

कूट का हल : अट्ठावन पर दो, साठ पर नहीं !

अब इस कूट का यह हल प्रस्तुत है। 'पंचमे पंचमे वर्ष' शब्दप्रयोग में सप्तमी विभक्ति होकर उसका वास्तविक अर्थ 'हर पाचवे साल में' ऐसा है,न कि 'हर पाचवे साल बाद'। यदि यहां 'पंचमात् पंचमात् वर्षात्' इस प्रकार पंचमी विभक्ति होती, तो वैसा ('के बाद' स्वरूप) आशय हो सकता था । महाकवि ने अन्यत्र वैसा आशय व्यक्त करने पंचमी का प्रयोग किया है। हस्तिनापुर की शांतिवार्ता से वापिस लौटते समय श्रीकृष्ण ने कर्ण से युद्धारंभ तिथि घोषित करते हुए कहा -

* "This third verse Is followed by the verse एषामभ्यधिका ..... This is said to be inconsistent with the third verse for,at the rate given in the third verse, there ought to be five intercalary months and six *Tithis* more in thirteen years. This inconsistency cannot take away or nullify the import of the third verse - namely that in the days of the Mahabharata, the Indians took two intercalary months in five years ; it would at the most prove , that some mistake was made in the calculation and nothing more. However this inconsistency disappears if by *kshapā* (क्षपा) we understand half a day..." ("The Astronomical Method and its Application to the Chronology of Ancient India " P.14 footnaote).

सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति
संग्रामो युज्यतां तस्याम् ...... ॥ उधोग पर्व १४२-१८

"(आज से) सात दिन बाद (आठवे दिन) अमावास्या होगी ; उस अमावास्या पर युद्ध आरंभ किया जावे ....''। यहां पंचमी विभक्ति होकर, आगे स्पष्ट किये अनुसार 'सातवे दिन को' ऐसा आशय न होकर सातवे दिन बाद ऐसा है। इसके विपरीत अभिमन्यु उसके विवाह से सातवे महीने में (न कि सातवे महीने बाद) मरा यह कथन करने में, विधवा उत्तरा के विलाप मे 'सप्तमे मासि' ऐसा सप्तमी विभक्ति का प्रयोग महाकवि ने किया है (स्त्री पर्व, २०-२८ आगे उद्धृत)।

अत: भीष्म के वचनानुसार दो अधिक मास पाचवा वर्ष समाप्त होने बाद नही, अपितु पाचवे वर्ष में आते थे। हर अट्ठावन (न कि साठ) माह बाद दो अधिकमास आते थे। इसके विपरीत ऊपर उद्धृत लेखक साठ चान्द्र मासों पर दो अधिक मास ऐसा गलत अनुपात लेते रहे। सही गणित इस प्रकार होगा - तेरह सौर वर्ष = १५६ चान्द्र मास ; और हर ५८ मासों पर दो अधिक मास इस अनुपात से कुल 'अधिक ' समय होता है, $\frac{१५६x२}{५८} = ५\frac{११}{२९}$ अधिक मास।

अब एक महीने के तीस (या सूक्ष्मता से सवा उन्तीस अथवा साढे उन्तीस) दिन लेने पर $\frac{११}{२९}$ माह के ग्यारह पूर्ण दिन और कुछ घटियाँ होती हैं ; मतलब यह कि बारहवा दिन आरंभ हो जाता है। किन्तु भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के अनुसार व्रतपालन मे किसी दिन सूर्योदय समय जो तिथि या विशेष अवस्था होगी वह उस संपूर्ण दिन भर (रात्रि समाप्ति तक) मानी जाती है। जैसे, सूर्योदय पर एकादशी हो तो पूरे दिन उपवास किया जाता है, भले ही इस दरम्यान एकादशी की तिथि समाप्त होकर द्वादशी आरंभ हो जावे। सारांश, ऐसे व्रतपालन आदि के संदर्भ में दिन के अंश को पूर्ण दिन माना जाता है। अत: कुल 'अधिक' समय समाप्त होते समय बारहवा दिन आरंभ हो जाने से, भीष्म ने वह पूर्ण दिन (रात्रि समाप्ति तक) उसी (अज्ञातवास की) स्थिति में माना। और 'क्षपा' यानी रात्रि शब्द का मार्मिक प्रयोग कर, तेरह वर्षों पर 'अधिक' समय पाच माह बारह 'रात्रि' ऐसा बराबर गिना!

यह गणित आज तक कूट स्वरूप क्यों बना रहा ? महाकवि ने यह खूबी की कि, प्रतिज्ञा का मूल समय बताने में तो 'त्रयोदशानां वर्षाणाम् ' में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया, किन्तु अधिक मासों का अनुपात बताते समय 'पंचमे पंचमे वर्षे' में सप्तमी का उपयोग किया है। परिणाम यह हुआ कि, जहाँ 'त्रयोदशानां वर्षाणाम्' यह अधिक मास

रहित तेरह चान्द्र वर्षों का (१५६ मास) मूल काल हैं, वहां 'पंचमे पंचमे वर्षे' यह अधिक मासों सहित संमिश्र काल है। मान लीजिए, ९८ रुपयों पर दो रुपये ब्याज का दर है, अर्थात मूलधन और ब्याज मिलकर मिश्रधन सौ रुपये होता है। अब यदि सवाल किया कि, सौ रुपयों 'में' दो रुपये ब्याज होने पर पाच सौ रुपयों 'का' ब्याज कितना, तो उत्तर दस रुपये गलत होगा। क्योकि यहां पाच सौ रुपये मूल धन होकर, उसमें अभी ब्याज जोडना है; किन्तु सौ रुपये यह ब्याज मिलाया हुवा मिश्रधन है। मूलधन के स्थान पर चान्द्र वर्ष, ब्याज के रूप मे 'अधिक' मास, तथा कुल मिश्रधन के स्थान पर सौर वर्षमान लीजिये, तो महाभारत का यह मनोरंजक कूट सहजता से हल हो जायगा।

अधिक मासों के आवर्तन

यदि हर पाच साल बाद (साठ महीनो बाद) अधिक मास जोडे जाते, तो हर बार वे उसी एक विशिष्ट मास के बाद (या पूर्व) जोडे जाते। और उस हालत मे भारतीय ज्योतिष ग्रंथों में उस विशिष्ट मास का नाम स्पष्ट दिया होता। इसके विपरीत ५८ मास बाद अधिक मास द्वय जोडने से उसका स्थान हर बार दो माह पीछे खसकते जाता है। अब सवाल हो सकता है कि, यदि अधिक मास द्वय पाचवे वर्ष में होता है, तो वह ५८ माह के बाद ही क्यों ? उस वर्ष के किसी अन्य क्रमांक के माह के बाद क्यों नही ? इसका उत्तर यह कि, ५८ की संख्या लेने से ही भीष्म ने की गणना सही बैठती है। और फिर, इस संख्या का संबंध चान्द्र वर्ष और सौर वर्ष के अंतर के उस समय की गणना से तो है ही।

यहां एक विशेष बात पर भी ध्यान आवश्यक है। ५८ सामान्य चान्द्र मासों पर दो अधिक मास आने पर भी हर पाच वर्षों मे साठ सामान्य मास होने ही चाहिये। इस प्रकार हर पाच वर्षों में कुल ६०+२=६२ मास होगे, न कि ५८+२=६० मास। किन्तु हर बार अधिक मासों का स्थान दो माह पीछे खसकेगा। आगे दिये उदाहरण से यह स्पष्ट होगा।

हम जिसमें चैत्र मास के ठीक आरंभ पर वसंत ऋतु का प्रारंभ होता हो ऐसा एक वर्ष लेकर उसे वर्ष क्रमांक १ कहे। अब हम ५८ मास गिनें - वर्ष क्र. १,२,३,४ के (प्रति वर्ष बारह) ४८, और क्र. ५ के चैत्र से पौष ये दस मास। उस पौष के बाद दो अधिक मास आयेंगे। किन्तु वर्ष क्र. ५ की समाप्ति उसके माघ एवं फाल्गुन बीतने पर ही होगी।

इस अधिक मास द्वय के बाद फिर और ५८ मास बीतेंगे - वर्ष क्र. ५ के माघ एवं फाल्गुन, क्र. ६,७,८,९ के मिलकर ४८, तथा वर्ष क्र. दस के चैत्र से कार्तिक ये आठ मास; उसके बाद फिर दो अधिक मास आयेंगे। यह क्रम इस प्रकार दर्शाया जा सकेगा—

वर्ष क्रमांक	मास			
१,२,३,४	(हर वर्ष चैत्र से फाल्गुन)	=	४८	५८
५	चैत्र से पौष	=	१०	
	(बाद मे दो अधिक मास)	=		+२
	माघ एवं फाल्गुन	=	२	
६,७,८,९	हर वर्ष चैत्र से फाल्गुन	=	४८	
१०	चैत्र से कार्तिक	=	८	५८
	(बाद मे दो अधिक मास)	=		+२
	मार्गशीर्ष से फाल्गुन	=	४	
११,१२,१३,१४	हर वर्ष चैत्र से फाल्गुन	=	४८	
१५	चैत्र से भाद्रपद	=	६	५८
	(बाद में दो अधिक मास)	=		+२
	आश्विन से फाल्गुन	=	६	

इस पर से दीखेगा कि, वर्ष क्र. १ से ५ के कुल माह ४८+१०+(२)+२=६२ हैं; तथा इसी प्रकार क्र. ६ से १० में भी कुल माह ६२ हैं. यह उदाहरण और आगे बढाने पर एक समय ऐसा आयगा कि, दो अधिक मास द्वयों में हमेशा का ५८ माह का अंतर होने पर भी उनके वर्ष क्रमांकों में पाच के बजाय चार का ही अंतर होगा।

१५	आश्विन से फाल्गुन	=	६	
१६,१७,१८,१९	हर वर्ष चैत्र से फाल्गुन	=	४८	५८
२०	चैत्र से आषाढ	=	४	
	(बाद में दो अधिक मास)	=		+२
	श्रावण से फाल्गुन	=	८	
२१,२२,२३,२४	हर वर्ष चैत्र से फाल्गुन	=	४८	५८
२५	चैत्र, वैशाख	=	२	
	(बाद में दो अधिक मास)	=		+२
	ज्येष्ठ से फाल्गुन	=	१०	
२६,२७,२८,२९	हर वर्ष चैत्र से फाल्गुन	=	४८	५८
	(बाद में दो अधिक मास)	=		+२
३०,३१,३२,३३	हर वर्ष चैत्र से फाल्गुन	=	४८	
३४	चैत्र से पौष	=	१०	५८
	(बाद में दो अधिक मास)	=		+२
	माघ एवं फाल्गुन	=	२	

इसमें वर्ष क्र. २९ के फाल्गुन बाद आया अधिक मासद्वय उसी वर्ष का माना, तो उसके पूर्व का द्वय वर्ष क्र. २५ में आया होने से, दोनों के वर्ष क्रमांकों मे केवल चार का अंतर होगा। और वह फाल्गुन बाद का, अधिक मासद्वय वर्ष ३० में गिना तो उसके बाद का अधिक मासद्वय वर्ष क्र. ३४ में होने से वर्ष क्रमांक में अंतर चार ही होगा। किन्तु ऐसे दोनो द्वयों मे अंतर हमेशानुसार ५८ माह का ही होगा। सारांश, ऐसे मौके पर प्रथम अधिक मासद्वय से वर्ष गणना की तो दूसरा द्वय 'पाचवे' वर्ष मे आया दीखेगा; किन्तु सामान्यतः गिनती की जाती है उसके अनुसार किसी विशिष्ट आरंभ बिंदु से वर्ष गणना की, तो दूसरा अधिक मासद्वय क्रमांक से चौथे वर्ष में आया दीखेगा।हमारे आगे के विवेचन में यह बात विशेष महत्त्व की है।

दो अधिक मास एकसाथ

अधिकमासों का सामान्य चान्द्रमासों से अनुपात कुछ भी हो, किन्तु क्या यह निश्चित है कि, दो अधिकमास एक साथ जोडे जाते थे ? या, क्या वर्तमान प्रथा के समान उस समय भी कम कालावधि के बाद एक अधिकमास जोडने की पद्धति होगी ? किन्तु महाभारतकार मात्र 'हर पाच वर्षों में ' ऐसा न कहते 'पंचमे पंचमे वर्षे ' यानी हर 'पाचवे' वर्ष मे दो अधिकमास जोडे जाना स्पष्ट बताते हैं । 'पंचमे' शब्द मे वर्ष का अनुक्रमांक निश्चित होता है; जो यह दर्शाता है कि दोनो अधिकमास उस वर्ष मे एकत्र जोडे जाते थे। इसके अलावा, प्राचीन समय मे पाच वर्षों का एक खास समूह मानकर उन्हें संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर एवं इद्वत्सर ऐसे नाम भी थे।

क्या इस प्रकार की अधिकमास गणना का कुछ अन्य भी प्राचीन उलेख मिलता है ? महाभारत में आगे जाकर बलराम की तीर्थयात्रा के वर्णन में वृद्धगर्ग नामके महान ज्योतिषाचार्य का उलेख आया है .

गर्गस्त्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली
तत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना ॥ शल्य पर्व, ३७-१४
कालज्ञानगतिश्चैव ज्योतिषां च व्यतिक्रमः
उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय ॥ १५
सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विदिता वै महात्मना
तस्य नाम्ना च तत् तीर्थं गर्गस्त्रोत इति स्मृतम् ॥ १६

" राजन् (जनमेजय), तत्पश्चात एककुंडलधारी बलराम गर्गस्त्रोत नामके महातीर्थ पर आये। वहाँ सरस्वती के किनारे उस पवित्र स्थान पर महामना वृद्धगर्गजी ने तपस्या द्वारा काल का स्वरूप एवं उसकी गति, आकाशस्थ ग्रहनक्षत्रों द्वारा (अपनी नियमित गति का बीचबीच में होने वाला) उल्लंघन, भीषण अपशकुन एवं शुभ लक्षण आदि का ज्ञान प्राप्त किया था। उन्हींके नाम से वह तीर्थ गर्गस्त्रोत कहा जाता है। " इसमें आये 'कालज्ञानगति' तथा 'ज्योतिषां च व्यतिक्रमः' शब्दों का भीष्म के उक्त उत्तर से स्पष्ट साम्य है। इन्हीं 'वृद्ध गर्गाचार्य' का कोई ग्रन्थ उस समय प्रमाण माना जाता होगा। महाभारत में जो स्थान-स्थान पर दारुण उत्पात तथा शुभ शकुनों का वर्णन है, वे भी उसी ग्रंथपर आधारित होंगे। वराहमिहिराचार्य ने भी अपने 'बृहत्संहिता' ग्रन्थ में सप्तर्षियों की गति के संबंध में 'वृद्ध गर्ग' का उल्लेख किया है। शं.बा.दीक्षित लिखते हैं कि, दो अधिकमास एकसाथ जोडने की रीति 'वेदांगज्योतिष' की है*।

---

* 'भारतीय ज्योतिषशास्त्र' (मराठी) . पृ. १०९.

प्रकरण -२

अज्ञातवास समाप्ति का दिन

यहां तक भीष्म के उस गूढ उत्तर का एक अंश स्पष्ट हुवा। अब शेष कूट का समाधान करने पूर्व, जिस दिन अर्जुन अज्ञातवास से प्रकट होकर भीष्म दुर्योधन को वह उत्तर दे रहे थे वह निश्चित करना आवश्यक है।

तिथि, पक्ष एवं ऋतु

स्वयं दुर्योधन ने उस दिन की तिथि अष्टमी बताकर भीष्म से संवाद का समय प्रातः काल बताया है।

तेषां भयाभिभूतानां तदस्माभिः प्रतिश्रुतम्
प्रथमं तैर्ग्रहीतव्यं मत्स्यानां गोधनं महत्
सप्तम्यामपराण्हे वै तथा तैस्तु समाहितम् ॥ विराटपर्व ४७-१०
अष्टम्यां पुनरस्माभिरादित्यस्योदयं प्रति
इमा गावो ग्रहीतव्या गते मत्स्ये गवां पदम् ॥११

"(विराट राजा के कारण) भयभीत हुए उन्हें (सुशर्मा आदि त्रिगर्तों को) हमने आश्वासन दिया था कि, प्रथम उन्होने (आग्नेय दिशा से) सप्तमी के अपराण्ह प्रहर में मत्स्यों का विशाल गोधन हरण करना, एवं उन्होंने वैसा किया भी; और फिर जब मत्स्य नरेश विराट उन गायों (को छुड़ाने हेतु उन) के पीछे गये होंगे, तब अष्टमी को सूर्योदय पर हमने (इधर से आक्रमण कर) इन गौओं को पकड़ लेना। "

इन्ही दो तिथियों का उल्लेख वैशंपायन ने अलग से भी किया होकर, वद्य पक्ष भी बताया है।

ते स्म गत्वा यथोद्दिष्टां दिशं वन्हेर्महीपते
संबद्धाः रथिनः सर्वे सपदाता बलोत्कटाः ॥ ३०-२५
प्रति वैरं चिकीर्षन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः
आदातुं गा सुशर्माथ कृष्णपक्षस्य सप्तमीम् ॥ २६
अपरे दिवसे सर्वे राजन् सम्भूय कौरवाः
अष्टम्यां ते न्यगृण्हन्त गोकुलानि सहस्त्रशः ॥ २७

"राजन् (जनमेजय), (विराट राजा से) पूर्व बैर का बदला चुकाने की इच्छा से (उसकी) गायें छीनने उत्सुक, कवचादि से सुसज्ज, बलवान, महाशक्तिसम्पन्न वे सब (त्रिगर्तदेशीय)

रथी एवं पैदल सैनिक सुशर्मा को आगे कर गायें हरण करने पूर्वनियोजित (आग्नेय) दिशा में कृष्ण पक्ष की सप्तमी को चले जाने पर - २५,२६। दूसरे दिन अष्टमी को सब कौरवों ने मिलकर (विराट राज्य पर दूसरी ओर से हमला कर)सहस्त्रों गौवों के झुण्ड पकड़ लिये - २७।'' इस प्रकार अर्जुन प्रकटीकरण के उस दिन कृष्ण (वद्य) पक्ष की अष्टमी थी।

उस समय ऋतु ग्रीष्म चल रहा था यह भी महाभारतकार ने बता दिया है। अर्जुन प्रकट होते देख कौरवों में कालगणना का विवाद शुरू होने पर ,कर्ण ने दुर्योधन से कहा-

अदेशिका महारण्ये ग्रीष्मे शत्रुवशं गताः
यथा न विभ्रमेत् सेना तथा नीर्तिर्विधीयताम् ॥ ४७-२३

''इस समय हम परदेश में तथा घने जंगल में है: ऋतु ग्रीष्म है तथा हम शत्रु के निकट खड़े है। अत: सारा विवाद अलग रखकर इस वक्त ऐसी नीति अपनाई जावे, जिससे हमारी सेना में भ्रम एवं घबराहट न फैले।''

किन्तु मास कौनसा ?

तिथि, पक्ष, ऋतु, समय यह सब बता दिया। किन्तु महाकवि ने महीना नही बताया। इसमें उन्होने एक रहस्य रखा है, जिसके वास्तविक स्पष्टीकरण पर वनवास आरंभ तिथि कौनसी थी , पांडवों ने तेरह वर्ष पूर्ण किये थे या नही, आदि प्रश्नों के समाधान निर्भर है।

इस माह के विषय मे कुछ मत इस प्रकार हैं।

भाष्यकार नीलकंठ उसे बैशाख मानते है। चतुर्भुज मिश्र एवं विरोधार्थभंजिनी भाष्य के अनुसार वह ज्येष्ट था। अर्जुन मिश्र आषाढ कहते हैं। चिं. वि. वैद्य (पूर्व उल्लेखित, मराठी, पृ. ११०-१११) उसे ज्येष्ट मानते हैं, किन्तु साथमें यह भी कहते हैं कि, मूल महाभारत में इस माह का स्पष्ट उल्लेख होगा , जो बाद में पोथी लेखन में लुप्त हो गया होगा। इस संदर्भ में हमें वह माह निश्चित करना है। किन्तु उसके पूर्व महाकवि ने रखे एक संकेत पर ध्यान देना आवश्यक है।

एक सूक्ष्म संकेत

कौरवों का पराजय कर विराट नगर वापिस लौटते समय अर्जुन ने राजकुमार उत्तर से कहा कि, यधपि अब तुझे हम पांडवों की पहचान हो गई है, तू आजही तेरे पिता को यह मत बताना (६७-९,१०)। तदनुसार उत्तर ने राजा को उस दिन पांडवों का परिचय नही दिया।उसके तीसरे दिन सब पांडव , द्रौपदी के साथ , विराट के दरबार मे अपने वास्तविक रूप मे प्रकट हुए।

ततस्तृतीये दिवसे भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः
स्नाताः शुक्लांवरधराः समये चरितव्रताः ॥ ७० - १
विराटस्य सभां गत्वा भूमिपालासनेष्वथ
निषेदुः पावकप्रख्याः सर्वे धिष्ण्येष्विवाग्रयः ॥ ३

''तदनंतर तीसरे राज वे पाच पांडव बंधू , जिन्होंने प्रतिज्ञानुसार वनवास - अज्ञातवास का व्रत नियत समय तक पालन किया था, सुस्नात एवं श्वेत वस्त्र परिधान कर राजा विराट के दरबार में उपस्थित होकर राजोचित आसनों पर विराजमान हुये। उस समय वे पास-पास यज्ञवेदियों पर स्थित प्रज्वलित (पाच) अग्निज्योतियों के समान तेजस्वी दीख रहे थे''।

मूल शत्रू कौरवों ने ही कृष्ण अष्टमी को अर्जुन को रणभूमि पर पहिचान लेने बाद, राजा विराट को पहचान देने में पाडवों ने दो दिन और लेने में क्या विशेष बात थी ? एक भाष्यकार कहते हैं कि पांडवों की गणनानुसार तेरहवा वर्ष वस्तुत: कृष्ण दशमी को समाप्त होता हो। किन्तु ऐसा होता तो अर्जुन उसके पूर्व कौरवों के सामने प्रकट होने से क्या दुर्योधन का आक्षेप सही नही होता ? इस विलंब का मार्मिक कारण यह दीखता है कि, उस अष्टमी को द्रौपदी रजस्वला होने से पांडवों के साथ सभा में आकर नही बैठ सकती थी। और बिना द्रौपदी के, जिसने पूरे तेरह वर्ष पूर्ण एकनिष्ठा से उनका घोर वनवास - अज्ञातवास में साथ दिया था, पांडव विराट दरबार में कैसे प्रकट रूप से बैठ सकते थे ? ठीक तेरह वर्ष पूर्व द्रौपदी को रजस्वला अवस्था में दु:शासन ने कौरव दरबार में खींचकर लाया था, किन्तु वह परिस्थिति पूर्णतः भिन्न थी। ये घोर तेरह वर्ष प्रारंभ हुए तब वह रजस्वला थी, और वे समाप्त हुए तब भी वह रजस्वला थी।

कारण कुछ भी हो, पांडव एकत्र रूप में राजा विराट के समक्ष कृष्ण दशमी को (या चतुर्भुज मिश्र सुझाते है उस प्रकार एकादशी को) प्रकट हुए। उसके बाद विराट कन्या उत्तरा का अभिमन्यु से विवाह निश्चित हुआ; और पांडव विराट नगर से (विराट राज्य में ही) उपप्लव्य स्थान पर गये। विवाह के आमंत्रण लेकर दूत द्वारका गये ; और श्रीकृष्ण, सुभद्रा , स्वयं अभिमन्यु तथा अन्य स्वजन उपप्लव्य आये (विराट पर्व अध्याय ७२)। फिर बडे समारोहपूर्वक विवाह संपन्न हुआ (७२-२७)। यह सब होने मे कुछ दिन अवश्यही लगे होंगे। और इस विवाह की तिथि उपरोक्त कृष्ण अष्टमी एवं दशमी के बाद आनेवाले शुक्ल पक्ष में मानना उचित होगा।

उधर कुरुक्षेत्र पर युद्ध मे अभिमन्यु केमरने पर विधवा उत्तरा ने अपने करुण विलाप में कहा-

एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह
षण्मासान् सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः ॥ स्त्रीपर्व २०-२८.

''वीर पुरुष, इस भूलोक में मेरे साथ आपका सहवास इतना ही यानी छः मास नियुक्त था (मेरे भाग्य में था); और (विवाह से) सातवे माह में तुम्हारा निधन हो गया।'' यहाँ महाकवि ने उपरोक्त वद्य अष्टमी का महीना निश्चित करने एक महत्त्व का कालगणनात्मक संकेत दे रखा है। अभिमन्यु का विवाह एवं मृत्यु इनके दरम्यान छः पूर्ण माह बीते थे।

उस मास के चार विकल्प

इस मास का विवेचन पूर्णिमान्त तथा अमावास्यान्त दोनों दृष्टि से हो सकता है। भारतवर्ष में कही एक तो कहीं दूसरी पद्धति प्रचलित है। पूर्णिमान्त मास कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को आरम्भ होकर पूर्णिमा पर समाप्त होता है ; अमावास्यान्त मास शुक्ल प्रतिपदा से शुरू होकर अमावास्या पर समाप्त होता है। दोनों पद्धति शुक्ल पक्ष में एकरूप होती है; किन्तु कृष्ण पक्ष में उनमें एक माह का अंतर दीखता है। जैसे, दोनो पद्धतियों में चैत्र शुक्ल पक्ष वही होगा ; किन्तु उसके बाद अमावास्यान्त पद्धति से चैत्र कृष्ण पक्ष आयेगा, तो पूर्णिमान्त पद्धति से वैशाख कृष्ण। किन्तु उसके पश्चात फिर दोनों का वैशाख शुक्ल होगा।

आगे स्पष्ट किये अनुसार महाभारत के मास मूलतः अमावास्यान्त हैं। फिर भी, विचाराधीन यह (अर्जुन कौरवों के समक्ष प्रकट होने की) अष्टमी वद्य पक्ष की होने से, उसके माह पर हम दोनो पद्धतियों से विचार कर देखें।

वह ऋतु ग्रीष्म था यह ऊपर कहा ही है। ग्रीष्म ऋतु का संबंध ज्येष्ठ एवं आषाढ से है। किन्तु नीलकंठ ने वैशाख का उल्लेख करने से हम उस पर भी विचार करें। इस प्रकार इस मास के निम्न चार विकल्प संभव है -

	अमावास्यान्त		पूर्णिमान्त
१	(चैत्र कृष्ण अष्टमी)	=	वैशाख कृष्ण अष्टमी
२	वैशाख कृष्ण अष्टमी	=	ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी
३	ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी	=	आषाढ़ कृष्ण अष्टमी
४	आषाढ़ कृष्ण अष्टमी	=	(श्रावण कृष्ण अष्टमी)

इनमें से प्रथम विकल्प इसलिये निरस्त हो जाता है कि, वह ग्रीष्म ऋतु मे कदापि नहीं माना जा सकता। द्वितीय विकल्प का विचार बाद में करेंगे। तृतीय विकल्प लिया तो अभिमन्यु का विवाह एवं मृत्यु इनके बीच छः महीने पूर्ण नहीं होते हैं। विवाह उपरोक्त वद्य दशमी के कुछ रोज बाद हुवा था ; तथा अभिमन्यु का मरण आगे बताये अनुसार अमावास्यान्त मार्गशीर्ष (पूर्णिमान्त पौष) की वद्य नवमी को हुवा। इसके अलावा मैंने

वहां अन्य मतो का भी उल्लेख किया होकर, उनके अनुसार अभिमन्युवध की तिथि मैंने दी तिथि से भी पूर्व होकर, अभिमन्यु का विवाह एवं मृत्यु इस दरम्यान कालांतर और कम होता है। इस कारण तृतीय विकल्प अस्वीकार्य है। फिर चौथा विकल्प और भी अस्वीकार्य है, क्योंकि उसमें अभिमन्यु विवाह तिथि और आगे खसककर उसके वध तक का कालांतर और भी कम हो जायेगा।

अब रहा दूसरा विकल्प। उसमें पांडव प्रकटीकरण मानकर उसके बाद आनेवाले ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में अभिमन्यु विवाह मानते हैं, तो विवाह की तैयारी को उचित समय मिलकर, उधर विवाह से अभिमन्यु मृत्यु तक छः माह पूर्ण होते हैं। किन्तु इसके अलावा भी इस विकल्प के अनुकूल एक और तथ्य यहां स्पष्ट करना इष्ट है ; वह हमारे अंतिम निष्कर्ष को साह्यभूत होगा। क्या अमावास्यान्त वैशाख का कृष्ण पक्ष ग्रीष्म ऋतु में गिना जा सकेगा ?

महाभारत की ऋतु गणना

भारत वर्ष में बहुत पहिले से पूर्णिमान्त मास पद्धति प्रचलित है। वस्तुतः पूर्णिमा (पूर्णमासी) शब्द का मूल आशय ही मास पूर्ण होने की तिथि ऐसा है। इस पूर्णिमान्त मास पद्धति के अनुसार एक वर्ष के छः ऋतुओं में से एक एक ऋतु (पूर्व प्रकरण में बताये अनुसार) क्रमशः दो महीनों में रखा गया। कालांतर से देश के कुछ भागों में अमावास्यान्त मास प्रचार में आये। किन्तु इस से महीने के पक्षों का अनुक्रम बदला जा सका, तो भी प्राकृतिक ऋतुओं के नैसर्गिक समय में तदनुसार परिवर्तन होना असंभव था। सूक्ष्म विवेचन में ऋतुओं का आरंभ एवं अंत सभी ने एक निश्चित समय पर मानना इष्ट है। पूर्णिमान्त मास पद्धति से वसंत ऋतु चैत्र मास के यानी उसके वद्य पक्ष के आरंभ पर शुरू होता है। अमावास्यान्त मास पद्धति से उस समय फाल्गुन वद्य पक्ष का आरंभ होता है। अतः अमावास्यान्त मास पद्धति स्वीकार करने बाद सूक्ष्म दृष्टि से वसंत ऋतु फाल्गुन वद्य पक्ष से आरंभ होकर, उसकी समाप्ति (वैशाख के अंत के बजाय मध्य मे) वैशाख पूर्णिमा पर मानी जानी चाहिये। और इसी क्रम से शेष ऋतुओं का समय मानना चाहिये।

महाभारत की सूक्ष्मता यह कि, आगे बताये अनुसार उसके मास मूलतः अमावास्यान्त होने पर भी, ऋतुगणना निसर्ग क्रम के अनुरूप है। बल्कि, इसी से महाभारत के मास मूलतः पूर्णिमान्त है या अमावास्यान्त इस बारे में कभी कभी भ्रम भी होता है। इसके कुछ उदाहरण देखिये। वनवास में पांडव द्वैतवन गये उस समय का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं -

विमलाकाशनक्षत्रा शरत् तेषां शिवाभवत्
मृगद्विजसमाकीर्णा पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ वनपर्व १८२ - ११
तेषां पुण्यतमा रात्रिः पर्वसंधौ स्म शारदी
तत्रैव वसतामासीत् कार्तिकी जनमेजय ॥ १६

" महात्मा पाण्डवों ने (वहाँ) प्रसन्नता से शरद ऋतु सकुशल बिताया, उस समय (मेघ रहित) स्वच्छ आकाश नक्षत्रों से भरा दिखता था, तथा वन्य पशु पक्षी सानन्द विहार करते थे - ११ । राजा जनमेजय, जब वे (पांडव) वहाँ इस प्रकार रहते थे, कार्तिक मास की शारदी पूर्णिमा की पुण्यप्रद रात प्राप्त हुई , जो (शरद औरा हेमंत) ऋतुओं के संधिकाल में आती है। " यहाँ कार्तिक पूर्णिमा पर शरद ऋतु की समाप्ति बताने से, वह मास पूर्णिमान्त होगा ऐसा आभास होता है। किन्तु उसे अमावास्यान्त मानते हुए भी शरद ऋतु की समाप्ति कार्तिक पूर्णिमा पर मानना कैसे युक्ति संगत है यह उपर कहा है। इसी प्रकार शांतिवार्ता हेतु श्रीकृष्ण उपप्लव्य से हस्तिनापुर जाने निकले उस का समय इन शब्दों में बताया है - "कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे।" (उद्योगपर्व ८३ -७), " उस समय कार्तिक (कौमुद) मास में चन्द्र रेवती नक्षत्र में था, तथा शरद ऋतु समाप्तप्राय होकर हेमंत आरम्भ होने में था "। कार्तिक मास में चन्द्र रेवती में पूर्णिमा से एक दो रोज पूर्व हो सकता है (देखिये आगे प्रकरण ५) । इस प्रकार उस समय कार्तिक का शुक्ल पक्ष समाप्त होने में था, और अमावास्यान्त कार्तिक का वद्य पक्ष शेष था। फिर भी तब शरद ऋतु का अन्त (एवं हेमंत का आगमन) बताया होने से, यह पूर्णिमान्त कार्तिक का आभास होता है। किन्तु वह मास अमावास्यान्त होते हुए भी ऋतुओं का यह वर्णन शास्त्रशुद्ध हो सकता है यह अब स्पष्ट होगा।

इस प्रकार महाभारत की ऋतु संबंधी सूक्ष्म विचारधारा देखते, अमावास्यान्त ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष को लग कर पूर्व में आने वाला कृष्ण पक्ष (यद्यपि उस पद्धति से वह वैशाख का कहा जाता हो) ग्रीष्म ऋतु में गिना जा सकता है।

एक और विकल्प - अधिक मास !

किन्तु इस द्वितीय विकल्प के अनुकुल ये बाते होने के बावजूद, आखिर उसके बजाय ऐसा एक बिलकुल अलग विकल्प प्रतिपादन करना आवश्यक है, जो इन सब संकेतों की ठीक सुसंगती करेगा इतना ही नहीं, अपितु अन्य भी संबंधित प्रश्नों का समाधानपूर्ण स्पष्टीकरण देगा। यह ध्यान में लेने लायक है कि, भीष्म ने अपने उत्तर में अधिक मासों की सूक्ष्म गणना को प्रमुख स्थान दिया है। वह सारा उत्तर तेरह वर्षों के काल खंड पर कितना अधिक मास समय गिनना इस संबंधी कुछ विवाद पर केन्द्रित है। यहां

रहस्य यह है कि, इन तेरह वर्षों में आया अंतिम अधिक मास द्वय इस दिन चालू था ! सामान्यतः ज्येष्ठ के पूर्व वैशाख आता है, किन्तु उस विशिष्ट वर्ष मे ज्येष्ठ के पूर्व दो अधिक मास आये थे। यह ध्यान में लेने से उस दिन के संबंध में महाभारत में दिये सारे संकेत सुसंगत हो जाते है, तथा कुल तेरह वर्षों की कौरव पांडवों ने की भिन्न गणना एवं वनवासारंभ की तिथि भी सिद्ध होती है, यह शीघ्र ही स्पष्ट होगा।

किन्तु उसके पूर्व एक और स्पष्टीकरण। हर पाचवे साल में दो अधिक मास यह भीष्म ने दिया अनुपात देखते, तेरहवे वर्ष के अंत में अधिक मास कैसे आ सके ? उघड्ही वह दूसरा द्वय होना संभव नही। क्या वह तीसरा द्वय होगा ? यदि वनवास आरंभ के कुछ पूर्व अधिक मास आ गये हो,तो वनवास के चतुर्थ वर्ष में वनवास का प्रथम अधिक मास द्वय आकर, वनवास के नौवे वर्ष में दूसरा द्वय आयगा। और फिर तेरहवे (अज्ञात वास वाले) वर्ष की समाप्ति समय तीसरा द्वय आ सकता है। इसका पूरा ब्यौरा आगे दिया है। ऐसे दो द्वयों में हमेशा अनुसार अट्ठावन मास का अंतर होते हुए भी , उनके वर्षानुक्रम में कभी केवल चार का ही अंतर हो सकता है यह मैनें खास तौर से इसी लिये ऊपर बताया है। इसी विशिष्ट परिस्थिति को ध्यान में रखकर महाकवि ने यह रहस्यमय कालगणना की है।

उस वद्य अष्टमी का निश्चित महीना

अब अर्जुन प्रकटीकरण के समय यदि (तीसरा) अधिक मास द्वय चालू था, तो उस द्वय का कौनसा मास चालू था ? वह प्रथम अधिक मास नही था। अन्यथा, उसके बाद एक और अधिक मास जाने पर सामान्य ज्येष्ट प्रारंभ होता। किन्तु उस हालत मे उस प्रथम अधिक मास का वद्य पक्ष ग्रीष्म ऋतु में नही आ सकता। ग्रीष्म का प्रारंभ अमावास्यान्त ज्येष्ठ को लगकर पूर्व मे आनेवाले एक पक्ष तक ही माना जा सकता है, उससे और पहिले नही। अतः उस अधिक मास द्वय के द्वितीय मास का ही कृष्ण पक्ष ग्रीष्म ऋतु में गिना जा सकता है। फिर, यदि वह कृष्ण अष्टमी प्रथम अधिक मास की होती, तो तब तक तेरह वर्षा मे (प्रथम एवं द्वितीय द्वयों के मिलकर) केवल चार अधिक मास पूर्ण होकर ऊपर कुछ दिन होते। किन्तु भीष्म पाच पूर्ण अधिक मास गिन रहे हैं। अर्थात उस अष्टमी का अधिकमास तृतीय द्वय का दूसरा महीना था।

इस प्रकार अर्जुन प्रकटीकरण की वह कृष्ण अष्टमी उस वर्ष ज्येष्ट पूर्व (अथवा वैशाखोत्तर) द्वितीय अधिक मास की थी। ऊपर कहे अनुसार वह कृष्ण पक्ष ग्रीष्म ऋतु का कहा जा सकता है। इस गणना से अभिमन्यु विवाह की तैयारी के लिये तथा प्रत्यक्ष विवाह समारोह के लिये पर्याप्त समय भी उपलब्ध होकर , विवाह से उसका निधन बराबर सातवे माह में आता है।

यह ज्येष्ठ पूर्व द्वितीय अधिक मास अमावास्यान्त है यह पुन: स्पष्ट करना आवश्यक है। अन्यथा उसका कोई भी हिस्सा ग्रीष्म ऋतु मे नही होगा। पूर्णिमान्त मास पद्धति से ग्रीष्म का आरंभ ठीक ज्येष्ठ के आरंभ से ही होता है, उसके पूर्व नही। इसके अलावा उस मास को पूर्णिमान्त मानने पर कुछ और आपत्ति है, जिसका उल्लेख आगे किया है।

एक पाठ भेद

श्लोक ३०-२६ में "कृष्ण पक्षस्य सप्तमीम्" के स्थान पर भांडारकर अनुसंधान संस्था ने "घर्मपक्षस्य सप्तमीम्" पाठ दिया है। 'घर्म' याने गर्मी का अर्थात ग्रीष्म ऋतु। किन्तु "ग्रीष्मे शत्रुवशं गता:" (४७-२३) ऐसा स्पष्ट उल्लेख होने पर "घर्मपक्षस्य" ऐसा और कहने में क्या तुक था ? फिर, वह शब्द लिया तो भी अंतर इतना हि पडेगा कि, उसमें ग्रीष्म ऋतु के कृष्ण पक्षों के साथ शुक्ल पक्ष भी दिग्दर्शित होंगे। इनमें से कृष्ण पक्षों पर हमने ऊपर विचार कियाही है। शुक्ल पक्ष होंगे, ज्येष्ठ शुक्ल और आषाढ शुक्ल। इनमें से आषाढ शुक्ल लिया तो अभिमन्यु का विवाह एवं निधन इनके बीच छ: माह पूर्ण नही होंगे। किन्तु वह पक्ष शुक्ल नही था इसका एक प्रमाण भी है। सप्तमी को सुशर्मा ने विराट राज्य पर हमला किया, तब सूर्य पश्चिम की ओर ढल रहा था उस समय विराट की सेना सुशर्मा के सामने पहुची (विराट पर्व ३२-१); और भीषण लड़ाई आरंभ हुई। धीरे धीरे सूर्यास्त हुवा (३२-७); तथा अंधकार होकर लड़ना स्थगित करना पडा।

तमसाभिप्लुते लोके रजसा चैव भारत
अतिष्ठन् वै मुहूर्तं तु व्यूढानीका: प्रहारिण: ॥ विराट पर्व ३३ - १

"राजन् (जनमेजय), (सूर्यास्त होने पर) सब और अंधकार व्याप्त होकर धूल भी छा गई; अत: व्यूहबद्ध योद्धा कुछ देर (लड़ना बन्द कर) वैसे ही खडे रहे"।

ततो ऽ न्धकारं प्रणुदन्नुदतिष्ठत चन्द्रमा:
कुर्वाणो विमलां रात्रिं नन्दयन् क्षत्रियान् युधि ॥ २
तत: प्रकाशमासाद्य पुनर्युद्धमवर्तत .... ॥ ३

"कुछ समय बीतने बाद अंधकार का नाश करते हुए चन्द्र का उदय हुआ: जिससे (अंधकारमय) रात्रिकाल स्वच्छ होकर रणक्षेत्र के योद्धा आनंदित हुए; तदनंतर सब और उजाला होकर लड़ाई फिर चालू हुई"। यह वर्णन कृष्ण पक्ष दर्शाता है। शुक्ल सप्तमी को

सूर्यास्त समय ही चन्द्र आकाश में स्पष्ट ऊपर दीखता है। उसके विपरित वद्य पक्ष की सप्तमी को सूर्यास्त समय (चन्द्रहीन) अंधकार होकर कुछ समय बाद चन्द्रोदय होता है। वह ग्रीष्म ऋतु होने से सायंकाल में सूर्यास्त काफी देर से होकर, कुछ समय बाद चन्द्रोदय हुवा। इसके अलावा, क्या वह पक्ष शुक्ल हो सकता था, इसका विचार आगे अज्ञातवास वर्ष का जो विवरण दिया है उसके संदर्भ में भी करना होगा।

इस प्रकार 'घर्मपक्षस्य' कहा तो भी ज्येष्ठपूर्व द्वितीय अधिक मास का वद्य पक्षही सिद्ध होता है। वस्तुत: (ऋतु का निर्देश कर उसके साथ मात्र तिथि का उलेख करने वाला) यह पाठ कम संभव होकर, 'कृष्ण पक्षस्य' यही पाठ मार्मिक एवं सुसंगत है, तथा उससे ऋतु की द्विरुक्ति भी टल जाती है।

अंत में, महाभारत में उस दिन का अन्य तफसील दिया होने पर भी महीने का उल्लेख क्यों नही किया यह भी अब स्पष्ट होगा। वह अधिक मास होने से उस माह को निश्चित नाम नही था।

❑

प्रकरण ३

वनवास आरंभ की तिथि

क्या पांडवों ने तेरह सौर वर्ष पूर्ण किये थे ?

अज्ञातवास समाप्ति की तिथि हमने अब निश्चित की है। किन्तु यह प्रश्न अभी शेष है कि, क्या उस दिन समाप्त होने वाले तेरह वर्ष मात्र १५६ चान्द्र मास मिलाकर हुए थे, या उनमें अधिक मास समय भी जोडा गया था ? यह भी एक कूट बन गया है कि, क्या पांडवों ने अधिक मास सहित तेरह सौर वर्ष पूर्ण किये थे, या मात्र तेरह चान्द्र वर्ष पूर्ण किये (और उन्होंने अधिकमास भी पूर्ण करना चाहिये थे ऐसा आक्षेप उठाने दुर्योधन के लिये जगह थी)? इस विषय पर परस्पर विरुद्ध मत व्यक्त किये गये हैं।

भाष्यकार नीलकंठ का मत है कि, पांडवों ने अधिक मास छोडकर मात्र तेरह चान्द्र वर्ष पूर्ण किये। नीलकंठ द्यूत (वनवास आरंभ) आश्विन शुक्ल दशमी (विजया दशमी) को मानते हैं (क्योकि उस समय पासेका खेल खेलने की प्रथा है); और कहते हैं कि, अतः दुर्योधन के अनुसार अज्ञातवास विजयादशमी की तिथि पर ही समाप्त होना चाहिये था (जिससे अधिक मास सहित तेरह सौर वर्ष पूर्ण हो जाते), किन्तु पांडवों ने मात्र तेरह चान्द्र वर्ष पूर्ण कर (अर्थात अधिक मास छोडकर) प्रतिज्ञा का पालन करनेका ठहराया। नीलकंठ आगे कहते हैं कि, पांडव इस प्रकार विजयादशमी के पाच माह बारा दिन पूर्व चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को प्रकट हो सकते थे; किन्तु फिर भी कुछ (चौबीस) दिन अज्ञातवास मे अधिक बिताकर उन्होंने वैशाख वद्य सप्तमी को अज्ञातवास समाप्त किया, और अष्टमी को पांडव प्रकट हुए (अर्जुन प्रकट हुवा)।*

किन्तु भारतीय पंचागों मे उस समय भी अधिक मास जोडे जाते थे; और स्वयं पांडवों ने आजीवन तदनुसार यज्ञयाग, व्रतपालन आदि किये होंगे। फिर, प्रतिज्ञा समय से अधिकमास छोड देने का पांडवों को क्या अधिकार था ? और भीष्म भी उसे कैसी मान्यता देते ? और यदि अधिकमास छोडनाही थे, तो उनमें से चौबीस दिन भी घोर अज्ञात वास में क्यों बिताये ? इन्ही आखिरी दिनों में ही तो कीचक (सैरन्ध्री रूपी) द्रौपदी

---

* "विजयादशम्यां द्यूते पाण्डवपराजयः। लोके तस्यैव प्रायेण द्यूतकालत्वात्। ग्रीष्मे च गोग्रहार्थं प्रवृत्ता इत्युक्ते तेन विजयादशम्यामागामिन्यां त्रयोदशाब्दपूर्णं भविष्यतीति दुर्योधन प्रत्याशा। पाण्डवास्तु चान्द्राब्दमानेन त्रयोदशवत्सरानतिवाह्य कृतकृत्या अभूवन्। तत्र विजयादशमीतः पूर्वं पन्चमासा: द्वादशदिनानि प्रकटीभवितव्यत् तत्र दर्शान्तमासे वैशाखकृष्णसप्तम्यामाविर्भूताः प्रतिज्ञां निस्तीर्येव कानिचिदधिकान्यपि दिनानि अतिवाह्य आविर्भूता इत्यर्थ :।"

को सता रहा था। वास्तविक बात यह है कि, नीलकंठ ने मूल वनवास आरंभ तिथि ही गलत गृहीत धरने से, पांडवों ने अधिक मास छोड देने की यह धारणा उन्होंने व्यक्त की है; जो केवल गलत ही नही, अपितु पांडवों के धर्मनिष्ठ चारित्र्य पर कलंक लगानेवाली है।

अन्य संस्कृत भाष्यकार अर्जुन मिश्र एवं चतुर्भुज मिश्र भी कहते हैं कि, पांडवों ने अधिकमास छोडकर तेरह वर्ष पूर्ण किये थे।' विषमपाद विवरण ' एवं 'लक्षाभरण' टीकाओं का अभिप्राय भी ऐसाही है।

किन्तु पांडवों ने अधिक मास पूर्ण किये थे इस आशय के भी कुछ मत व्यक्त हुवे है। 'विरोधार्थभंजिनी' भाष्य के अनुसार वनवास आरंभ ज्येष्ठ कृष्ण दशमी को हुवा था; और यधपि अर्जुन ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को (गोग्रहण युद्ध में) प्रकट हुवा , सब पांडव मिलकर विराट दरबार मे दशमी को प्रकट होकर, तब तक तेरह सौर वर्ष (अर्थात अधिकमास समाविष्ट कर) पूर्ण हुए थे। इसमें पांडवों द्वारा अधिकमास पालन करना कहा होने पर भी, यदि तेरह सौर वर्ष दशमी को पूर्ण होते थे, तो अर्जुन उसके पूर्व अष्टमी को कौरवों के सामने प्रकट होने से क्या दुर्योधन का आक्षेप ठीक सिद्ध नही होगा ? इसके अलावा , ज्येष्ठ वद्य पक्ष में पांडव प्रकटीकरण मानने से अभिमन्यु के विवाह से उसका निधन सातवे माह में नही आता यह हमने ऊपर देखा है।

चिं.वि.वैद्य (पूर्व उल्लेखित) नीलकंठ का अनुसरण कर कहते है कि, पांडवों ने अधिकमास छोडकर तेरह वर्ष पूर्ण किये।

गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित महाभारत के हिन्दी भाषान्तर में भीष्म के उक्त उत्तर पर टिप्पणी देते हुए कहा है, "चान्द्र वर्ष तीन सौ चौवन दिनों का होता है और सौर वर्ष तीन सौ पैंसठ दिन पन्द्रह घड़ी एवं कुछ पलों का हुआ करता है। इस हिसाब से तेरह सौरवर्षों में चान्द्र वर्ष के लगभग पाँच महीने अधिक हो जाते है। इन वर्षो में यदि छः बार अधिमास पड जायं तो जिस तिथि को पाण्डवों का वनवास हुआ था, तेरहवें वर्ष की उसी तिथि तक तेरह वर्षों से पाँच महीने और बारह दिन अधिक हो सकते हैं। पाण्डवों ने सूर्य की संक्रान्ति के अनुसार वर्ष की गणना की थी, अतः उन्होंने अधिमास आदि के कारण बढे हुए महीनों और दिनों की संख्या को अलग नहीं माना। इसी लिए उनकी गणना में तेरह ही वर्ष हुए। भीष्मजी ने चान्द्रवर्ष की गणना का आश्रय लेकर बढे हुए महीनों और दिनों को भी गणना में ले लिया। अतः उनके हिसाब से उस दिन तक तेरह वर्ष पूर्ण होकर पाँच मास बारह दिन अधिक हुए। यह कालभेद सौर और चान्द्रवर्ष की गणना के भेद से ही हुआ है। वास्तव में सूर्य की संक्रान्ति के हिसाब से उस समय तक पाण्डवों के तेरह वर्ष छः दिन हो चुके थे। चान्द्रवर्ष की गणना के अनुसार वही समय तेरह वर्ष पाँच मास बारह दिन का हो गया।"

इस टिप्पणी के अनुसार पांडवोंने (तथा भीष्म ने भी) तेरह वर्ष बाद फिर से आनेवाली वनवास आरंभ तिथि तक तेरह (सौर) वर्षों की गणना की थी। किन्तु आगे स्पष्ट किये अनुसार पांडवों की(एवं भीष्म की) वैसी गणना न होकर, वनवासआरंभ तिथि तक तेरहवा वर्ष गिनने का दुर्योधन का आग्रह था। और यदि पांडव वनवास आरंभ तिथि तक गिनती कर तेरह सौर वर्ष (बल्कि उन से भी अधिक छः दिन) पूरे करते, तो उनपर आक्षेप लेने दुर्योधन को नाममात्र या संदिग्ध भी क्या बहाना बचता, जिसके आधार पर वह कुरुक्षेत्र युद्ध मे अपने पक्ष मे अनेक राजाओं की सहायता से एक विशाल सेना खडी कर सकता ? इसके अलावा, तेरह सौर वर्ष पूर्ण कर वनवास आरंभ तिथि तक अज्ञातवास पालन करने बाद, पांडव उस हीनतम अवस्था में और छः दिन क्यों बिताते ? किन्तु वास्तविक बात यह है कि, पांडवों ने छः दिन अधिक बिताये यह भ्रम महाकवि की (५८ एवं ६० मास विषयक) कूटरचना के कारण निर्माण होता है यह ऊपर स्पष्ट किया ही है।

पांडवों ने अधिक मास समय सूक्ष्म गणना से बराबर पूर्ण किया

वस्तुतः पाण्डवों ने तेरह साल में आने वाला अधिक मास समय बराबर पूर्ण किया था। बात यह थी कि, उन तेरह वर्षों में संयोगवश तीन अधिक मास द्वय आये थे। एक अधिकमास द्वय ५८ चान्द्र मासों पर आता है, अतः तीन अधिकमास द्वय पूरे बिताने की जिम्मेवारी उसीपर होना न्यायसंगत होगा, जिसे ५८ X ३ = १७४ मास (साढे चौदह वर्ष) पूरे करना हो। अतः पांडवों का कहना था कि, यद्यपि इन तेरह वर्षों में तीन अधिक मास द्वय आये है, चूंकि उनका प्रतिज्ञा समय तेरह वर्षों का ही था, वे अन्तिम द्वय (जो चालू ही था) के पूरे दो माह तेरह वर्षों में गिनने बाध्य नही थे। ऊपर देखे अनुसार तेरह वर्षों पर अधिक मास समय ५ माह १२दिन होता है। अतः वनवास प्रारंभ से कुल (१३X१२ = १५६ + ५)= १६१ मास और १२ दिन का समय उन्होंने पूर्ण किया, जिससे बराबर तेरह सौर वर्ष पूर्ण हो गये , एक दिन भी कम या अधिक नही।

इसके विरोध में दुर्योधन का आग्रह था कि, उन तेरह वर्षों में आया वह अंतिम तीसरा अधिक मास द्वय भी (जो चालू था) पूरा कर, बाद में जिस तिथि से वनवास प्रारंभ हुवा था ठीक उस तिथि तक पांडवों ने अज्ञातवास चालू रखना चाहिये था। क्तिु यह आग्रह उन तेरह वर्षा में संयोग वश आये तीसरे अधिक मास द्वय का अनुचित लाभ उठाने का दुर्योधन का प्रयास मात्र था।

वनवास प्रारम्भ तिथि ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी !

इस प्रकार जहां पांडव कुल प्रतिज्ञा समय १५६ माह + ५ माह १२ दिन गिन रहे थे, वहां दुर्योधन १५६+६ माह गिन रहा था। अर्थात वह और अठारह दिन का आग्रह कर

रहा था। इन अठारह दिनों से तीसरा अधिक मास द्वय (जो उस समय चालू था) पूर्ण होकर वनवासारंभ तिथि आ जाती। अर्जुन ज्येष्ठपूर्व द्वितीय अधिक मास कृष्ण अष्टमी को अज्ञातवास से बाहर आया था। इसमें यदि अठारह दिन मिलाते हैं। तो (वह अधिक मास समाप्त होकर) ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी आती है ; दुर्योधन के अनुसार उस दिन तेरहवा वर्ष समाप्त होकर पाण्डवों ने प्रकट होना चाहिये था।

अतः महाभारत की मूलभूत वनवास आरंभ तिथि ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी है! इस रोज द्यूत हुवा, और उसमे हारने पर पांडव हस्तिनापुर से वनवास पर निकले। उसी तिथि से गणना आरंभ कर पांडवों ने सूक्ष्म गणित के अनुसार तेरह सौर वर्ष बराबर पूर्ण किये। किन्तु दुर्योधन का आग्रह था कि उन्होने अठारह दिन कम बिताये हैं। यह बहाना बनाकर उसने उनका राज्य वापिस करने इन्कार किया। और परिणाम स्वरूप वह महायुद्ध हुवा। इसी लिये महाकवि ने प्रत्यक्ष लडाई के दिन भी अठारह बताये हैं (यद्यपि भाग २ में बताये अनुसार इन अठारह दिनों के अलावा उनमें विश्रामदिवस भी थे)। प्रत्यक्ष लडाई के दिनों की इस संख्या के पीछे यह रहस्य दीखता है ! वह युद्ध अठारह दिनों के लिये, यानी अठारह दिनों के विवाद से, हुवा ; और प्रत्यक्ष में अठारह दिनों तक लड़ा गया !

कई लेखक इस संबंध में विविध भ्रम व्यक्त करते हैं। एक लेखक कहते हैं कि, वनवास आरंभ मार्गशीर्ष में होकर अर्जुन का प्रकटीकरण भी मार्गशीर्ष में हुआ ; और पांडवों ने प्रतिज्ञा समय से (तेरह सौर वर्ष से) अठारह दिन अधिक व्यतीत किये*। वनवास आरंभ तथा अज्ञातवास समाप्ति के ये मास सही है या गलत यह प्रश्न अलग रखा , तो भी पांडव उस हीन अवस्था में इतने अधिक दिन क्यों बिताते ? और वे बिताते तो फिर उनका राज्य न लौटाने दुर्योधन के पास बहाना भी क्या रह जाता ?

ग्रीष्म ऋतु के प्रमाण

महाभारत में पाडवों का अज्ञातवास से प्रकटीकरण निःसंदेह ग्रीष्म ऋतु में दर्शाया है। अतः भाष्यकार नीलकंठ मानते हैं वैसे वनवासारंभ यदि आश्विन में माना,तो स्वाभाविकही कल्पना होती है कि, पांडवों ने ग्रीष्म में प्रकट होकर तेरह सौर वर्षो में पाच छः माह कम बिताये, जो अधिक मास समय के होगे ,और उसी पर दुर्योधन का आक्षेप होगा।

किन्तु वस्तुतः वनवासारंभ ग्रीष्म ऋतु में (ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को) हुवा था। इसके अन्यभी पुष्टिकारक संकेत महाभारत मे हैं।

---

* "The Date of the Maha Bharata War and the Kali Yugadhi," by K. Sriniwas Raghavan, 1969, Pages 25-26

वनवास के शुरू मे पांडव काम्यक वन में गये। वहां श्रीकृष्ण ने आकर उनका सान्त्वन किया, और हस्तिनापुर में द्यूत हुवा उस समय स्वयं वे द्वारका में शाल्व से लड़ने में व्यस्त थे यह बताया। इस भेट में अभिमन्यु, सुभद्रा, आदि को श्रीकृष्ण अपने साथ (द्वारका) ले गये। इसके बाद शीघ्र ही पांडव काम्यक वन से द्वैतवन गये (वनपर्व २३-१,२)। उस समय के द्वैतवन का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं—

तमालतालाभ्रमधूकनीपकदम्बसर्जार्जुनकर्णिकारैः
तपात्यये पुष्पधरैरुपेतं महावनं राष्ट्रपतिर्ददर्श ॥ वन पर्व २४-१७
महाद्रुमाणां शिखरेषु तस्थुर्मनोरमां वाचमुदीरयन्तः
मयूरदात्यूह चकोरसङ्घास्तस्मिन् वने बर्हिणकोकिलाश्च ॥ १८

"राष्ट्रपति युधिष्ठिरने (उस) 'तपात्यय' (ग्रीष्मांत) समय पुष्प धारण करने वाले तमाल, ताल, आम्र, मधूक, नीप, कदम्ब, सर्ज, अर्जुन, कर्णिकार आदि वृक्षों से भरा हुआ वह महावन देखा-१७। उस वन में विशाल वृक्षों के शिखरों पर मनोहर आवाज करते हुए मयूर, चातक, चकोर, बर्हिण तथा कोकिल पक्षियों के झुंड बैठे थे-१८"।

यहाँ (श्लोक १७) 'तपात्यय' (ग्रीष्म ऋतु का अन्त) यह महत्त्व का शब्द आया है। 'तप' का ग्रीष्म ऋतु के अर्थ में प्रयोग द्रोणपर्व १६३-२४ तथा कर्णपर्व ७५-२ में भी आया है। तथा वनपर्व में ही निम्न श्लोकों में 'तपात्यय' शब्द ग्रीष्मान्त तथा वर्षा ऋतु के आगमन के लिये निःसंदिग्ध प्रयुक्त है। वनवास के बारहवें वर्ष में (प्रकरण ४ देखिये) पांडव फिर द्वैतवन में आये उस समय का वर्णन करते हुवे महाकवि कहते हैं—

निदाधान्तकरः कालः सर्वभूतसुखावहः
तत्रैव वसतां तेषां प्रावृट् समभिपद्यत ॥ १८२-१
छादयन्तो महाघोषाः खं दिशश्च बलाहकाः
प्रववर्षुर्दिवारात्रमसिताः सततं तदा ॥ २
तपात्ययनिकेताश्च शतशोऽथ सहस्रशः
अपेतार्कप्रभाजालाः सविद्युद्विमलप्रभाः ॥ ३

"पांडव द्वैतवन में ही थे तब ग्रीष्मकाल समाप्त होकर सब प्राणियों को आनन्दित करने वाला वर्षाकाल प्राप्त हुआ-१. तब महागर्जनाकारी काले मेघ आकाश एवं दिशाएँ व्याप्त कर रात-दिन लगातार वृष्टि करने लगे-२ 'तपात्यय' (गीष्मान्त, वर्षा प्रारम्भ) के समय खड़े किये तंबुओं के समान दिखने वाले उन सैकड़ों हजारों मेघों ने सूर्य का प्रकाश आवृत्त कर बिजली की विमल प्रभा प्रसृत कर दो-३."

'तपात्यय' समय के (और वह भी द्वैतवन से ही संबंधित) इन दोनों वर्णनों में साम्य है। प्रथम वर्णन में (२४-१८) मनोहर आवाज करने वाले मयूर, चातक (दात्यूह), कोकिल आदि के झुण्डों का उल्लेख है; तो द्वितीय वर्णन में 'स्तोकका: शिखिनश्चैव पुंस्कोकिल गणैः सह। मत्ताः परिपतन्ति स्म' (१८२-८) इस श्लोक में भी उन्मुक्त उड़ने वाले मयूर (शिखिनः), चातक (स्तोकका:) तथा कोकिल पक्षियों का उल्लेख है। स्पष्टतः प्रथम वर्णन का 'तपात्यय' भी वर्षा ऋतु के आगमन समय का था।

इसी की पुष्टि कालिदास के 'ऋतुसंहार' काव्य से भी होती है। वर्षा ऋतु के वर्णन में वे कहते है-

कदम्बसर्जार्जुनकेतकीवनं
विकम्पयंस्तत्कुसुमाधिवासितः
ससीकराम्भोधरसङ्गशीतलः
समीरणः कं न करोति सोत्सुकम् ॥ २-१७

"कदम्ब, सर्ज, अर्जुन एव केतकी से भरे हुए वन को कंपित करने वाला, उनके पुष्पों से सुगंधित, तथा चन्द्रकिरण व मेघों के संसर्ग से शीतल हुवा वायु किसका चित्त (प्रियमीलनार्थ) उत्सुक (उन्मत्त) नहीं करता है ?"। वर्षा ऋतु के कदम्ब, सर्ज, अर्जुन आदि के पुष्पों का उल्लेख महाभारत (ऊपर उद्धृत श्लोक २४-१७) में भी बिलकुल उन्ही शब्दों में आया है। इसी प्रकार महाभारत (२४-१८) में आया चातक पक्षियों का उल्लेख ऋतुसंहार के श्लोक २-३ में एवं मयूरों का २-६, १४, १६ में आता है।

निःसदेह वनपर्व के उपरोक्त (२४-१६ से १९) श्लोकों में निर्दिष्ट 'तपात्यय' यानी ग्रीष्मान्त तथा वर्षा ऋतु का प्रारम्भ था। उसके कुछ ही रोज पूर्व श्रीकृष्ण पांडवों की द्यूत में हुई दुर्दशा पर सान्त्वना देने आये थे ; तथा उसके कुछ ही पूर्व द्यूत होकर, वनवास प्रारम्भ हुआ था। यह सब वनवास प्रारम्भ ज्येष्ठ शुक्ल में होने की पुष्टि कर आश्विन को निरस्त करता है।

अंत में एक और प्रमाण। दुर्योधन ने विराट पर हमला किया तब ग्रीष्म ऋतु चल रहा था यह महाभारत में स्पष्ट ही कहा है। इस हमले की योजना करते समय अज्ञातवासी पांडवों का तबतक पता न लगने से चिंतित दुर्योधन ने कहा—

अल्पावशिष्टं कालस्य गतभूयिष्ठमन्ततः
तेषामज्ञातचर्यायामस्मिन् वर्षे त्रयोदशे ॥ विराटपर्व २६-३

"इस तेरहवे वर्ष में पांडव अज्ञातवास का अधिकतर समय बिता चुके हैं और अब कुछ थोड़ा-सा ही बाकी है"। यदि वनवास प्रारम्भ आश्विन में होता, तो दुर्योधन की अपेक्षानुसार तेरहवे वर्ष की यानी अज्ञातवास की समाप्ति भी आश्विन में ही होनी थी (जैसा कि नीलकंठ ने ऊपर उद्धृत भाष्य मे कहा भी है)। किन्तु उस हालत में आश्विन (ग्रीष्म से) चार पाच माह दूर होने से, दुर्योधन अज्ञातवास वर्ष अब मात्र 'अल्पावशिष्ट' (थोडासाही शेष) है ऐसा नही कहता। इसके विपरीत, वनवास प्रारंभ ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को होने से दुर्योधन की अपेक्षानुसार उसी तिथि पर अज्ञातवास समाप्ति होनी थी, इसलिये ग्रीष्म ऋतु के आरंभ के लगभग उसने कहा कि, पांडवों के अज्ञातवास का समय अब कुछ थोडाही बचा है। तथा इसी लिये कृपाचार्य ने भी उस विचार विमर्श में कहा कि, अज्ञातवासी पाण्डवों का प्रकट होने का समय अब समीप आ गया है ('काले चोदयमागते', २९-५)।

द्यूत ज्येष्ठ मे हुवा था इसकी महाभारत में वर्णित निम्न घटनाओं के स्थूल समय से भी सुसंगति होती है। इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ में प्रदर्शित पांडवों के अपार वैभव से मत्सरग्रस्त दुर्योधन ने हस्तिनापुर मे द्यूत की योजना कर, उस लिये धृतराष्ट्र के द्वारा पांडवों को आमंत्रित किया। इस यज्ञ के अभिषेचनीय विधि की तिथि शास्त्रानुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा निश्चित है *। उस तिथि पर या उसके करीब श्रीकृष्ण ने अतिथि सत्कार पर उठे विवाद में शिशुपाल का यज्ञमंडप में वध किया। वह समाचार मिलतेही बदला लेने शाल्व ने तत्काल द्वारका पर धावा किया; तब स्वयं कृष्ण अभी इन्द्रप्रस्थ में ही पांडवों के साथ थे (वनपर्व १४-५)। उस समय द्वारका की रक्षार्थ उसके आसपास के कुएँ एवं बावडियाँ निर्जल कर दी गई (वनपर्व १५-१६)। यह वर्षा ऋतु में संभव न होकर उसके पूर्व का ग्रीष्म ऋतु सूचित करता है। इसके बाद शीघ्र ही श्रीकृष्ण द्वारका वापिस आये, और उन्होंने शाल्व से युद्ध किया, और उसी समय उधर हस्तिनापुर में द्यूत हुवा (वनपर्व, अध्याय १३, अध्याय १४ श्लोक २२, एवं अध्याय २२ श्लोक ४२,४३)। श्रीकृष्ण को द्यूत का, एवं उसके परिणाम स्वरूप हुए पांडव वनवास का, समाचार मिलतेही वे उनका सान्त्वन करने वन में जाकर उन्हें मिले. और जिस समय पांडवों से बिदा लेकर (एवं अपने साथ सुभद्रा, अभिमन्यु आदि को लेकर) श्रीकृष्ण द्वारका लोटे तब ऊपर बताये अनुसार ग्रीष्मान्त का समय था।

* देखिये History of Dharmashastra, by Dr. P.V. Kane Vol. II. ii, p. 1216 (इसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित है); तथा शतपथ ब्राह्मण, Eng, Tran. in S.B.E. Series, Vol XVI, P.68 footnote 2, and Vol. X LI, p. 68 ❑

प्रकरण ४

तेरह वर्षों की गणना एवं क्रमबद्ध घटना

पांडवों ने की गणना

पांडवों ने, और उनके विपरीत दुर्योधन ने, तेरह वर्षो की अधिक मास समय सहित की भिन्न भिन्न गणना अब इस प्रकार पूर्णतया स्पष्ट की जा सकती है। पांडवों ने की गणना इस प्रकार थी।

	महीने	दिवस	
ज्येष्ट शुक्ल ११ (प्रथम वर्ष की) से ज्येष्ट अमावास्या (प्रथम वर्ष की)	०	२०	३१ माह २० दिन (+वनवासपूर्व १८ माह-१० दिन = ५८ माह)
आषाढ शु. १ (प्रथम वर्ष की) से ज्येष्ट अमावास्या (द्वितीय वर्ष की)	१२	००	
आषाढ शु. १ से ज्येष्ट अमावास्या	१२	००	
आषाढ शु. १ से ज्येष्ट अमावास्या	१२	००	
आषाढ शु. १ से भाद्रपद अमावास्या (चतुर्थ वर्ष की)	३	००	
+ भाद्रपद बाद दो अधिक मास (चतुर्थ वर्ष में)			+२
आश्विन शु. १ (चतुर्थ वर्ष की) से भाद्रपद अमावास्या (पंचम वर्ष की)	१२	००	५८ माह
आश्विन शु. १ से भाद्रपद अमावास्या	१२	००	
आश्विन शु. १ से भाद्रपद अमावास्या	१२	००	
आश्विन शु. १ से भाद्रपद अमावास्या	१२	००	
आश्विन शु. १ (अष्टम वर्ष की) से आषाढ अमावास्या (नवम वर्ष की)	१०	००	

+ आषाढ बाद दो अधिक मास (नवम वर्ष में)—— +२

श्रावण शु. १ (नवम वर्ष की) से आषाढ अमावास्या (दशम वर्ष की)	१२ - ००	५८ माह
श्रावण शु. १ से आषाढ अमावास्या	१२ - ००	
श्रावण शु. १ से आषाढ अमावास्या	१२ - ००	
श्रावण शु. १ (द्वादश वर्ष की) से आषाढ अमावास्या (त्रयोदश वर्ष की)	१२ - ००	
श्रावण शु. १ (त्रयोदश वर्ष की) से वैशाख अमावास्या (त्रयोदश वर्ष की)	१० - ००	

+ वैशाख के बाद प्रथम अधिक मास, एवं उसे लगकर

द्वितीय अधिक मास शु. १ से वद्य सप्तमी +१-२२

कुल १५५-२० + ५-२२

= १६१-१२

= १३ चान्द्र वर्ष + ५ माह १२ दिवस

= सौर तेरह वर्ष

अज्ञातवास से प्रकट होने की तिथि :— वैशाखोत्तर (ज्येष्ठपूर्व) द्वितीय अधिक मास कृष्ण अष्टमी।

इसमें दीखेगा कि तेरह वर्षों मे अधिक मास का प्रथम द्वय वनवास के चतुर्थ वर्ष में, दूसरा द्वय नवम वर्ष में, तथा तीसरा द्वय तेरहवे वर्ष मे आया ; फिर भी हर समय दो द्वयों मे अन्तर ठीक अट्ठावन मास का है।

पांडवों की यही गणना एक अन्य तरीके से इस प्रकार बताई जा सकती है—

वर्ष		मास	
१ ज्येष्ठ शु. ११ से ज्येष्ठ शु. १०	=	१२ ००	३१ माह २० दिन (+वनवासपूर्व २८ माह १० दिन = ५८ माह)
२ ——'' ——	=	१२ ००	
३ ——'' ——	=	१२ ००	
४ ज्येष्ठ शु. ११ से भाद्रपद अमावास्या	=	३ २०	
भाद्रपद बाद दो अधिक मास			+२
आश्विन शु. १ से ज्येष्ठ शु. १०	=	८ १०	५८ माह
५ ज्येष्ठ शु. ११ से ज्येष्ठ शु. १०	=	१२ ००	
६ ——'' ——	=	१२ ००	
७ ——'' ——	=	१२ ००	
८ ——'' ——	=	१२ ००	
९ ज्येष्ठ शु. ११ से आषाढ अमावास्या	=	१ २०	
आषाढ बाद दो अधिक मास			+२
श्रावण शु. १ से ज्येष्ठ शु. १०	=	१० १०	५८ माह
१० ज्येष्ठ शु. ११ से ज्येष्ठ शु. १०	=	१२ ००	
११ ——'' ——	=	१२ ००	
१२ ——'' ——	=	१२ ००	
१३ ज्येष्ठ शु. ११ से वैशाख अमावास्या	=	११ २०	

वैशाख बाद प्रथम अधिक मास,

एवं उसे लगकर द्वितीय अधिकमास +१-२२

शु. १ से वद्य सप्तमी

कुल = १५५ -२०+ ५ -२२

= १६१ - १२

= १३ चान्द्र वर्ष + ५ माह १२ दिवस

= सौर तेरह वर्ष

अज्ञात वास से प्रकट होने की तिथि :— वैशाखोत्तर (ज्येष्ठ पूर्व) द्वितीय अधिकमास कृष्ण अष्टमी.

ऊपर कहे अनुसार गणित के हिसाब से अधिक मास समय का अंतिम दिन आंशिक होते हुए भी , पांडवों ने भारतीय परंपरानुसार उसे (रात्रि समाप्ति तक) पूरा गिना। इसी लिये उन्होने 'अज्ञात' अवस्था अंतिम वद्य सप्तमी को अगले सूर्योदय तक पालन की। अन्यथा, उस सप्तमी को ही वे सुशर्मा से प्रकट रूप से लड़ते। किन्तु उस रात्रियुद्ध में भीम शत्रु पर फेकने एक वृक्ष उखाडने लगा, तो युधिष्ठिर ने तत्काल उसे रोककर कहा —

मा भीम साहसं कार्षीस्तिष्ठत्वेष वनस्पति:
मा त्वां वृक्षेण कर्माणि कुर्वाणमतिमानुषम् ॥ विराट पर्व ३३ - १८
जना: समवबुध्येरन् भीमोऽयमिति भारत
अन्यदेवायुधं किंचित् प्रतिपद्यस्व मानुषम् ॥ १९

"भीम ऐसा दु:साहस मत कर ; उस वृक्ष को वहीं रहने दे। यदि तू वृक्ष उठाकर कोई अतिमानुष कर्म करेगा तो लोक पहिचान लेंगे कि यह भीम है। अत: मनुष्यों द्वारा साधारणतया प्रयुक्त कोई आयुध ही ग्रहण कर।" सप्तमी कि उस रात्रि की समाप्ति को अभी कुछ घडियाँ बाकी थीं , जिसके पूर्व किसी भी पांडव को प्रकट नहीं होना था। अत: युधिष्ठिर ने तुरन्त यह चेतावनी दी !

एक संभाव्य शंका

भीष्म ने 'अधिक' समय ५ माह १२ दिन गिना है, फिर इस तालिका में वह पाच माह बाईस दिन कैसा होता है ? किन्तु पाठक देखेंगे कि, गणना के अंत में कुल समय बराबर १६१ मास १२ दिन आता है; जिसमें १५६ मूल चान्द्रमास (तेरह चान्द्र वर्ष) होकर, शेष पाच माह बारह दिन भीष्म के गणित के अनुसार 'अधिक' समय के हैं। अब अधिकसमय की अलग जोड़ पांच माह बावीस दिन दिखती है इसका कारण यह है कि, वनवास प्रारंभ (ज्येष्ठ) मास के आरंभ समय शुक्ल प्रतिपदा पर न होते दस दिन बाद शुक्ल एकादशी को हुआ था। यह देखते वनवास के प्रत्येक मास की(तथा अन्तिम १५६ वें मास की भी) समाप्ति वस्तुत: अमावास्या पर न होते शुक्ल दशमी पर माननी चाहिये। किन्तु पंचांग में अधिक मास ठीक अमावास्या के बाद जोडे जाते हैं. माह के कही बीच में नहीं। अत: अन्त में तीसरी बार जो एक माह बावीस दिन का समय जुड़ा है, उसके दस दिन वस्तुत: वह १५६ वाँ चान्द्रमास (या फिर वनवासारंभ का ज्येष्ठ मास) पूर्ण करने में लगे। यदि ऊपर दी गणना मे (अधिक मास समय कुल पाच माह बारह दिन ही करने हेतु) तीसरे अधिक मास द्वय के मात्र एक माह बारह दिन ही गिनें, तो आशय यह होगा कि पांडवों ने 'अधिक' समय तो पूरा किया , किन्तु मूल १५६ महीनों में दस दिन कम बिताये। परंतु वस्तुत: पांडवों ने वे भी बराबर पूर्ण किये थे; और इसी लिये अज्ञातवास की अंतिम तिथि कृष्ण सप्तमी गिनकर कृष्ण अष्टमी को सूर्योदय समय अर्जुन कौरवों के सामने प्रकट हुवा।

अज्ञातवास वर्ष का ब्योरा

इसी के साथ पांडवों के अज्ञातवास समय का भी पूरा ब्योरा प्रस्तुत है। उन्होंने वह एक वर्ष भी सौर गिना ; और इस लिये (कुल अधिक मास समय में से) बारह दिन एक चान्द्र वर्ष में जोडकर, अज्ञातवास बारह मास बारह दिन किया।

वह इस प्रकार —

प्रथम मास प्रारंभ	आषाढ़ शु. एकादशी
द्वितीय मास प्रारंभ	श्रावण शु. एकादशी
तृतीय मास प्रारंभ	भाद्रपद शु. एकादशी
चतुर्थ मास प्रारंभ	आंश्विन शु. एकादशी
पंचम मास प्रारंभ	कार्तिक शु. एकादशी
(और इसी प्रकार आगे)	
दशम मास प्रारंभ	चैत्र शु. एकादशी
एकादश मास प्रारंभ	वैशाख शु. एकादशी
द्वादश मास प्रारंभ	प्रथम अधिक मास शु. एकादशी
द्वादश मास पूर्ण	द्वितीय अधिक मास शु. दशमी
बारह 'अधिक' दिवस पूर्ण	द्वितीय अधिक मास कृ. सप्तमी

प्रकट होने की तिथि: - वैशाखोत्तर (ज्येष्ठपूर्व) द्वितीय अधिक मास कृष्ण अष्टमी।

अज्ञातवास के इस ब्योरेवार कालगणना की एक पुष्टि प्रस्तुत है। अज्ञातवास के चतुर्थ मास में ब्रह्मोत्सव आया था ; तथा उसमें भीम का जीमूत से मल्लयुद्ध हुआ।

अथ मासे चतुर्थे तु ब्रह्मण: सुमहोत्सव:
आसीत् समृद्धो मत्स्येषु पुरुषाणां सुसम्मत: ॥ विराट पर्व १३ - १४

" तदनंतर (अज्ञातवास के) चतुर्थ वर्ष मे ब्रह्मा का बडा महोत्सव संपन्न हुवा, जो (मत्स्य) विराट राज्य की जनता मे विशेष लोकप्रिय था"। परंपरानुसार यह ब्रह्मोत्सव शरद ऋतु में होता था। सर्वज्ञनारायण भाष्य में कहा हैं, "ब्रह्मण: उत्सव: शरदि कर्तव्यो देशविशेषे प्रसिद्ध:"। तथा आचार्य नीलकंठ लिखते हैं, "ब्रह्मण: उत्सव: शरदि नवधान्योत्पत्तौ सर्वै: क्रियते "। नवधान्योत्पत्ति होने पर यह मनाया जाता है, अर्थात् उसका समय वर्षा ऋतु समाप्त होने बाद शरद ऋतु के प्रथम मास आश्विन में होना चाहिये। अज्ञातवास वर्ष की ऊपर दी हुई तालिका मे चतुर्थ मास ठीक आश्विन में आता है, और तब वह ब्रह्मोत्सव महाभारत में कहे अनुसार विराट राज्य में मनाया गया।

यहां एक और तथ्य का विवरण। वनवास प्रारंभ ज्येष्ठ शु. एकादशी को हुआ था ; अत: वनवास के हर वर्ष का आरंभ (ऊपर तेरह वर्षो की वैकल्पिक गणना में दर्शाये

अनुसार) उस तिथि को माना जा सकता है। किन्तु अंतिम वर्ष घोर अज्ञातवास में बिताना था। और अज्ञातवास भी ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को आरंभ होता , तो उधर अंत मे अधिक मास आनेसे अज्ञातवास तेरह माह बारह दिन तक लंबा हो जाता। किन्तु , जिस प्रकार पांडवों ने उन तेरह वर्षो में संयोगवश आया (छ: माह का) संपूर्ण 'अधिक' समय न पालन करते , उसका तेरह वर्षो के लिये होनेवाला भाग मात्र पालन किया, उसी प्रकार अज्ञातवास का एक वर्ष गिनने में वे उस वर्ष के अंत में संयोगवश आने वाले सब 'अधिक' दिवस न जोडते , मात्र एक वर्ष के हिसाब से 'अधिक' (बारह) दिवस जोडने बाध्य थे। अत: उन्होने अज्ञातवास में बारह माह और बारह दिन बिताये ; और इस कारण अज्ञातवास वर्ष ज्येष्ठ के बजाय एक माह बाद आषाढ शुक्ल एकादशी को आरंभ हुवा।

आचार्य नीलकंठ के मतानुसार भी वनवास प्रारम्भ तिथि और अज्ञातवास आरम्भ तिथि इनमें अन्तर आता है - और वह बहुत अधिक। वे वनवास प्रारम्भ आश्विन में तथा अज्ञातवास समाप्ति वैशाख में मानते हैं। इसका मतलब होगा कि यदि अज्ञातवास का आरम्भ भी आश्विन में माना तो पांडवों ने मात्र सात आठ मास ही अज्ञातवास किया। किन्तु तेरह वर्षो में पांडवों ने अधिक मास नहीं गिने ऐसा कहने वाले नीलकंठ भी पांडवों ने अज्ञातवास में बारह मास भी पूरे नहीं किये ऐसा नहीं कहेंगे। इसके अलावा स्वयं महाभारतकार ने अज्ञातवास के दस मास पूर्ण होने का स्पष्ट उल्लेख किया है (विराट पर्व १४- १, आगे उद्धृत)। अत: नीलकंठ को वनवास आरम्भ आश्विन में मानते हुए भी अज्ञातवास वर्ष का आरम्भ वैशाख में मानना पड़ेगा। किन्तु अज्ञातवास का आरम्भ आश्विन में माना या वैशाख में , उसके चतुर्थ मास में ब्रह्मोत्सव असम्भव है।

दुर्योधन की गणना

(ऊपर पांडवों की वैकल्पिक गणना में बताये अनुसार) दुर्योधन ने हर वर्ष ज्येष्ठ शु. एकादशी से ज्येष्ठ शु. दशमी इस प्रकार गिना। किन्तु उस गणना मे और दुर्योधन की गणना में महत्त्व का अंतर यह रहा कि , उसने अंतिम तेरहवा वर्ष भी इसी प्रकार ज्येष्ठ शु. दशमी तक गिना।

"वर्ष १३ :- ज्येष्ठ शु. एकादशी से ज्येष्ठ शु. दशमी (इसमें वैशाख बाद दो अधिक मास)"। और इसी विवाद सें वह महायुद्ध उत्पन्न हुवा!

एक स्पष्टीकरण

इस विवेचन को यथासंभव सर्वांगीण स्वरूप देने की दृष्टि से यहां एक और बात पर विचार करता हूँ। उन तेरह वर्षों मे तीन अधिकमास द्वय आये थें; यह भीष्म ने कुल अधिक मास समय पाच माह और कुछ दिन गिना इससे स्पष्ट है। अज्ञातवास समाप्ति समय

इनमें से तीसरा द्वय चालू था ,इस आधार पर मैनें ऊपर गणना की है। किन्तु इसके बजाय, वह तीसरा द्वय भी इसके पूर्व आ गया था, और अब पांडव मात्र पश्चाद्दर्शी गिनती कर अंतिम सामान्य मास से अठारह दिन कम करना चाहते थे ऐसा किसीका कहना हो तो ?

फिर भी वनवास प्रारंभ तिथि (और इस कारण दुर्योधन के अनुसार अज्ञातवास से प्रकट होने की तिथि) ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी ही रहेगी। फरक इतनाहि होगा कि, पांडवों की प्रकटीकरण की वद्य अष्टमी वैशाखोत्तर (ज्येष्ठपूर्व) द्वितीय अधिक मास की न कहते, सामान्य वैशाख (पूर्णिमान्त ज्येष्ठ) की कही जावेगी। यह वही विकल्प है जो प्रकरण ३ मे क्रमांक दो पर दिया है। किन्तु इसमें तीसरा अधिकमास द्वय अज्ञातवास वर्ष में ही किन्तु अंत के बजाय बीच में कहीं माना, तो अज्ञातवास के चतुर्थ एवं दसवे माह के जो विशेष उल्लेख महाभारतकार ने किये हैं वे गडबडा जायेंगे। क्या वह तृतीय द्वय तेरहवे वर्ष के पूर्व आ गया माना जा सकता है? उदाहरणार्थ, प्रथम द्वय वनवास के द्वितीय वर्ष में, दूसरा द्वय सातवे वर्ष में, तथा तीसरा बारहवे वर्ष में मानना संभव हो सकता है। किन्तु इसपर आपत्ति यह कि, अर्जुन प्रकटीकरण की तिथि वैशाख कृष्ण अष्टमी मानी तो अज्ञातवास का आरंभ (उस तेरहवे वर्ष में अधिक मास न रखते हुए) बारह मास पूर्व की वैशाख कृष्ण अष्टमी को मानना पडेगा। और फिर उसका चौथा महीना श्रावण कृष्ण अष्टमी से भाद्रप्रद कृष्ण अष्टमी तक होकर आश्विन मास का ब्रह्मोत्सव सिद्ध नही होगा। इस पर भी यदि मास पूर्णिमान्त लिये तो वह चतुर्थ मास भाद्रपद कृष्ण अष्टमी से आश्विन कृष्ण सप्तमी तक होगा। किन्तु उस पूर्णिमान्त आश्विन वद्य के वे प्रथम सात दिन वस्तुत: अमावास्यान्त भाद्रपद वद्य पक्ष के होने से भारतीय परंपरानुसार पितृश्राद्धादि के लिये विशेष रूप से नियुक्त होकर, उन दिनों मे ब्रह्मोत्सव का आनंदमय समारोह नही मनाया जाता।औंर इसके अलावा , महाभारत के मास मूलत: पूर्णिमान्त न होकर अमावास्यान्त है ; जिसके कुछ प्रमाण यहां प्रस्तुत है।

महाभारत के मास अमावास्यान्त

महाभारतकार प्राय: शुक्ल पक्ष के साथ मास का नाम निर्दिष्ट करते हैं, किन्तु कृष्ण पक्ष के मास का नाम पूर्ववर्ती पूर्णिमा का उल्लेख कर अप्रत्यक्ष तरीके से सूचित करते हैं। इसके कुछ उदाहरण ऊपर दिये हैं। यदि उनकी दृष्टि मे पूर्णिमान्त मास होते , तो वे वद्य पक्ष (जिससे महीना आरंभ होता है) के साथ महीने का नाम देकर, शुक्ल पक्ष के महीने का नाम अप्रत्यक्ष सूचित करते।

युवा पांडव हस्तिनापुर से वारणावत गये वह कथन करने में महाकवि कहते हैं—

अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाता: फाल्गुनस्य ते
वारणावतमासाद्य ददृशुर्नागरं जनम् ॥ आदिपर्व १४४-३४

''वे (पांडव) फाल्गुन के आठवें रोज रोहिणी नक्षत्र पर (हस्तिनापुर से) निकले और यथासमय वारणावत पहुँचकर वहाँ नागरिकों से मिले।'' फाल्गुन मास में (चन्द्र का) (कृत्तिका के बाद आने वाला) रोहिणी नक्षत्र शुक्ल पक्ष में ही आयगा; क्योकि, फाल्गुन पूर्णिमा को चन्द्र पूर्वा फाल्गुनी में (या उसके समीप) होता है, और रोहिणी वहां से करीब सात स्थान पहिले है। यह देखते फाल्गुन माह की शुक्ल अष्टमी को चन्द्र रोहिणी में हो सकता है। अब इस श्लोक में उस तिथि को फाल्गुन मास का आठवा दिन बताया है; जिससे उस मास का आरंभ शुक्लपक्ष से होकर समाप्ति अमावास्या पर निश्चित है। वह मास पूर्णिमान्त होता तो रोहिणी नक्षत्र का दिवस उसमें करीब तेईसवा होता। यदि यहां मात्र 'अष्टम्याम्' शब्द होता तो कहा जा सकता कि, वह संख्या तिथिदर्शक होकर फाल्गुन मास के दिनो के अनुक्रम की परिचायक नही; किन्तु 'अष्टमे अहनि' शब्द स्पष्ट हैं।

रोहिणी नाम कभी कभी ज्येष्ठ नक्षत्र के लिये भी प्रयुक्त होता है। किन्तु प्रस्तुत संदर्भ में पांडवों का हस्तिनापुर से बाहरगांव प्रयाण शुभयोग पर आयोजित किया गया था यह महाभारतकार सूचित करना चाहते है। कृत्तिका के बाद आनेवाली रोहिणी का चन्द्र से योग बहुत शुभ माना गया है। शं.बा. दीक्षित लिखते हैं ,* 'रोहिणी नक्षत्र मे पाच तारे हैं। ..... इस रोहिणी चन्द्र समागम की ओर हमारे लोगों का ध्यान बहुत प्राचीन काल से लगा है.... गर्ग आदि की संहिताओं मे इस योग के अनेक वर्णन हैं। बृहत्संहिता में तो पूरा २४ वाँ अध्याय रोहिणीचन्द्र योग पर है'। चन्द्र ज्येष्ठा योग का ऐसा विशेष महत्त्व नही दीखता।

इसके अलावा, अमावास्यान्त मास पद्धति दर्शाने वाले कुछ स्पष्ट वचन भी महाभारत में हैं। अनुशासन पर्व में (८७-१६) भीष्म पितृश्राद्धों के लिये नियुक्त कृष्ण पक्ष को 'अपर' पक्ष, और शुक्ल पक्ष को 'पूर्व' पक्ष कहते हैं। यह अमावास्यान्त मास पद्धति है। इसी प्रकार शांति पर्व में भी भीष्म कहते हैं—

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयो पुनः
शुक्लोऽहः कर्मचेष्टायां कृष्णः स्वप्नाय शर्वरी ॥ शांति पर्व २३१-१६

''(मानवों का) एक मास याने पितरों की एक दिनरात है ; उसमें भी शुक्ल पक्ष उनके काम काज हेतु दिन का समय, तथा कृष्ण पक्ष नींद हेतु रात्रि का समय ऐसा विभाजन है।'' यहां भी अमावास्यान्त मास सूचित है। एक और स्थान पर कहा है, ''अहः पूर्वं ततो रात्रिर्मासा शुक्लादया स्मृताः (आश्वमेघिक पर्व, ४४-२); ''दिन प्रथम आता है, बाद में रात्रि ; मास शुक्ल पक्ष से प्रारंभ होते बताये गये हैं।'' कहने की आवश्यकता नहीं कि, शुक्ल पक्ष प्रथम आना याने मास अमावास्यान्त होना।

* पूर्व उल्लेखित (मराठी) पृ.१४३-१४४, हिंदी अनुवाद मेरा

तेरह वर्षों का घटनाक्रमः वनवास प्रारंभ

वनवास का आरंभ एवं अज्ञातवास समाप्ति की तिथियाँ इस प्रकार निश्चित की जाने से , उनके बीच के तेरह वर्षों की घटनाओं का ब्यौरा देना भी संभव हो गया है। वनवास का अधिकतर समय काम्यक वन एवं द्वैतवन में, तथा हिमालय पर बीता। उसकी जानकारी देते हुए महाकवि ने वनवास के वर्ष क्रमशः गिनकर बताये हैं।

राजसूय यज्ञ में पांडवों का अपार वैभव देखकर दुर्योधन मत्सर से जलने लगा। और शकुनी के सुझाव पर उसने कपटयुक्त द्यूत की योजना की। उसके कहने पर पुत्रप्रेम से अंध धृतराष्ट्र ने पांडवों को द्यूतार्थ आमंत्रित किया। युधिष्ठिर को द्यूत विशेष प्रिय नही था। किन्तु पितृतुल्य धृतराष्ट्र का आदेश शिरोधार्य मानकर, वह अपने भाई एवं द्रौपदी आदि परिवार सहित हस्तिनापुर आया। द्यूत की तिथि हमने ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी निश्चित की है।

द्यूत में पांडव सर्वस्व हार गये , तथा स्वयं भी दास बन गये। इसके अलावा , भरी सभा में द्रौपदीवस्त्रहरण की अति घृणास्पद घटना हुई। उससे सारे सभागृह में हुवा तीव्र क्षोभ ध्यान में लेकर, धृतराष्ट्र ने पांडवों को (द्रौपदी सहित) दास्यतामुक्त कर उनका राज्य भी वापिस किया। पांडव तत्काल इन्द्रप्रस्थ वापिस जाने निकले। किन्तु दुर्योधन ने धृतराष्ट्र की अनुमति से उन्हें रास्ते से ही फिर द्यूतार्थ आमंत्रित किया, और 'अनुद्यूत' हुवा। इस बार शर्त यह थी कि , हारने वाले पक्ष ने बारह वर्ष वनवास एवं एक वर्ष अज्ञातवास भुगतना। इस बार भी युधिष्ठिर हारा, और पांडव तत्काल वही से (हस्तिनापुर से) वनवास पर निकले। पश्चिम की ओर बढते वे चौथे दिन मध्यरात्रि के करीब काम्यक वन पहुचे (वनपर्व ११-३,४)।

प्रथम काम्यक निवास

पांडवों ने काम्यक वन में प्रवेश किया उस समय के ऋतुमान का महाकवि ने मार्मिक संकेत दिया है।

तस्मिन् क्षणेऽथ प्रववौ मारुतो भृशदारुणः
रजसा संवृतं तेन नष्टज्योतिरभून्नभः ॥ वनपर्व ११-१३

''उस समय प्रचंड आँधी प्रारम्भ हुई, जिससे उड़ी धूल से आकाश आच्छादित होकर (चन्द्र का) प्रकाश नष्ट हो गया।'' बालुकामय आँधी का यह उल्लेख ग्रीष्म ऋतु का संकेत देकर ऊपर प्रस्थापित वनवास प्रारम्भ तिथि की पुष्टि करता है। आदिपर्व में (१५०-२) कहा भी है कि, उस प्रदेश में ज्येष्ठ ('शुचि') और आषाढ ('शुक्र') मासों में जोर से आँधी चलती है।

शीघ्रही द्यूत एवं वनवास की वार्ता द्वारका पहुची ; और श्रीकृष्ण पांडवों का सान्त्वन करने काम्यक वन में आकर उनसे मिले।

द्वैतवन में प्रथम निवास

श्रीकृष्ण वापिस जाने बाद पांडव काम्यक वन से द्वैतवन गये (२३-१,२)। ऊपर कहे अनुसार यह ग्रीष्म ऋतु के अंत का समय था। कुछ दिन बाद यहां महर्षि व्यास आकर पाण्डवों से मिले (अध्याय ३६)। उन्होंने पांडवों से कहा कि, पांडवो द्वारा द्वैतवन में शिकार के कारण वन्य पशुओं की बहुत हानी हो रही होकर, वहां के तापसियों के नित्य कर्मों मे भी बाधा आती है, इसलिये पांडव अन्यत्र चले जावें। तदनुसार पांडव द्वैतवन से वापिस काम्यक चले गये। आगे बताये अनुसार यह दूसरा काम्यक निवास पाच वर्ष चलकर मार्गशीर्ष में समाप्त हुवा; अतः उसका आरंभ भी मार्गशीर्ष के करीब माना जा सकता है।

इस प्रकार पांडवों का प्रथम द्वैतवन निवास मार्गशीर्ष तक चला। वनवास के प्रथम छः माह यहां समाप्त हुए।

द्वितीय काम्यक निवास (एवं उसी समय अर्जुन का इंद्रलोक निवास)

काम्यक वन में वापिस जाने बाद अर्जुन ने विशेष अस्त्रविद्याप्राप्ति हेतु इन्द्रलोक जाने प्रस्थान किया (३७-१६)। वह हिमालय गया, और गंधमादन पर्वत लांघकर इन्द्रकील नामक स्थान पहुचा; वहां चार मास उग्र तपस्या करने पर उसे शिवदर्शन हुआ। तदनंतर वह इन्द्रलोक पहुचा। तब तक अर्जुन शेष पांडवों से अलग होकर छः मास बीते थे। यहां वनवास का प्रथम वर्ष समाप्त होता है।

अर्जुन का इन्द्रलोक में निवास पूरे पाच वर्ष होकर ज्येष्ठ में समाप्त हुवा। इस दरम्यान शेष पांडवों का (द्रौपदी सह) काम्यक निवास चलकर उन्होंने वहां पाच वर्ष बिताए।

तथा तेषां वसतां काम्यके वै
विहीनानामर्जुनेनोत्सुकानाम्
पञ्चैव वर्षाणि तथा व्यतीयुः ५०-१२

"इस प्रकार काम्यक वन में निवास करते हुए उन्होने (चार पांडव एवं द्रौपदी ने) बिना अर्जुन के तथा उसे फिर अपने साथ पाने उत्सुकता से पाच साल व्यतीत किये"। इसके बाद मार्गशीर्ष में वे वहां से तीर्थयात्रा पर निकले।

तीर्थयात्रा एवं अर्जुन का पुनर्मिलन

काम्यक वन से पांडवों ने तीर्थयात्रा पर प्रयाण किया उसकी तिथि महाकवि इस प्रकार दर्शाते हैं-

धौम्येन सहिता वीरास्तथा तैर्वनवासिभिः
मार्गशीर्ष्यामतीतायां पुष्येण प्रययुस्ततः ॥ वन पर्व, ९३ - २६

"मार्गशीर्ष पूर्णिमा के बाद चन्द्र पुष्य नक्षत्र में था तब वे वीर (पांडव) कुलगुरु धौम्य एवं अन्य तपस्वियों के साथ (तीर्थयात्रा पर) निकले।" मार्गशीर्ष पूर्णिमा को चन्द्र मृग नक्षत्र में (या उसके पास) होता है, जहां से पुष्य तीन स्थान बाद में है। इस प्रकार वह दिवस (अमावास्यान्त) मार्गशीर्ष वद्य तृतीया होगा। इस समय वनवास के साढे पाच साल पूरे हो गये थे, जिनमें अर्जुन के इन्द्रलोक निवास के साढे चार वर्ष अंतर्भूत हैं।

तीर्थयात्रा रथों मे आरंभ हुई। पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम भारत के तीर्थो का दर्शन कर पांडव उत्तर में हिमालय पहुचे, जहां पैदल चढाई आरंभ हुई। इस समय अर्जुनवियोग के पाच वर्ष पूर्ण हो चुके थे, जैसा कि युधिष्ठिर ने गिना —

पंचवर्षाण्यहं वीरं सत्यसंधं धनंजयम्
यन्न पश्यामि बीभत्सुं तेन तप्ये वृकोदर ॥ १४१-७

"भीम, सत्यप्रतिज्ञ वीर अर्जुन को न देख मुझे पांच वर्ष हो चुके हैं, इससे मैं दुःख सन्तप्त हूं"।यह गणना अर्जुन के काम्यक वन से प्रयाण से की है; यद्यपि कहीं कहीं महाकवि ने अर्जुन इन्द्रलोक पहुचने के समय से भी समय गिना है। अर्जुन से मिलने अति उत्सुक युधिष्ठिर ने कुछ दिनों बाद फिर कहा—

समाश्चतस्त्रोऽभिगताः शिवेन चरितां वने
कृतोद्देशः स बीभत्सुः पञ्चमीमभितः समाम् ॥ १५८ - ३
कृतश्च समयस्तेन पार्थेनामिततेजसा ॥ ८
पंचवर्षाणि वत्स्यामि विद्यार्थीति पुरा मयि । ९

"वन में कुशलपूर्वक विचरण करते हमें चार साल बीत गये हैं; (इस) पांचवे साल में वापिस आने का अर्जुन ने आश्वासन दिया था—३; अमित पराक्रमी वीर अर्जुन ने उस समय निश्चित कहा था कि मैं (इन्द्रलोक में) पांच साल (अस्त्रविद्या के) अध्ययनार्थ निवास करूँगा—८,९"। ये चार वर्ष पांडवों के कुल वनवास काल से न होकर, अर्जुन के इन्द्रलोक निवास के पांच वर्षों में से है। अर्जुन के उस निवास का पाचवा वर्ष इस समय चालू था।

हिमालय के मार्ग में कुछ स्थानों पर मुक्काम करते करते (जिसका कुछ ब्यौरा महाभारतकार ने दिया है), पांडव गंधमादन पर्वत के शिखर पहुचे। वहां कुछ मास बिताने बाद उन्हें कुबेर दर्शन हुआ। और उसके एक माह बाद अर्जुन के इन्द्रलोक निवास का पांचवा वर्ष समाप्त होकर, वह वापिस लौटकर युधिष्टिरादि से मिला।

तथा निवसतां तेषां पंचमं वर्षमभ्यगात्
शृण्वतां लोमशोक्तानि वाक्यानि विविधान्युत ॥ वनपर्व १६०-१०

"ऋषि लोमश से विविध (धार्मिक) कथा श्रवण करते हुए वहां रहकर उन्होंने (अर्जुन के इन्द्रलोक निवास का) पाचवा वर्ष पूर्ण किया"। कुल वनवास काल के अब तक छ: साल पूर्ण हुए थे।

गंधमादन पर चार साल

इसके बाद अर्जुन सहित सभी पांडवों ने गंधमादन पर्वत पर कुबेर लोक में चार और वर्ष बिताकर वनवास के दस वर्ष पूर्ण किये।

समेत्य पार्थेन यथैकरात्रम्
ऊषुः समास्तत्र तदा चतस्त्रः
पूर्वाश्च षट् ता दश पाण्डवानां
शिवां बभूवुर्वसतां वनेषु ॥ १७६ - ५

"तदनंतर वे वहां अर्जुन के साथ चार साल रहे, जो पूरा समय उन्हें एक रात्रि के समान प्रतीत हुआ; पहिले के छ: साल मिलाकर पांडवों ने इस प्रकार वनों में (अब तक) दस वर्ष सकुशल बिताये"। वनवास प्रारंभ ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को होने से वनवास के हर वर्ष की समाप्ति ज्येष्ठ में मानी जा सकती है।

वनवास का ग्यारहवा वर्ष

इस मास के आरम्भ में भीम ने युधिष्ठिर से कहा —

एकादशं वर्षमिदं वसामः
सुयोधनेनात्तसुखाः सुखार्हाः
तं वंचयित्वाधमबुद्धिशीलम्
अज्ञातवासं सुखमाप्नुयाम ॥ १७६-८

" सुखोपभोग के पात्र होते हुए भी दुर्योधन द्वारा सुख से वंचित किये जाकर, (उस अवस्था में) हमारा यह ग्यारहवा वर्ष चल रहा है; उस अधम बुद्धिवाले (दुर्योधन) से हमारा पता गुप्त रखकर हम अज्ञातवास समय सकुशल बितायेंगे"।

इसके बाद पांडव गंधमादन से वापिस नीचे उतरे। और रास्ते में बदरिकाश्रम मे एक मास रहकर किरातराज सुबाहू के राज्य में पहुचे (१७७-१७)। वहां से वे (वापिस) द्वैतवन के विशाखयूप जंगल में आये। यह लगभग श्रावण का समय होगा। स्वाभाविक ही चढने की तुलना में उतरने में समय कम लगा।

द्वैतवन में द्वितीय निवास

विशाखयूप में पांडव एक वर्ष रहे (१७७-१७)। वह वर्ष वर्षा ऋतु के साथ समाप्त हुआ।

तथा बहुविधाकारा प्रावृण्मेघानुनादिता
अभ्यतीता शिवा तेषां चरतां मरुधन्वसु ॥ १८२ - ९

"वे मरुभूमि में विचरण कर रहे थे तब मेघगर्जनायुक्त तथा विविध दृश्यों द्वारा व्यक्त मंगल वर्षा ऋतु बीत गया।" इसी लिये इस विशाखयूप निवास का आरम्भ ऊपर श्रावण के करीब माना है।

वहां से पांडव द्वैतवन में ही द्वैतवन सरोवर पर चले गये (१७७-२१)। वहां शरद ऋतु बिता कर वे कार्तिक पूर्णिमा तक रहे (१८२-११,१६ ऊपर उद्धृत)।

इन्ही दिनों में दुर्योधन ने अपनी गोशालाओं के निरीक्षण का बहाना बनाकर, किन्तु वस्तुतः वनवासी पांडवों को जानबूझकर नीचा दिखाने के हेतु, द्वैतवन मे घोषयात्रा की। किन्तु उसमें स्वयं उसका गंधर्वो से संघर्ष होकर उन्होंने उसे बंदी बनाया, जिससे उदारबुद्धि पांडवों ने उसे मुक्त किया।

कार्तिक कृष्ण पक्ष मे पाडंव द्वैतवन से पुनः काम्यक वन चले गये।

तमिरत्राभ्युदये तस्मिन् धौम्येन सह पाण्डवा :
सूतैः पौरोगवैश्चैव काम्यकं प्रययुर्वनम् ॥ १८२-१८

"(कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात) कृष्ण पक्ष के उस आरंभ पर महर्षि धौम्य , सारथीगण, रसोइये आदि सह पांडव काम्यक वन गये"। इस प्रकार द्वैतवन का यह द्वितीय निवास करीब एक संवत्सर विशाखयूप मे और दो मास द्वैतवन सरोवर पर हुआ। पाण्डवों की शिकार से द्वैतवन में पशु फिर भारी संख्या मे मारे जाने पर, बचे पशुओं ने युधिष्ठिर से दया की याचना की, तब उसने अपने भाईयों से कहा—

ते सत्यमाहुः कर्तव्या दयास्माभिर्वनौकसाम्
साष्टमासं हि नो वर्षं यदेतदुपयुङ्क्ष्महे ॥ २५८-१२

"उन (पशुओं) का निवेदन ठीक ही है; हमें इन वन्य जीवों पर दया करनी चाहिये; हमारा यहाँ (द्वैतवन में) निवास एक वर्ष आठ मास हो चुका है।" यहाँ युधिष्ठिर ने द्वैतवन में द्वितीय निवास के एक वर्ष दो माह में प्रथम निवास का समय भी जोड़कर अब तक का कुल समय बताया है। वन्य पशुओं की याचना का निमित्त कर महाकवि ने सूक्ष्मता से यहाँ कालगणना कर रखी है!

तृतीय काम्यक निवास

अभी कहे अनुसार कार्तिक कृष्ण पक्ष में पांण्डव द्वैतवन से फिर काम्यक वन में तृणबिंदु सरोवर पर आये। यह उनका काम्यक में तृतीय एवं अन्तिम निवास था। इस समय वनवास का बारहवां वर्ष चल रहा था। पाण्डव यहा माघ मास तक रहे होंगे ऐसा कुल घटनाक्रम से प्रतीत होता है।

इन दिनों में श्रीकृष्ण पुनः पांडवों से मिलने आये। तथा एक दिन पांडव शिकार करने गये थे और कुटिया पर द्रौपदी अकेली थी, तब जयद्रथ ने उसका अपहरण किया; किन्तु पांडव कुटिया पर वापिस लौटते ही उन्होने जयद्रथ का पीछा कर द्रौपदी को मुक्त किया, और जयद्रथ का हास्यास्पद शिरमुंडन कर उसे छोड दिया।

तृतीय द्वैतवन निवास

इसके बाद पांडव काम्यक छोडकर फिर द्वैतवन चले गये।

एवं हतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम्
विहाय काम्यकं राजा सह भ्रातृभिरच्युतः ॥३११-२
पुनर्द्वैतवनं रम्यमाजगाम युधिष्ठिरः । ३

"इस प्रकार द्रौपदी का (जयद्रथ द्वारा) अपहरण होने पर (यद्यपि द्रौपदी की तुरन्त मुक्तता की गई) अत्यन्त दुःखपीड़ित तथा धर्ममार्ग से कभी न हटने वाला राजा (युधिष्ठिर) काम्यक वन छोड़कर अपने भाइयों सहित पुनः रमणीय द्वैतवन में चला आया।" इसके बाद अज्ञातवास आरंभ तक पांडव यहीं रहे। अज्ञातवास आरंभ आषाढ शुक्ल एकादशी को हुआ था यह ऊपर बताया है। इस दरम्यान निम्न घटनाएँ हुई।

दुर्योधन का वैष्णव यज्ञ सम्पन्न हुआ। उस समय पांडव द्वैतवन में थे ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। दुःशासन दूत से कहता है—

गच्छ द्वैतवनं शीघ्रं पाण्डवान् पापपूरुषान्
निमन्त्रय यथान्यायं विप्रांस्तस्मिन् वने तदा ॥ वन पर्व २५६- ८

" शीघ्र द्वैतवन जाकर पापी पाण्डवों को तथा उस वन के निवासी ब्राह्मणों को यथोचित रीति से निमंत्रित करो।" यह यज्ञ राजसूय यज्ञ इतना दीर्घकाल चलनेवाला नही था, फिर भी प्रतिष्ठा में उसके समतुल्य था (२५५-१५,२०)। इन्ही दिनों में दुर्योधन ने क्रोधी दुर्वास ऋषि को प्रसन्न कर पांडवों की सत्त्वपरीक्षा लेने उन्हें प्रेरित किया। यह घटना पांडवों के तृतीय द्वैतवन निवास की होने के संकेत प्राप्त हैं। एक दिन पांडव भोजन कर आराम से बैठे थे, तब दुर्वास अनेक शिष्यों सहित अचानक उनके पास पहुचे। युधिष्ठिर ने उनका स्वागत

कर कहा कि, आप स्नानादि नित्य कर्म कर भोजन के लिये पधारिये। तदनुसार दुर्वास शिष्यों सहित नदी पर स्नान के लिये गये। किन्तु इधर द्रौपदी उस समय उन सब का भोजन किस प्रकार जुटाना इस घोर चिंता से ग्रस्त होकर, उसने श्रीकृष्ण का आर्तभाव से ध्यान किया। श्रीकृष्ण के योग प्रभाव से दुर्वास आदि को स्नान करते ही पूर्ण उदर तृप्ति का अनुभव होकर, वे भोजन के लिये पांडवों के पास वापिस न जाते नदी से ही भाग गये!

इस समय की एक अन्य घटना कर्ण को अवध्य करने वाले उसके जन्मजात कवचकुंडल इन्द्र द्वारा मांग कर ले जाना है।

द्वादशे समतिक्रान्ते वर्षे प्राप्ते त्रयोदशे
पाण्डूनाम् हितकृच्छक्रः कर्णं भिक्षितुमुद्यतः ॥ वनपर्व, ३००—५

"(वनवास का) बारहवाँ वर्ष समाप्त होने मे तथा तेरहवां प्राप्त होने में था तब पांडवों के हितकर्ता इन्द्र ने कर्ण के पास जा कर भिक्षा (के रूप मे उसके जन्मजात कवच कुंडल) मांगने का सोचा"। दातृत्व के अपने नियम का पालन कर कर्ण ने कवच कुंडल अपने शरीर से खींचकर इन्द्र को दे दिये। बदले में उसने इन्द्र से एक अमोध 'शक्ति' (आयुधविशेष) प्राप्त कर ली; किन्तु उसका उपयोग वह मात्र एक बार ही कर सकता था।

इस समय की अंतिम प्रमुख घटना यक्ष रूपी साक्षात धर्मदेव ने युधिष्ठिर से किये गहन तात्त्विक प्रश्नों की है। उसे अपने मार्मिक उत्तरों से संतुष्ट करने बाद युधिष्ठिर ने यक्ष से कहा—

वर्षाणि द्वादशारण्ये त्रयोदशमुपस्थिम्
तत्र नो नाभिजानीयुर्वसतो मनुजोः क्वचित् ॥ वनपर्व, ३१४-१५

"वनवास मे (हमारे) बारह वर्ष पूर्ण होकर तेरहवा प्राप्त हुवा है।(कृपया ऐसा वर दीजिए कि) उसमें (हम अज्ञातवासी होने वाले होने से) हमें कोई भी मानव पहचान न सके"। धर्म देव ने प्रसन्न होकर कहा, मेरी कृपा से यह तेरहवा वर्ष तुम विराट नगर में गुप्त रहकर बिताओगे (३१४-१८)।

महाभारत कथा की छोटी छोटी बातों में भी सुसंगति ध्यान देने लायक है। पांडव तीसरी बार फिर द्वैतवन आये, तब उन्होंने वहां केवल फलाहार आंरभ किया (३११-४)। उसका कारण? इसके पूर्व द्वैतवन का द्वितीय निवास समाप्त करते हुए युधिष्ठिर ने वहां के पशुओं को और अधिक शिकार न करने का आश्वासन दिया था!

पांडव हिमालय से नीचे उतरने बाद जो विविध घटनाएँ हुई, उनके वर्णन महाकवि ने कुशलता से आगे पीछे करने से एवं आपस में मिला देने से, उन मे से कोई घटना काम्यक वन की है या द्वैतवन की, और वहां भी द्वितीय या तृतीय निवास की, इस बारे में

कहीं कहीं भ्रम हो जाता है। उदाहरणार्थ, तृतीय काम्यक निवास का वर्णन शुरू करने बाद, बीच में ही जनमेजय के प्रश्न का निमित्त कर वैशंपायन का कथा प्रवाह फिर पीछे द्वैतवन निवास की किसी घटना की ओर मुडता है। इसी प्रकार तृतीय द्वैतवन निवास का कथन आरंभ करने बाद, बीच में ही काम्यक से संबद्ध कुछ प्रसंगों का उल्लेख आता है। किन्तु इसी के साथ समय एवं स्थल के सूचक संकेत भी रखे होकर, उनके आधार पर उन घटनाओं का एक सुसंगत क्रम मैनें यहां संक्षेप में दिया है।

अज्ञातवास वर्ष

प्रकट वनवास के बाद अज्ञातवास आंरभ हुआ। यहां महाभारत का वनपर्व समाप्त होकर विराट पर्व शुरू होता है। इस कालावधि की प्रथम विशेष घटना उसके चतुर्थ मास का ब्रह्मोत्सव है। इसकी चर्चा पूर्व में की है।

दूसरी विशेष घटना भीम द्वारा कीचक वध की। उस प्रसंगकी शुरुआत इस प्रकार होती है —

वसमाने षु पार्थेषु मत्स्यस्य नगरे तदा
महारथेषु छन्नेषु मासा दस समाययुः ॥ विराट पर्व १४-१

"(इस प्रकार) महारथी पांडव मत्स्यराज (विराट) के नगर में गुप्त रूप से रहते हुए दस मास बीत गये।" और तदनंतर—

तस्मिन् वर्षे गतप्राये कीचकस्तु महाबल :
सेनापतिर्विराटस्य ददर्श द्रुपदात्मजाम् ॥ १४-४

"जब वह वर्ष करीबकरीब समाप्त हो रहा था, विराट के सेनापति महाशक्तिशाली कीचक की (पाप) दृष्टि (सैरन्ध्री रूप) द्रौपदी पर गई"।

भीम व द्रौपदी ने पूरी सूक्ष्मता से गिने दिन

इस परिस्थिति में एक दिन उन्मत्त कीचक ने द्रौपदी का घोर अपमान किया। द्रौपदी रोती हुई भीम के पास पहुँची। भीम ने उसे कीचक वध का आश्वासन देते हुए कहा—

मा दीर्घ क्षम कालं त्वं मासमर्धं च सम्मितम्
पूर्णे त्रयोदशे वर्षे राज्ञां राज्ञी भविष्यसि ॥ विराट पर्व २१-१७

"और कुछ थोडे ही दिन, गिनती से केवल आधा मास, सहन कर। तेरहवाँ वर्ष पूर्ण होते ही तू (फिर) राजाओं की (पांडवों की) रानी बनेगी"। पांडवों की गणनानुसार तेरहवा वर्ष ज्येष्ठपूर्व द्वितीय अधिक मास वद्य सप्तमी को पूर्ण होकर, वद्य अष्टमी को मुक्ति दिवस था।

उसके अर्धमास पूर्व यह द्रौपदी - भीम संवाद हुआ था। अर्थात इस दिन उस अधिक मास की शुक्ल अष्टमी थी। इस संवाद के दूसरे रोज रात में भीम ने कीचक वध किया, और उसके बाद सुबह विराट के रानी ने, द्रौपदी का कीचक वध से कुछ संबंध हो इस आशंका से, उसे चली जाने को कहा; तब द्रौपदी ने रानी को यह अनुरोध किया —

त्रयोदशाह मात्रं मे राजा क्षाम्यतु भामिनि
कृतकृत्या भविष्यन्ति गन्धर्वास्ते न संशयः ॥ २४-२९

"रानी जी, मुझे केवल तेरह और दिन राजा कृपया माफ करे (यहां ठहरने दे); तब (मेरे पति गंधर्व निःसन्देह अपना उद्दिष्ट पूर्ण कर लेंगे (और मुझे यहां से ले जायेंगे)"। यह दर्शाता है कि, और तेरह दिन बाद पांडव अज्ञातवास से मुक्त होनेवाले थे। इसी के दो दिन पूर्व भीम ने द्रौपदी को उपरोक्त आश्वासन दिया था। स्पष्ट ही उस समय अज्ञातवास समाप्ति को (१३+२) पन्द्रह दिन शेष थे; और इसी लिये भीम ने "मासम् अर्धम्" ऐसा ठीक ठीक कहा। भीम ने द्रौपदी से कहा कि, अगले ही रोज की रात्रि में कीचक से एकान्त मीलन करने का समय निश्चित कर ले। उस समय स्वयं भीम वहां जाकर कीचक का वध करने की योजना थी। तदनुसार द्रौपदी ने दूसरे रोज कीचक से कहा —

यदेतन्नर्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम्
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम् ॥ २२-१६
तमिस्त्रे तत्र गच्छेथा गन्धर्वास्तन्न जानते। १७

"यह जो मत्स्यराज (राजा विराट) ने नृत्यगृह बनाया है; वहां दिन के समय कन्याएँ नृत्य का अभ्यास कर रात में अपने घर चली जाती हैं — १६; वहाँ (आज रात्रि के) अंधेरे प्रहार में (आ) जाना, ताकि गंधर्वों को (जो मेरे पति हैं) इस बात का पता नहीं चलेगा।"

यह तिथि वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास की शुक्ल नवमी थी। यहाँ 'तमिस्त्रे' का आशय 'रात्रि के अंधेरे प्रहर में' यानी चन्द्रास्त के बाद ऐसा है; न कि 'वह रात्रि अंधेरे पक्ष की यानी कृष्ण पक्ष की थी' ऐसा। यह शुक्ल पक्ष की नवमी होने से करीब अर्धरात्रि में चन्द्रास्त होने वाला था। द्रौपदी ने कीचक से वह समय बताकर भीम को भी उसकी खबर दी; तब भीम ने फिर कहा—

अदृश्यमानस्तस्याथ तमस्विन्यामनिन्दिते
नागो बिल्वमिवाक्रम्य पोथयिष्याम्यहं शिरः
अलभ्यामिच्छतस्तस्य कीचकस्य दुरात्मनः ॥ २२ -३७

''निर्दोष द्रौपदी , मैं स्वयं (उसको) अदृश्य रहूंगा ; और (तुझ समान) अलभ्य स्त्री की इच्छा करने वाले उस दुरात्मा कीचक पर हमला कर उसका मस्तक रात्रि की अंधेरी बेला में (चन्द्रास्त के बाद रात्रि के प्रहर में) उस प्रकार कुचल डालूँगा, जैसे हाथी बेल का फल (कुचल डालता है) ।''

इस योजनानुसार कीचक नर्तनागार में गया तब चन्द्रास्त होकर अंधकार व्याप्त हो गया था (२२-४०) । उस समय भीम ने उसका वध किया ।

अज्ञातवास समाप्ति एवं अभिमन्यु विवाह

इसके बाद आने वाली कृष्ण अष्टमी को सूर्योदय पर अर्जुन अज्ञातवास समाप्त कर कौरवों के सामने प्रकट हुवा ; तथा उन्हें पराजित कर उसने विराट राज्य की गायें छुडालाई ।

तदनंतर तीसरे दिन सभी पाण्डव द्रौपदी सहित राजा विराट के दरबार में प्रकट रूप से उपस्थित हुए। उनकी पहचान होने पर राजा विराट ने उनका पूर्ण सम्मान कर, अपनी कन्या उत्तरा का अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से विवाह निश्चित किया। पांडवों ने विराट राज्य में उपप्लव्य नगर मे अपना अस्थायी निवास स्थापन किया । शीघ्र ही द्वारका से अभिमन्यु , सुभद्रा, श्रीकृष्ण आदि वहां आकर , बडे हर्षोल्लास से समारोह पूर्वक उत्तरा -अभिमन्यु विवाह संपन्न हुवा। उसके समय का कालगणनात्मक महत्त्व ऊपर प्रकरण २ में बताया है ।

वर्ष तालिका

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी	:-	पांडवों का द्यूत हेतु इन्द्रप्रस्थ से हस्तिनापुर आगमन।
ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी	:-	द्यूत ; अनुद्यूतः वनवास प्रारंभ।
ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी मध्यरात्रि	:-	काम्यक वन में प्रवेश ; किर्मीर वध ; (प्रथम काम्यक निवास आरंभ)।
ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष	:-	श्री कृष्ण का काम्यक वन आकर पांडवों से मिलना।
आषाढ	:-	पाण्डवों का काम्यक से द्वैतवन जाना (प्रथम द्वैतवन निवास आरंभ)।
मार्गशीर्ष	:-	पाण्डवों का द्वैतवन से काम्यक लौटना (द्वितीय काम्यक निवास आरंभ)।

पौष से ज्येष्ठ	:-	अर्जुन का अस्त्रविद्या प्राप्ति हेतु इन्द्रलोक जाने काम्यक से प्रस्थान ; हिमालय पहुचना तथा वहां चार मास तप के बाद शिवदर्शन ; फिर इन्द्रलोक गमन।
वनवास का एक वर्ष पूर्ण		
चार और वर्ष	:-	अर्जुन का इन्द्रलोक में, तथा शेष पांडवों का काम्यक वन में, निवास चालू।
वनवास के पाच वर्ष पूर्ण		
ज्येष्ठ से मार्गशीर्ष शुक्ल	:-	उपरोक्त निवास चालू।
मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया	:-	युधिष्ठिरादि चार पांडवों का तीर्थ यात्रा पर काम्यकसे प्रस्थान।
पौष समाप्ति	:-	युधिष्ठिरादि की हिमालय यात्रा तथा गंधमादन पर कुबेरदर्शन ; अर्जुन का इन्द्रलोक में पाच वर्ष पूर्ण कर वहां से लौटकर गंधमादन पर शेष पांडवों से पुनर्मीलन।
वनवास के छः वर्ष पूर्ण		
चार और वर्ष	:-	पांडवों का गंधमादन पर्वत पर ही निवास।
वनवास के दस वर्ष पूर्ण		
ज्येष्ठ मध्य	:-	पांडवों का हिमालय से वापिस उतरना आरंभ।
श्रावण मध्य	:-	द्वैतवन के विशाखयूप वन में पहुचना (द्वितीय द्वैतवन निवास आरंभ)।
श्रावण जे ज्येष्ठ	:-	विशाखयूप वन में निवास
वनवास का ग्यारहवा वर्ष पूर्ण		
ज्येष्ठ से भाद्रपद	:-	विशाखयूप वन में निवास चालू।
भाद्रपद मध्य से कार्तिक मध्य	:-	द्वैतवन में ही द्वैतवन सरोवर पर निवास । इस बीच दुर्योधन की घोषयात्रा।
कार्तिक कृष्ण पक्ष से माघ	:-	द्वैतवन से काम्यक वन में तृणबिंदु सरोवर पर निवास (तृतीय काम्यक निवास)। इस दरम्यान सत्यभामा

सहित श्रीकृष्ण की पांडवों से भेट ; दुर्योधन के वैष्णव यज्ञार्थ कर्ण का दिग्विजय। जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का अपहरण।

फाल्गुन से आषाढ शुक्ल पक्ष :- काम्यक से फिर द्वैतवन में वापस (तृतीय द्वैतवन निवास)। इस दरम्यान दुर्योधन का वैष्णव यज्ञ ; दुर्वास द्वारा पांडवों की सत्त्वपरीक्षा।

वनवास का बारहवा वर्ष पूर्ण (स्थूल मानसे)

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी से आषाढ शुक्ल दशमी :- पांडवों का द्वैतवन निवास चालू , इन्द्र द्वारा कर्ण के कवच कुंडलों का हरण ; यक्ष प्रश्न।

सूक्ष्म दिनगणना से वनवास का बारहवा सौर वर्ष पूर्ण

आषाढ शुक्ल एकादशी :- अज्ञातवास आरंभ।

आषाढ मध्य : पाण्डव विराटनगर पहुचकर उनका राजा विराट की सेवा में गुप्त रूप से प्रवेश।

आश्विन मध्य :- ब्रह्मोत्सव ; उसमें भीम - जीमूत मल्लयुद्ध।

वैशाख मध्य :- अज्ञातवास के दस मास पूर्ण।

वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास
शुक्ल अष्टमी :- कीचक द्वारा द्रौपदी का घोर अपमान।

वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास
शुक्ल नवमी :- कीचक वध

वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास
शुक्ल पक्ष समाप्ती :- पांडवों का पता न चलने से कौरवों को चिंता ; सुशर्मा के सुझाव पर विराट राज्य पर दोहरे हमले की योजना।

वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास
कृष्ण सप्तमी :- सुशर्मा का विराट पर आग्नेय दिशा से हमला ; उसका पराजय। अज्ञातवास की अंतिम रात्रि।

प्रतिज्ञानुसार (अधिक मास सहित) तेरह सौर वर्ष पूर्ण

वैशाखोत्तर द्वितीय अधिक मास,
कृष्ण अष्टमी :- कौरवों का विराट राज्य पर हमला ; अर्जुन का सूर्योदय समय कौरवों के समक्ष प्रकट होना , उसके द्वारा कौरवों का पराजय।

कृष्ण दशमी :- विराट राजा के दरबार में पांडवों का द्रौपदी सहित प्रकट होना।

कृष्ण पक्ष उत्तरार्ध :- पांडवों का विराटनगर से उपप्लव्य जाना।

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी :- दुर्योधन की गणनानुसार तेरहवे वर्ष का (अज्ञातवास का) अंतिम दिवस।

ज्येष्ठ मध्य :- द्वारका से सुभद्रा, अभिमन्यु, श्रीकृष्ण आदि का उपप्लव्य पहुचकर उत्तरा -अभिमन्यु विवाह। ❑

भाग दो

कुरुक्षेत्र युद्ध के कालगणनात्मक कूट

प्रकरण ५

श्रीकृष्ण की शांति वार्ता

श्रीकृष्ण की प्रवास के लिये संमति

महाभारत में विराट पर्व के बाद उद्योगपर्व आता है। उसमें पांडवों के अनुरोध पर कौरवों से अंतिम शांतिवार्ता हेतु श्रीकृष्ण ने उपप्लव्य से किये हस्तिनापुर प्रवास का वर्णन है। उसमें भी महाकवि ने कूट रखा है। वह प्रवास कितने दिन चला ? श्रीकृष्ण हस्तिनापुर कौन से दिन पहुचे ? शान्तिवार्ता किस दिन हुई ? श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से कौन सी तिथि पर वापिस लौटे ? और उपप्लव्य में पांडवों के पास कब पहुचे ?

अज्ञातवास समाप्ति बाद पांडव विराट राज्य के उपप्लव्य नगर चले गये। दुर्योधन ने उनका राज्य लौटाने इन्कार करने से दोनो पक्षों की और से युद्ध की तयारी होने लगी। संपूर्ण वर्षा ऋतु एवं शरद का भी भाग बीत गया। इस दरम्यान ये घटनाएँ हुई। राजा द्रुपद का पुरोहित पांडवों का संदेश लेकर हस्तिनापुर कौरवों के पास गया,* किन्तु वहां से खाली हाथ वापिस आया। दोनो पक्षों ने सैनिक सहायता जुटाना चालू रखा। अर्जुन आगामी युद्ध में श्रीकृष्ण की सहायता प्राप्त करने द्वारका पहुचा; और उसी समय दुर्योधन भी उसी उद्देश्य से द्वारका गया। वहां से दुर्योधन हस्तिनापुर को, तथा श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन उपप्लव्य को, वापिस आया। इसके बाद धृतराष्ट्र ने स्वकुल युद्ध टालने की सूचना करने संजय को पांडवों के पास भेजा ; किन्तु उसके साथ न्यायोचित संधिस्वरूप कुछ भी प्रस्ताव न होने से, उसे वैसे ही वापिस लौटना पडा। इसके बाद पांडवों ने मात्र पाच गांव प्राप्त होने पर संतुष्ट होने की तयारी दर्शाकर, अपनी और से शांतिवार्ता करने हेतु श्रीकृष्ण को कौरवों के पास जाने का अनुरोध किया। वह मान्य करते हुए श्रीकृष्ण बोले -

श्वोभूते धृतराष्ट्रस्य समीपं प्राप्य पाण्डव
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं युष्मदर्थमहापयन् ॥ उद्योग पर्व ७७-१५

''पांडुनंदन (युधिष्ठिर) , कल उदित होते ही मैं धृतराष्ट्र के पास जाकर तुम्हारे हित को बाधा न पहुंचाते शांतिपूर्ण सुलह करने का प्रयास करूंगा।'' यहां प्रथमदर्शन में भ्रम होता

* पुरोहित ने पुष्य नक्षत्र पर प्रयाण किया था (उद्योगपर्व ६-१७। मेरी कुल गणना के अनुसार यह (अमावास्यान्त) श्रावण के वद्य पक्ष का उत्तरार्ध होगा। पुरोहित हस्तिनापुर गया तब अवश्य ही दुर्योधन वहां उपस्थित था (उद्योगपर्व २१ - ८)। उसके बाद दुर्योधन श्रीकृष्ण से मिलने द्वारका गया।

है कि , इस आश्वासन के दूसरे ही रोज श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुचकर शांतिवार्ता करने वाले थे। यह सत्य है कि, दूसरे दिन प्रात:काल श्रीकृष्ण ने उपप्लव्य से प्रस्थान किया (श्लोक ८३-६ नीचे उद्धृत)। किन्तु महाभारत में यह भी कहा है कि, उन्होंने हस्तिनापुर के निकट वृकस्थल ग्राम पहुंचकर वहां एक रात मुक्काम किया, और उसके अगले रोज सुबह हस्तिनापुर मे प्रवेश किया। वहां पहुचने बाद उन्होंने प्रथम धृतराष्ट्र आदि से शिष्टाचार भेट की, और रात्रि सहित वह शेष पूरा दिन विदुर के घर बिताया। उसके बाद आनेवाले दिन विधिवत शांति वार्ता हुई , जो एक बैठक में ही भंग हो गई।

इससे यह स्पष्ट है कि , श्रीकृष्ण को उपप्लव्य से हस्तिनापुर पहुचने कितना भी समय लगा हो (जिसकी चर्चा आगे की है), उन्होने पांडवों का अनुरोध स्वीकार करने बाद शब्दश: दूसरे ही दिन ('श्वोभूते ') शांति वार्ता नही की। श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर पहुचने पर धृतराष्ट्र से जो औपचारिक भेट की उसमे शांति वार्ता का सूतोवाच माना, तो भी वृकस्थल में बिताई रात्रि तो बचेगी ही।

अत: श्रीकृष्ण के उक्त 'श्वोभूते' शब्द का आशय इतनाहि है कि, अगला दिवस प्रारंभ होते ही वे उपप्लव्य से प्रवास आरंभ करने वाले थे, और यथाकाल हस्तिनापुर पहुचकर धृतराष्ट्र की उपस्थिति मे शातिवार्ता करने वाले थे।

उपप्लव्य से प्रस्थान की तिथि

इस प्रकार दूसरे रोज सूर्योदय पर श्रीकृष्ण उपप्लव्य से निकले। वह समय महाकवि इस प्रकार दर्शाते हैं-

ततो व्यपेततमसि सूर्ये विमलवद्गते
मैत्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे ॥ ८३ - ६
कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे ॥ ७

''तदनन्तर (रात्रि का) अंधकार नष्ट होकर स्वच्छ आकाश में सूर्य का उदय होने पर उसकी सौम्य किरणें सर्वत्र फैल गई ; उस समय मैत्र मुहूर्त पर, जब कार्तिक मास में चन्द्र रेवती नक्षत्र में था, तथा शरद ऋतु समाप्तप्राय होकर हेमंत आरंभ होने मे था ,'' (तब श्रीकृष्ण ने अपना प्रवास आरंभ किया)। यहां 'कुमुद' का अर्थ सभी ने कार्तिक मास लिया है।

इस दिन चन्द्र रेवती नक्षत्र में था। किसी भी मास की पूर्णिमा पर चन्द्र उस मास के नाम से संबद्ध नक्षत्र में, या उसके समीप, होता है। अत: कार्तिक मास की पूर्णिमा को

चन्द्र कृत्तिका में , या कुछ पीछे (भरणी या अश्विनी में), अथवा आगे (रोहिणी या मृग में) होगा। किन्तु इन दिनों की कुल ग्रहस्थिति का विचार करते (आगे प्रकरण १५ में बनाये अनुसार) इस कार्तिक पूर्णिमा को चन्द्र अश्विनी मे मानना सुसंगत होगा। और उस आधार पर एक दिन पूर्व शुक्ल चतुर्दशी को रेवती में हो सकता था। उस तिथि को श्रीकृष्ण ने उपप्लव्य से प्रयाण किया। इसमें एकाध दिन का फरक सुझाना संभव है।

महाभारतकार ने यह समय शरद ऋतु की समाप्ति का बताया है। इन दिनों (अमावास्यान्त) कार्तिक का शुक्ल पक्ष चल रहा होकर उस का वद्य पक्ष अभी शेष था। किन्तु प्रकरण २ में बताये अनुसार यह मास अमावास्यान्त मानते हुए भी कार्तिक शुक्ल पक्ष की समाप्ति पर शरद ऋतु का अन्त एवं हेमन्त का आगमन कहा जा सकता हैं।

वृकस्थल तक का प्रवास

श्रीकृष्ण वृकस्थल कब पहुँचे ? महाभारत के अभ्यासकों में आम धारणा यह है कि, वे उपप्लव्य से निकले थे उसी दिन शाम वृकस्थल पहुँचे। किन्तु यहां महाकवि ने खूबी से श्रीकृष्ण वृकस्थल पहुंचने का उल्लेख इस प्रकार किया है -

वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा
प्रकीर्णरश्मावादित्ये व्योम्नि वै लोहितायति ॥ उद्योग पर्व ८४-२०
अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि
रथमोचनमादिश्य संध्यामुपविवेश ह ॥ २१

" सूर्यकिरण अस्तव्यस्त हो रहे थे, तथा (पश्चिम) क्षितिज लालिमामय हो रहा था, उस समय वृकस्थल पहुँचकर -२० , परमवीर श्रीकृष्ण शीघ्र रथ से उतरे, (सेवकों को) उसे खोलने का आदेश दिया , और स्नानादि कर्म कर संध्योपासना में बैठ गये।" किन्तु इसमें इतनाहि कहा है कि श्रीकृष्ण वृकस्थल पहुचे तब शाम हो रही थी ; यह नही कहा है कि वह शाम उसी दिन की थी जिस दिन श्रीकृष्ण ने उपप्लव्य से प्रस्थान किया था ! वस्तुतः वह प्रवास कुछ दिन चला था , जिसके निम्न संकेत महाभारतकार ने दिये हैं।

इस प्रवास में श्रीकृष्ण अनेक नगरों एवं राज्यों मे से गये ; और मार्ग में सैकडों लोगों ने उनकी भक्तिपूर्वक पूजा-अर्चा की (८४-१३,१४).

पश्यन् बहुपशून् ग्रामान् रम्यान् हृदयतोषणान्
पुराणि च व्यतिक्रामन् राष्ट्राणि विविधानि च ॥ ८४ - १६

उपप्लव्यादथायान्तं जनाः पुरनिवासिन :
पथ्यतिष्ठन्त सहिता विश्वक्सेनदिदृक्षया ॥ १८
ते तु सर्वेसमायान्तमग्निमिद्धमिव प्रभुम्
अर्चयामासुरर्चार्हं देशातिथिमुपस्थितम् ॥ १९

" (श्रीकृष्ण ने) कई रमणीय , आनन्ददायक, विपुल गोधन सम्पन्न ग्राम देखे, तथा विविध नगर एवं राज्यों में से होते हुए वे गये। -१६ नगरों के निवासी जन उपप्लव्य से आने वाले श्रीकृष्ण के दर्शन की इच्छा से रास्ते के किनारे समूहों में खड़े थे - १८। अपने देश में अतिथि रूप में आने वाले , ज्वलंत अग्निसमान तेजस्वी, पूजनीय भगवान श्रीकृष्ण समीप आने पर उन सभी ने उनकी सादर पूजा की - १९" ।

इस प्रवास की योजना होने पर दूसरी ही दिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण उपप्लव्य से निकले थे ; फिर रास्ते के अनेक स्थानों की जनता को उनके इस अनायास शुभागमन की वार्ता प्राप्त होकर, लोक सत्कार सामग्री के साथ विशाल समुदाय मे कैसे उमड सके ? यदि वृकस्थल तक का सारा प्रवास एक ही दिन में होता, तो मार्ग में यह कैसा संभव था ? किन्तु , वह प्रवास एक से अधिक दिन चला, और उस कारण श्रीकृष्ण के उस रास्ते से प्रवास की पूर्वसूचना सबदूर फैल सकी।

इसका एक और संकेत देखिये। धृतराष्ट्र के आदेश से दुर्योधन ने रास्ते में श्रीकृष्ण के स्वागतार्थ भारी व्यवस्था कर दी (यद्यपि श्रीकृष्ण ने उसका लाभ नही लिया)।

तेषामनुमतं ज्ञात्वा राजा दुर्योधनस्तदा
सभावास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे ॥ उद्योग पर्व ,८५-१२
ततो देशेषु देशेषु रमणीयेषु भागशः
सर्वरत्नसमाकीर्णाः सभाश्चक्रुरनेकशः ॥ १३
गुणवन्त्यन्नपानानि भोज्यानि विविधानि च
माल्यानि च सुगन्धीनी तानि राजा ददौ ततः ॥ १५
विशेषतश्च वासार्थं सभां ग्रामे वृकस्थले
विदधे कौरवो राजा बहुरत्नां मनोरमाम् ॥ १६

"इस समय उनकी (भीष्म आदि की) (धृतराष्ट्र से) सहमति देख दुर्योधन ने रमणीय विश्राम गृहों के निर्माण के लिये आदेश दिये -१२; तदनुसार रमणीय स्थान -स्थान पर सब प्रकार के रत्नों से सुशोभित अनेक भिन्न-भिन्न सभागृह बनाये गये -१३। राजा दुर्योधन ने उनमें श्रेष्ठ खाद्य पेय , भाँति-भाँति के भोजन, सुवासिक पुष्पमाला आदि की व्यवस्था कर

दी - १५ ; उसमें भी विशेष रूप से वृकस्थल ग्राम में कौरव राजा ने एक बहुरत्नमय मनोरम निवासीय सभागृह खड़ा किया - १६'' ।

प्रवास को अनुमति देने बाद प्रात:काल ही श्रीकृष्ण ने प्रवास आरंभ किया था। यदि वृकस्थल तक का प्रवास एक ही दिन का होता , तो रास्ते में विभिन्न स्थानों पर यह सारी व्यवस्था करने समय कैसे मिलता ? श्रीकृष्ण के इस प्रवास की अग्रिम सूचना शीघ्रगामी दूतों द्वारा पांडवों ने तत्काल हस्तिनापुर भेजी होगी, तथा सम्राट दुर्योधन ने अपने असंख्य सेवकों द्वारा स्वागत की वह व्यवस्था तुरन्त करवाई होगी ; किन्तु फिरभी यह सब मात्र कुछ ही घंटो मे होना संभव नही था।

यहां एक संभाव्य शंका का उत्तर देता हूँ। दुर्योधन द्वारा की गई इस स्वागत व्यवस्था के वर्णन में वृकस्थल में ही विशेष रूप से 'वासार्थं' (निवास हेतु) सभागृह खडा करने का उल्लेख होकर, अन्य मुक्कामों पर वैसी व्यवस्था नही की गई। तो क्या इस प्रवास में श्रीकृष्ण का केवल वृकस्थल में ही रात्रि मुक्काम होकर, वहां तक का सारा प्रवास उन्होने एक ही दिन में पूर्ण किया था ? किन्तु यहां ध्यान में लेना है कि, दुर्योधन वह व्यवस्था केवल अपने राज्य में ही करने वाला था। उपप्लव्य से निकलने बाद श्रीकृष्ण अन्य भी कुछ 'राष्ट्रों' में से गये थे (८४-१६)। वहां वैसी व्यवस्था करने से दुर्योधन का क्या संबंध ? अत: इस प्रवास के अंतिम दिन श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर साम्राज्य की सीमा में प्रवेश किया, वहां से दुर्योधन ने स्वागत की व्यवस्था की। और तब तक वह हो सकी, क्यों कि श्रीकृष्ण वहां पहुचने पूर्व प्रवास में कुछ दिन बिताने वाले थे। दुर्योधन के राज्य में श्रीकृष्ण का रात्रि मुक्काम एक ही था - वृकस्थल में ; अत: उसकी शेष स्वागत व्यवस्था श्रीकृष्ण के तात्कालिक विश्राम हेतु थी।

इस सारे संदर्भ में महाकवि संदिग्ध शब्दों द्वारा कहते हैं कि, श्रीकृष्ण वृकस्थल पहुचे तब सायंकाल समय था ; किन्तु वह सायंकाल प्रवासारंभ के दिन का ही था ऐसा वे नही कहते है !

श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर में कार्यक्रम

वृकस्थल पहुचने बाद का श्रीकृष्ण का कार्यक्रम महाभारत में ब्यौरेवार दिया है। वहां श्रीकृष्ण एक रात ही ठहरे , यह धृतराष्ट्र के इस वचन से स्पष्ट है-

उपप्लव्यादिह क्षत्तरूपायातो जनार्दन:
वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहैष्यति ॥ उद्योग पर्व ८६-१

''विदुर , उपप्लव्य से निकले श्रीकृष्ण अब करीब आ पहुँचे है ; (इस समय , वे वृकस्थल में ठहरे हैं, (कल) प्रात:काल यहाँ आ जायेंगे। '' इसी प्रकार वैशम्पायन भी जनमेजय से कहते हैं-

प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान् सर्वमान्हिकम्
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञात: प्रययौ नगरं प्रति ॥ ८९-१

''प्रात:काल उठकर श्रीकृष्ण ने सर्व आन्हिक कर्म किये; और ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त कर (हस्तिनापुर) शहर को गये। ''

हस्तिनापुर पहुँचने पर श्रीकृष्ण की धृतराष्ट्र आदि से औपचारिक प्राथमिक कुशलवार्ता हुई। फिर श्रीकृष्ण ने विदुर के यहाँ (दोपहर का) भोजन किया (८९-२३) , और अपराण्ह में कुन्ती से मिलने गये (९०-१)। वहाँ से वे दुर्योधन के महल पर गये। वहाँ रात्रि भोजन का आमंत्रण अस्वीकार कर (९१-१२) श्रीकृष्ण वापिस विदुर के घर आये (९१-३४)। वहाँ उन्होंने भोजन कर रात में दोनो में दीर्घकाल वार्तालाप हुआ (९४-१)। दूसरे दिन सुबह शांतिवार्ता आरंभ हुई -

कृतोदकानुजप्य: स हुताग्नि: समलंकृत:
ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधव: ॥ उद्योग पर्व ९४ - ६
अथ दुर्योधन: कृष्णं शकुनिश्चापि सौबल:
सन्ध्यां तिष्न्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ॥ ७
आचक्षेतां तु कृष्णस्य धृतराष्ट्रं सभागतम्
कुरूंश्च भीष्मप्रमुखान् राज्ञ: सर्वांश्च पार्थिवान् ॥ ८

'' संध्यातर्पण, जप तथा अग्निहोत्र कर उन्होंने अलंकृत होकर उदयोन्मुख सूर्य की उपासना प्रारंभ की। इसी समय संध्या में मग्न अपराजेय (दाशार्ह) श्रीकृष्ण के पास दुर्योधन व शकुनी आये, और उन्होंने निवेदन किया कि, धृतराष्ट्र तथा भीष्मादि कुरुकुल के पुरुष एवं अन्य भी सब राजे सभा गृह में पधार गये हैं। '' (और आपकी उपस्थिति की प्रार्थना है - ९)।

शांतिवार्ता की तिथि एवं असफलता

दुर्योधन के दुराग्रह से शांतिवार्ता एक बैठक में ही भंग हो गई। महाभारत में दिये उसके समग्र वर्णन में बैठक दूसरे दिन पर चलने का संकेत नहीं है। दुर्योधन की तो श्रीकृष्ण को बंदी बनाने की भी योजना थी। किंतु अपना योगसामर्थ्य प्रदर्शित कर श्रीकृष्ण सभा से बाहर चले आये ; तथा कुन्ती से मिलकर सीधे हस्तिनापुर से वापिस लौटे

(१३७ - ३०)। शहर की सीमा तक आते आते उन्होंने अकेले कर्ण से वार्ता की, और वह वस्तुत: कुंती का (विवाहपूर्व) पुत्र होने से उसे पांडव पक्ष को मिलने का आवाहन किया। किन्तु कर्ण ने दुर्योधन का पक्ष त्यागना अमान्य किया। इस पर श्रीकृष्ण ने वहीं पर कर्ण को घोषित कर दिया कि, " सप्तमात् दिवसात् " (सातवे दिन बाद) अमावास्या आ रही होकर उस तिथि पर युद्ध आरंभ किया जावे (१४२ - १८, अगले प्रकरण में उद्धृत) ।

श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कर्ण को युद्धारंभ तिथि घोषित की (तथा उसके कुछ ही पूर्व शांतिवार्ता हुई थी) उस दिन तिथि कौनसी थी ? ' सप्तमात् दिवसात् ' में पंचमी विभक्ति होने से वह आगामी अमावास्या सातवे रोज नहीं, अपितु ' सातवे रोज के बाद' यानी आठवे रोज थी। (इसके विपरीत, प्रकरण २ में बताये अनुसार ' पंचमे पंचमे वर्षे ' में सप्तमी विभक्ति होने से वहां 'पाचवे वर्ष में ' ऐसा आशय है) । फिर, यह कृष्ण पक्ष (विशेष अपवाद स्वरूप) तेरह दिन का होने से (भीष्मपर्व २- ३२ आगे उद्धृत) उसमें दो तिथिलोप थे। वे दोनो लोप पासपास होना असंभव होने से, एक लोप पक्ष के पूर्वार्ध में तथा दूसरा लोप उत्तरार्ध मे मानना उचित होगा। वह दूसरा लोप अमावास्या का नही था; चूंकि अमावास्या का स्पष्ट उल्लेख उपरोक्त श्लोक उद्योगपर्व १४२-१८ में, तथा आगे भीष्म पर्व ३-३२ में भी आया है। न हि वह लोप चतुर्दशी का था, जिसका उल्लेख भीष्म पर्व ३-३३ (प्रकरण १३ में उद्धृत) में आया है। इस प्रकार शांतिवार्ता के उस दिन की तिथि वद्य पक्ष की सप्तमी आती है। वहां से गिनती कर, अष्टमी को दूसरा दिन होकर, बीच में एक तिथिलोप रखकर , चतुर्दशी को सातवा एवं अमावास्या को क्रमश: आठवा दिन आता है।

शांतिवार्ता के इस दिन चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में था, यह इस दिन की विविध महत्त्वपूर्ण घटनाओं के संबध में महाभारतकार ने कई स्थलो पर बताया है (उद्योगपर्व १५०-३; शल्यपर्व ३४-६; ३५-१०; ३५-१५, ३५-१६) । ये उल्लेख मैने आगे संबंधित स्थानों पर उद्धृत किये हैं।

यदि अनेक लेखक समझते हैं तदनुसार श्रीकृष्ण प्रवास के पहिले ही रोज वृकस्थल (और दूसरे ही रोज हस्तिनापुर) पहुचे ऐसा माना, तो बीच में उपरोक्त वद्य सप्तमी तक के शेष चारपाच रोज का हिसाब कैसा लगाना ? इस पर कुछ लेखक तर्क देते हैं कि, श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुचने पर चार पाच दिन बाद शांतिवार्ता हुई , या फिर शांति वार्ता कुछ रोज चली, या शांतिवार्ता भंग होने बाद भी श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में कुछ दिन रुके रहे। के. श्रीनिवास राधवन का मत है कि श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँचने बाद पांच - छ: दिन शांतिवार्ता

चली, और वह भंग होने बाद भी श्रीकृष्ण तीन और दिन हस्तिनापुर में ही रुके रहे (पूर्वउल्लेखित, p.15) । देवकीनंदन खेडवाल लिखते हैं, " श्रीकृष्णजी कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को कौरवों की सभा में आये और उन्होंने सात दिन उन लोगे से वार्तालाप किया था " (' भारतीय काल गणना' पृ. १२८) । चिं. वि. वैद्य भी लिखते हैं कि श्रीकृष्ण उपप्लव्य से हस्तिनापुर दो दिन में पहुचे और वहां चार पाच दिन रहे (पूर्व उल्लेखित ,मराठी ,पृ.११३)। किन्तु इन कल्पनाओं को महाभारत में कोई आधार नही।

वापिस उपप्लव्य पहुँचना

श्रीकृष्ण वापिस उपप्लव्य कब पहुचे ? हस्तिनापुर जाते समय उनका प्रवास आराम से कुछ दिन चला। किन्तु वापसी का प्रवास एक दिन में ही हुवा। यह क्यों और कैसा हुआ ?

इस समय अंतिम शांतिवार्ता विफल होकर लड़ाई अनिवार्य हो गई थी। उभय पक्षों की सेना पूरी तयार थी। युद्धारंभ तिथि भी निश्चित की जाकर केवल सात दिन दूर थी। एक एक क्षण महत्त्व का था। उसमें भी विशेष बात यह थी कि , इस रोज (वद्य सप्तमी को) पुष्य नक्षत्र योग होकर,श्रीकृष्ण चाहते थे कि पांडव इसी दिन उपप्लव्य से कुरुक्षेत्र की और प्रस्थान करे (शल्यपर्व ३५-१०,आगे उद्धृत) । इसके लिये श्रीकृष्ण का शीघ्रातिशीघ्र उपप्लव्य पहुचकर पांडवों को शांतिवार्ता भंग होने का समाचार देना आवश्यक था।

श्रीकृष्ण का यह वापसी का प्रवास महाकवि इस प्रकार वर्णन करते है -

विसर्जयित्वा राधेयं सर्वयादवनन्दन:
ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत् ॥ उद्योग पर्व १३७-३०
ते पिबन्त इवाकाशं दारुकेण प्रचोदिता:
हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुतरंहस: ॥ ३१

"कर्ण को बिदा कर श्रीकृष्ण ने तुरन्त अपने रथ के घोड़े बड़े बेग से हँकवाये - ३० दारुक द्वारा हाके गये वे महावेगवान अश्व मानो आकाश को ही पार करते हुए मन एवं वायु के समान गति से दौड़ने लगे।" फिर भी श्रीकृष्ण सारथि को बार - बार और शीघ्रता का आग्रह करते ही रहे (१४३-५२) । इसके अलावा, महाकवि ने यह भी कह दिया है कि, श्रीकृष्ण ने इस समय लंबा राजमार्ग छोड़कर पास का मार्ग लिया।

ते व्यतीत्य महाध्वानं क्षिप्रं श्येना इवाशुगा:
उच्चैर्जग्मुरुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमाहवन् ॥ १३७-३२

''(लम्बा) राजमार्ग छोड़कर (नजीक के रास्ते से) वे बाज पक्षी के समान वेग वाले घोड़े श्रीकृष्ण को लेकर शीघ्र ही उपप्लव्य आ पहुँचे।'' इस अवास में श्रीकृष्ण किसी को दर्शन देने, पूजा सत्कार स्वीकारने, या विश्राम करने कहीं नही रूके। और आखिर उसी रोज सायंकाल के करीब वे उपप्लव्य आ पहुचे।

पाण्डवों से मंत्रणा

उपप्लव्य पहुँचते ही श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को शांतिवार्ता का स्थूल वृत्तान्त सुनाया (१४७-१)। उस पर कुछ मंत्रणा के बाद वे विश्राम करने गये (१४७-२)। इसके पश्चात् सूर्यास्त बाद फिर पाण्डवों की श्रीकृष्ण के साथ गुप्त चर्चा हुई।

विसृज्य सर्वान् नृपतीन् विराटप्रमुखांस्तदा
पाण्डवा भ्रातर: पञ्च भानावस्तं गते सति ॥ १४७-३
संध्यामुपास्य ध्यायन्तस्तमेव गतमानसा:
आनाय्य कृष्णं दाशार्हं पुनर्मन्त्रममत्रयन् ॥ ४

''तदनन्तर पांचों पाण्डव बन्धुओं ने विराट सहित अन्य सब राजाओं को (उनके शिबिरों की ओर) बिदा किया, और सूर्यास्त पश्चात् संध्योपासना कर श्रीकृष्ण का ध्यान करते उनमें ही अपना चित्त लगाया। फिर उन्होंने श्रीकृष्ण को उपस्थित होने का निवेदन कर उनके साथ गुप्त मंत्रणा प्रारंभ की।''

यह द्वितीय मंत्रणा सूर्यास्त बाद होने के उल्लेख से सूचित होता है कि, प्रथम साधारण मंत्रणा का (तथा श्रीकृष्ण उपप्लव्य पहुचने का) समय सूर्योस्त पूर्व सायंकाल के करीब था। गुप्त चर्चा में केवल पांडव एवं श्रीकृष्ण होकर, उसमें श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर की घटनाओं का विस्तृत वृत्तांत दिया। तथा साथ में यह भी बताया कि, दुर्योधन ने (श्रीकृष्ण की युद्धारंभ तिथि की घोषणा कर्ण द्वारा प्राप्त करने बाद) आज ही इस पुष्य नक्षत्र योग पर अपनी सेना को कुरुक्षेत्र की और प्रस्थान करने का आदेश दे दिया है।

आज्ञापयच्च राज्ञस्तान् पार्थिवान् नष्टचेतस:
प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुन: पुन: ॥ उद्योग पर्व, १५०-३
ततस्ते पृथिवीपाला: प्रययु: सहसैनिका:
भीष्मं सेनापतिं कृत्वा संहृष्टा कालचोदिता: ॥ ४
निर्याताश्च विनाशाय कुरुक्षेत्रे नराधिपा: ।.... १९

''दुर्योधन ने बार-बार उन नष्टबुद्धि राजाओं को आदेश दिया है कि, 'आज (चन्द्रमा का) पुष्य नक्षत्र (योग) है, आप (आज ही) कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान करो -३. तदनुसार वे कालप्रेरित राजे भीष्म को सेनापति कर सैनिकों सहित बडे हर्ष से (हस्तिनापुर से) निकल चुके है - ४. उन राजाओं ने अपने विनाशार्थ कुरुक्षेत्र की और प्रस्थान कर दिया है''। दुर्योधन ने सेना को ये आदेश दिये उसके पहिलेही श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर छोड दिया था (१५३-८)। इन आदेशों के समय दुर्योधन के साथ कर्ण भी उपस्थित था। इससे स्पष्ट है कि, इसके पूर्व कर्ण हस्तिनापुर की सीमा पर श्रीकृष्ण से विदा लेकर युद्धारंभ तिथि का उनका संदेश लेकर, वापिस नगर मे दुर्योधन के पास पहुचा था। फिर श्रीकृष्ण को दुर्योधन के उन आदेशों की, एवं कौरव सेना ने हस्तिनापुर से प्रस्थान करने की, जानकरी कैसी प्राप्त हुई? यहां महाभारत कथा की सूक्ष्मता है कि, श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को वह जानकारी सूर्यास्तबाद के अपने द्वितीय मंत्रणा में दी। इससे संकेत मिलता है कि, उस दिन प्रतिक्षण होनेवाली घटनाओं का महत्त्व देख श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर से लौटते समय वहां अपने गुप्तचर छोडे थे; जिन्होंने दुर्योधन के वे आदेश तथा उसकी सेना का प्रस्थान देखतेही, अतिशीघ्र श्रीकृष्ण के पीछे पीछे उपप्लव्य आकर, श्रीकृष्ण (प्रथम वृत्तांत के बाद) विश्राम कर रहे थे तब उन्हें वह जानकारी दी।

श्रीकृष्ण का सुझाव था कि, उसी पुष्य नक्षत्र की तिथि पर पांडव भी अपनी सेना का कुरुक्षेत्र की और प्रस्थान करें। अत: उन्होंने पांडवों से कहा-

न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरव: कालनोदिता:
निर्गच्छध्वं पाण्डवेया: पुष्येण सहिता मया ॥शल्य पर्व ३५-१०

''काल से (विनाशार्थ) प्रेरित कौरवों ने मेरा कहना (शांति प्रस्ताव) नहीं माना है; अत: पाण्डवों, मेरे साथ (इसी) पुष्य नक्षत्र के दिन (कुरुक्षेत्र के लिये) प्रस्थान करो।'' श्रीकृष्ण का आदेश पाण्डव कैसे अमान्य करते?

उस द्वितीय मंत्रणा में पाण्डवों ने धृष्टद्युम्न को प्रमुख सेनापति कर अन्य छ: उपसेनापति नियुक्त किये। अध्याय १५१ में धृष्टद्युम्न का चुनाव है; फिर अध्याय १५७ में उसके तथा उपसेनापतियों के अभिषेकों का वर्णन है। अध्याय १५१ से भ्रम होता है कि, धृष्टद्युम्न का प्रमुख सेनापति पद पर चुनाव होते ही पाण्डव सेना ने उपप्लव्य से कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। किन्तु उस प्रयाण के पूर्व उपरोक्त अभिषेक हुए, तथा बलराम एवं रुक्मी आकर मिले, ऐसा कुल वर्णन से दीखता है।

बलराम यात्रा प्रारंभ

कौरव पांडव विवाद मे श्रीकृष्ण के दृष्टिकोण से अपना मतभेद बलराम ने अभिमन्युविवाह के बाद विराट नगर में हुई सभा में ही व्यक्त किया था (उद्योग पर्व अध्याय २)। उसके बाद दुर्योधन श्रीकृष्ण की सहायता मांगने द्वारका गया, उस समय बलराम ने उसके पास वह फिर व्यक्त किया (उद्योग पर्व ७-२६ से ३०)। किन्तु तबतक समझौते की अस्पष्ट क्यों न हो आशा शेष थी। और कुल परिस्थिति पर बलराम सूक्ष्मता से दृष्टि रखे हुए थे ऐसा दीखता है। अत: जब श्रीकृष्ण की अंतिम शांतिवार्ता विफल होकर युद्धारंभ तिथि भी निश्चित हो गई, तब बलराम तत्काल पांडवों से और विशेष रूप से श्रीकृष्ण को उपप्लव्य में उसी रात्रि में मिले।

तद् दृष्टोपस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम् ॥ उद्योग पर्व ,१५७-१६
प्राविशद् भवनं राजन् पाण्डवानां हलायुधः । १७

''राजा जनमेजय , वह महाविनाशकारी युद्ध बिलकुल निकट प्राप्त देख हलधर बलराम पाण्डवों के भवन पर आये।'' उन्होने श्रीकृष्ण को समझाने का प्रयत्न किया कि, कौरव-पाण्डवों के इस स्वजन युद्ध से पूर्णतया दूर रहें। किन्तु श्रीकृष्ण ने युद्ध में प्रत्यक्ष न लड़ते केवल अर्जुन का सारथ्य करना मान्य किया था, और उससे वे अब परावृत्त होना नहीं चाहते थे। इस पर दुखी हृदय से बलराम ने कहा—

तस्माद् यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम्
न हि शक्ष्यामि कौरव्यान् नश्यमानानुपेक्षितुम् ॥ १५७ -३४
एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञातश्च पाण्डवैः
तीर्थयात्रां ययौ रामो निर्वर्त्य मधुसूदनम् ॥ ३५

''इस पर 'अत: मैं सरस्वती नदी के तीर्थों की यात्रा करने जाता हूं, क्योंकि मैं कुरुकुल वंशियों के विनाश का दृश्य सहन नहीं कर सकूँ गा' ऐसा कहकर महाबाहू बलराम ने पांडवों से बिदा ली, और श्रीकृष्ण को चिंतामुक्त कर बलराम तीर्थयात्रा पर चले गये ''। इस प्रकार बलराम की यात्रा उपप्लव्य से ही उसी रात्रि में आरंभ हुई। श्रीकृष्ण की चिंतामुक्ति इसलिये कि, यदि बलराम क्रोधित होकर उस युद्ध में दुर्योधन की और से लड़ते, तो कुलमिलाकर परिस्थिति पांडवों के लिये बहुत मुश्किल की, एवं स्वयं श्रीकृष्ण के लिये तो अति विलक्षण हो जाती।

बलराम ने यह यात्रा युद्ध के अंतिम दिन भीम - दुर्योधन गदायुद्ध के समय समाप्त की। तब उन्होंने स्पष्ट कहा कि, यात्रारंभ के दिन चन्द्र पुष्य नक्षत्र में था (शल्य पर्व ३४-६,७) । इसका समय विवेचन मैंने आगे किया होकर, वह इस निष्कर्ष की संपूर्ण पुष्टि करता है कि, जिस दिन श्रीकृष्ण असफल शांतिवार्ता के बाद अतिशीघ्रतापूर्वक हस्तिनापुर से उपप्लव्य वापिस आये, उसी पुष्य नक्षत्र दिवस पर बलराम की यह तीर्थयात्रा उपप्लव्य से आरंभ हुई थी।

बलराम चले जाने बाद इसी रात्रिसमय में रुक्मी भी आकर पांडवों से मिला, और कुछ ही क्षणों में वापिस चला गया।

गते रामे तीर्थयात्रां भीष्मकस्य सुते तथा
उपाविशत् पाण्डवेयाः मन्त्राय पुनरेव च ॥ उद्योगपर्व, १५८ - ३९

'' बलराम तीर्थयात्रा पर चले गये तथा रुक्मी भी वापिस लौट गया, उसके बाद पाण्डव पुन: महत्त्वपूर्ण मन्त्रणा के लिये बैठे ।''

पाण्डवों का कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान

इसके बाद उसी पुष्य नक्षत्र वाली तिथी पर पांडव सेना ने उपप्लव्य से कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। वह रात्रि के किस प्रहर में किया ? सेनापति चुनाव के समय युधिष्ठिर ने कहा था -

ब्रवीतु वदतां श्रेष्ठो निशा समभिवर्तते
ततः सेनापतिं कृत्वा कृष्णस्य वशवर्तिनः ॥ उद्योगपर्व १५१ - ३७
रात्रेः शेषे व्यतिक्रान्ते प्रयास्यामो रणाजिरम्
अधिवासितशस्त्राश्च कृतकौतुकमङ्गलाः ॥ ३८

'' विद्यानिधान श्रीकृष्ण हमें (प्रधान सेनापति की नियुक्ति में) कृपया मार्गदर्शन करें। इस समय ' निशा' चल रही है। सेनापति नियुक्ति के पश्चात् हम शस्त्र पूजन और धार्मिक मंगल विधि सम्पन्न कर ' रात्रि' का शेष भाग समाप्त होते समय श्री कृष्ण के नेतृत्व में रण भूमि की ओर प्रस्थान करेंगे।''

' निशा ' सूर्यास्त से सूर्योदय तक होकर उसमें दोनों संध्या समय आते हैं; किन्तु, 'रात्रि' में संध्या प्रहर नहीं आते। अत: युधिष्ठिर का आशय है कि, पांडव सेना आगामी

सूर्योदय के पूर्व उषःकाल में (ब्राह्ममुहूर्त) पर प्रस्थान करेगी। तिथि सूर्योदय से बदलती है। इस प्रकार उषःकाल की वह वेला पुष्य नक्षत्र की (नद्य सप्तमी) तिथि में ही गिनी जाकर, श्रीकृष्ण की इच्छानुसार पांडवों का उपप्लव्य से उस तिथि पर कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान हुआ।

यही वैशपांयन ने फिर पुष्य नक्षत्र का विशेष उल्लेख कर अलग से कहा है -

रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ॥ शल्यपर्व , ३५- १५
पाण्डवेयान् पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून् ।.... १६

'' शूर बलराम (तीर्थयात्रा को) चले जाने बाद, श्रीकृष्ण पुष्य नक्षत्र पर पांडवों को आगे कर (उपप्लव्य से) कुरुक्षेत्र की ओर चले। ''

❑

तिथियों की विलक्षण उलझन

युद्धारम्भ तिथि का कूट

शांतिवार्ता असफल होने बाद हस्तिनापुर छोडते समय श्रीकृष्ण ने कर्ण के द्वारा आगामी अमावास्या युद्धारंभार्थ घोषित कर दी यह पूर्व प्रकरण में बताया है। श्रीकृष्ण ने कहा -

ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम्
सौम्योऽयं वर्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः ॥ उद्योग पर्व , १४२-१६
सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमक्षिकः
निष्पंको रसवत्तोयो नात्युष्णशिशिरः सुखः ।। -१७
सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ॥-१८

''कर्ण, यहां से वापिस लौटकर द्रोण, भीष्म, तथा कृप (आदि) से कहो कि, यह सौम्य मास चल रहा है, जिसमें (पशुओं को) चारा तथा जलाऊ लकड़ी सुलभता से प्राप्त होती है — १६. सब प्रकार की वनस्पतिओं से वन परिपूर्ण है, वृक्ष फलभार से लदे हैं, मख्खियाँ बहुत कम हो गई हैं, भूमि कीचड़ से मुक्त हैं, पेय जल सुस्वादु है तथा इस सुखद हवामान में न अधिक गर्मी है न सर्दी — १७. (आज से) सातवे दिन बाद (आठवे दिन) अमावास्या होगी, जिसकी देवता इन्द्र बताई गई है; उस अमावास्या पर युद्ध आरम्भ किया जावे —१८''। पूर्णिमान्त मास पद्धति से वह अमावास्या मार्गशीर्ष की और अमावास्यान्त पद्धति से कार्तिक की थी।

युद्ध के आरंभदिन ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीतोपदेश दिया। इस प्रकार स्वयं श्रीकृष्ण के वचनानुसार वह उपदेश उस अमावास्या को हुआ। फिर युद्धारंभ तिथि उस अमावास्या के बजाय ग्यारह दिन बाद मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को मानकर गीता जयंती उस एकादशी को मनाने की परंपरा क्यों प्रचलित हुई है ?

यहाँ कूट यह है कि , महाकवि ने अपने युद्ध वर्णन में आगे जाकर कहा है कि लड़ाई के चौदहवे दिन उत्तरात्रि में चन्द्रोदय हुवा । ऐसा देर का चन्द्रोदय कृष्ण पक्ष के द्वितीय सप्ताह में ही संभव है। किन्तु अमावास्या को युद्धारम्भ माना तो लगातार चौदहवा

दिन शुक्ल पक्ष मे आयगा, कृष्ण पक्ष के द्वितीय सप्ताह में नही। इस लिये कुछ विद्वान युद्धारंभ तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी पर ले गये; ताकि वहां से लगातार चौदहवा दिन उसके बाद के कृष्ण पक्ष के उत्तरार्ध में आकर उक्त उत्तररात्रि का चन्द्रोदय सिद्ध हो। किन्तु स्वयं महाभारत काव्य में इस वैकल्पिक युद्धारंभ तिथि का कोई उल्लेख नही। तथा (आगे बताये अनुसार) उस तिथि से युद्ध की अन्य प्रमुख घटनाओं की तिथियाँ भी सुसंगत नही होती। यह देखकर डॉ.दप्तरी (पूर्वउल्लेखित), डॉ.पां. वा. काणे (पूर्व उल्लेखित, Vol.III pp907-915), आदि कुछ अन्य विद्वान उस अमावास्या को ही युद्धारंभ मानते हैं. किन्तु चौदहवे दिन के उस चन्द्रोदय का वर्णन प्रक्षिप्त (Interpolation) कहते हैं। किन्तु उस वर्णन को अनधिकृत मानने को भी पर्याप्त कारण नहीं है। इस प्रकार विद्वानों के लिये युद्धारम्भ की (अर्थात गीताजंयती की) तिथि एक जटिल समस्या बन गई थी।

बलराम की तीर्थयात्रा दिनों का कूट

इसके बाद बलराम की तीर्थयात्रा के दिनों की समस्या लीजिए। अपनी यात्रा समाप्त करते समय बलराम ने कहा वचन दर्शाता है कि, यात्रा (चन्द्र) के पुष्य नक्षत्रपर आरंभ होकर युद्ध के अंतिम दिन भीम-दुर्योधन गदाद्वंद्व के समय समाप्त हुई। बलराम बोले -

चत्वारिंशत् अहान्यद्य द्वे च मे निसृतस्य वै
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः ॥ शल्यपर्व, ३४-६
शिष्ययोर्वै गदायुद्ध द्रष्टुकामोऽस्मि माधव।..... -७

"श्रीकृष्ण (उपप्लव्य में तुमसे बिदा होकर तीर्थयात्रा के लिये) मुझे निकले आज बयालीसवा दिन है। मैं पुष्य नक्षत्र पर निकला था, और (आज तीर्थ यात्रा समाप्त कर तुम्हारे पास) श्रवण नक्षत्र पर वापिस आया हूँ। मैं अपने दोनो शिष्यों (दुर्योधन एवं भीम) का गदायुद्ध देखना चाहता हूँ।"

यात्रा के ये बयालीस दिन अभी तक कूट बने हुए थे। पूर्व प्रकरण में देखे अनुसार, श्रीकृष्ण ने युद्धारंभार्थ घोषित अमावास्या के सात दिन पूर्व यह यात्रा आरंभ हुई थी ; और लड़ाई अठारह दिन हुई ऐसा महाभारत मे कहा है। अत: जो भाष्यकार उस अमावास्या पर युद्धारंभ मानते थे, वे उन युद्धपूर्व सात दिनों मे युद्ध के अठारह दिन मिलाते रहे। किन्तु इस प्रकार तीर्थयात्रा के कुल पचीस ही दिन होते हैं। फिर जो लेखक युद्धारंभ तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी तक ले गये वे भी केवल ग्यारह और दिन जोड सके ; जिनसे भी मिलाकर

कुल छतीस दिन ही होते हैं, स्वयं बलराम ने कहे अनुसार बयालीस नहीं। इसी प्रकार बलराम वचन में उल्लेखित नक्षत्रों का भी हिसाब बैठ नही रहा था। चन्द्र प्रतिदिन औसतन एक नक्षत्र जाता है। किन्तु पुष्य से श्रवण न तो पचीस स्थान दूर है, न सैंतिस। इसके विपरीत, वह दूरी (२७ नक्षत्रों का एक भ्रमण पूरा कर उसमें द्वितीय चक्र कर के पन्द्रह नक्षत्र मिलाकर) बराबर बयालीस स्थानों की है॥ अन्त में डॉ.दप्तरी ने (देखिये पूर्वोल्लेखित p.7 तथा 117) यहां तक सूचना कर दी कि, बलराम के उक्त वचन में पुष्य के स्थान पर श्रवण और श्रवण के स्थान पर पुष्य पढा जावे, और यात्रा का आरंभ उपप्लव्य के बजाय द्वारका से माना जावे।

पंडित देवकीनन्दन खेडवाल बलराम तीर्थयात्रा के दिन बयालीस के बजाय, ३८ ही गिनकर हिसाब बैठाने का प्रयास करते हैं।* वे बलराम के उक्त श्लोक में 'श्रवण' के स्थान पर 'श्रवणेन' पढ़कर, तथा (चूँकि संस्कृत में 'श्रवण' का अर्थ 'सूनना' भी होता है) उस शब्द का नक्षत्र विशेष से सम्बन्ध ही हटाकर "गदायुद्ध का समाचार सुनकर" ऐसा आशय लेना चाहते हैं। इस दृष्टि से वे लिखते हैं, "अर्थात बलरामजी ने कहा कि आज मुझे दो कम चालीस (३८) दिन हो गये हैं। मैं पुष्य नक्षत्र में गया था और गदायुद्ध होने का वृत्तांत श्रवण करके पुन: आया हूं। .... अत: बलरामजी मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी को पुष्य नक्षत्र में गये थे और नारदजी के मुख से गदायुद्ध का वृत्तांत सुनकर पौष कृष्ण ३० को ३८ वें दिन आये थे यही अर्थ शुद्ध है।" किन्तु इस प्रकार महाभारत के उस श्लोक में 'श्रवणे' के स्थान पर 'श्रवणेन' पढ़ना (जिससे छन्द की दृष्टि से एक अक्षर अधिक भी हो जाता है), और श्लोक में चालीस पर दो अधिक ('च') कहा होने के बावजूद, उलटे दो कम करना कहां तक उचित है ?

कुछ लेखक बलराम के उस श्लोक को ही संशयास्पद मानते हैं, तो कोई उस यात्रा का प्रारम्भ पांडवों के उपप्लव्य से कुरुक्षेत्र को प्रस्थान के पश्चात किसी दिन (या एक दिन पूर्व) हुवा होगा ऐसा भी तर्क करते हैं।

इस सारे संदर्भ में आगे प्रकरण ८ में इस श्लोक के मूल पाठ में कुछ भी हस्तक्षेप न करते इस कूट का सरल हल प्रस्तुत है।

* "भारतीय कालगणना", पृ. १२९ - १३०

कुछ अन्य प्रश्न

युद्ध समाप्ति के बाद विजयी पांडावों ने एकदम हस्तिनापुर में प्रवेश नहीं किया। उन्होंने युद्ध में दोनों पक्षों के मृत वीरों की प्रथम विधिवत् अन्त्येष्टि क्रिया की। और उसके पश्चात नगर के बाहर नदी तट पर एक पूरा माह शौच पालन में व्यतीत किया।*

तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनन्दना:
शौचं निवर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहि:पुरात् ॥ शांतिपर्व १-२.

''वहां शहर के बाहर (नदीतट पर) महात्मा पांडवों ने शौच पालन करते हुए एक मास निवास किया।'' किन्तु युद्ध समाप्ती बाद के इस एक महीने की ठीक गिनती न लगा सकने से, नदी तट पर 'शौचपालन' का वह समय केवल बारह दिन ही गिनने का प्रयास संस्कृत भाष्यकार आचार्य नीलकंठ ने किया; तथा डॉ. बेलवलकर ❑ आदि भी उनका अनुकरण करते हैं। अब उस एक माह की भी बराबर गिनती उपलब्ध हो गई है।

शरशय्या से भीष्म ने मरणपूर्व दिया गंभीर धर्मोपदेश शांति पर्व एवं अनुशासन पर्व में आया है। उसके दिन कोई आठ, तो कोई ग्यारह, और कोई तीस गिनना चाहते हैं। कुछ विद्वान तो उस सारे उपदेश को प्रक्षिप्त (इंटरपोलेशन) मानते हैं। किन्तु वह मूल महाभारत का ही अंश होकर, तिथियों सहित उसके निश्चित पाच दिन प्रकरण १० में स्पष्ट किये हैं।

भीष्म निधन तिथि की गहन समस्या

अंत में भीष्म निधन की तिथि भी बहुत कूट हो गई थी। लड़ाई के दसवे रोज करीब संध्यासमय भीष्म अति घायल होकर रणभूमि पर रथ से नीचे गिर पडे। किन्तु उन्हें इच्छामरण का वर प्राप्त होने से, उत्तरायण आरंभ के शुभ समय तक प्राणधारण कर वे शरशय्यापर पडे रहे। जब प्राणविसर्जन का समय आया तब स्वयं उन्होंने कहा —

* प्रचलित हिन्दू रूढी के अनुसार मृत व्यक्ति के आप्तजन 'बशौचपालन' करते हैं, और अन्य कोई उन्हें स्पर्श करने पर 'अपवित्र' हुआ समझा जाता है। किन्तु, महाभारतकार 'शौच पालन' कहते है। धृतराष्ट्र आदि के निधन बाद भी पाण्डवों ने 'शौच' पालन कर श्राद्धकर्मादि करने का आश्रमवासिक पर्व में (३९ - १३, १६) उल्लेख है। उद्योगपर्व १७८ - ६० में भीष्म - परशुराम संवाद में भी इस संदर्भ में 'शौच' शब्द आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि, महाभारत के अनुसार मृत व्यक्ति के निकट संबंधियों ने स्वयं 'शौच' (विशेष शुद्धता) पालन कर पिंडदानादि करना चाहिये। इस दरम्यान अन्य किसी का स्पर्श होने पर उस अन्य व्यक्ति ने नहीं अपितु स्वयं उन्होंने स्नानआदि द्वारा पुन: शुद्ध होना चाहिये। अन्य व्रतों में ऐसा ही होता है।

❑ भांडारकर संस्था द्वारा प्रकाशित 'The Mahabharata,' Vol. XVIII, Part I, Introduction, P. Lxxx v1, Footnote 2.

अष्टपंचाशतं रात्र्य: शयानस्याद्य मे गता:
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा ॥ अनुशासन पर्व, १६७-२७
माघोऽयं समनुप्राप्तो मास: सौम्य: युधिष्ठिर
त्रिभागशेष: पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति ॥ २८

''तीक्ष्ण अग्र के बाणों पर शयन करते मेरी अब अट्ठावन रात्रियाँ बीती है; यह समय एक सौ वर्षों के समान प्रतीत हुवा है-२७. युधिष्ठिर. माघ का यह सौम्य मास प्राप्त होकर पक्ष शुक्ल है; और वह (याने, कुछ भाष्यकारों के मत से वह माघ मास, तथा कुछ विद्वानों के मतानुसार वह शुक्ल पक्ष) इस समय त्रिभागशेष है''। यहाँ 'त्रिभागशेष' शब्द में कूट है। उस शब्द का साधारणतया ''जिसका तीन - चौथाई अंश अभी शेष है'' ऐसा अर्थ किया जाता है, किन्तु यहां भिन्न अर्थ है।

इस श्लोक में शरशय्या की अट्ठावन रात्रि तथा उनकी समाप्ति समय माघ मास एवं शुक्ल पक्ष का स्पष्ट उल्लेख है। किन्तु विद्वानों के अनेकानेक स्पष्टीकरणों में शरशय्या की ये अट्ठावन रात्रियाँ पूर्ण नहीं गिनी जा सकती थी। मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को जो युद्धारंभ मानते हैं उनकी गिनती से युद्ध का लगातार दसवा दिन अगले कृष्ण पक्ष की पंचमी को आता है। उस रोज भीष्म का रणभूमि पर पतन माना तो वहाँ से अट्ठावन रात्रि गिनने पर भीष्मनिधन (दो माह बाद के) कृष्ण पक्ष में ही आवेगा। जब कि स्वयं भीष्म शुक्ल पक्ष बता रहे हैं। इस आपत्ति से छुटकारा पाने भाष्यकार नीलकंठ शरशय्या की कुल रात्रियाँ कम करते हैं। इसलिये वे 'अष्टपंचाशतं' शब्द का विग्रह ''अष्टपंच अशतं'' करते हैं; और 'अशतं' का अर्थ ''सौ से कम'' ऐसा कर, 'अष्टपंच' में जो दो संख्या हैं उनका क्रम उलटा कर 'अष्टपंच' का ही अर्थ 'पाँच पर आठ यानी अट्ठावन' करते हैं। इस प्रकार 'अष्टपंचाशतं' का कुल अर्थ (५८ के बजाय) 'सौ में अट्ठावन कम' अर्थात् बयालीस होता है। अब नीलकंठ के मतानुसार युद्धारम्भ तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल की ठीक एकादशी न होकर त्रयोदशी (या चतुर्दशी) होने से, रणभूमि पर भीष्म पतन की तिथि बाद की कृष्ण अष्टमी आती है; जहां से बयालीस रात्रियां गिनने पर नीलकंठ भीष्मनिधन तिथि माघ शुक्ल पंचमी पर ले आते हैं। किन्तु इतना करने पर भी उक्त पंचमी के रोज न तो वह शुक्ल पक्ष, न ही माघ मास, सामान्य अर्थ से 'त्रिभागशेष:' (जिसका तीन चौथाई हिस्सा शेष है) कहा जा सकता है। अत: वे उस शब्द का अर्थ 'त्रिभागमात्र:' अर्थात् 'जिसका एक तिहाई भाग बीतकर दो तिहाई शेष है' करते हैं, और फिर उसका सम्बन्ध उस शुक्ल पक्ष से लगाते हैं।

कुछ दूसरे लेखक , शरशय्या की रात्रियाँ कम करने के बजाय उनकी गिनती रण भूमि पर भीष्मपतन के बजाय युद्ध के प्रथम दिन से ही करना चाहते है * । वे श्लोक २७ की प्रथम पंक्ति में ('शयानस्य' के स्थान पर 'ऽ शयानस्य' यानी 'अशयानस्य' लेकर) ऐसा आशय देखते हैं कि, निधन समय तक भीष्म ने 'बिना नींद ' अट्ठावन रात्रियाँ बिताई थी, क्योंकि लड़ाई के आरंभ दिन से ही उन्हें रात्रि में नींद नही आती थी ! किन्तु श्लोक में 'शरेषु निशिताग्रेषु' ('तीक्ष्ण बाणों की शय्या पर') ऐसे स्पष्ट शब्द है, जिनका संबंध लड़ाई के दसवे दिन उनके शरीर में प्रविष्ट तीक्ष्ण बाणों से हुवे उनके पतन से है।

पुणें की भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च संस्था उन ५८ रात्रियों को रणभूमि पर भीष्म के पतन से गिनकर माघ कृष्ण पक्ष में पहुंचती है ; और फिर वहाँ कृष्ण पक्ष को ही शुक्ल पक्ष मान लिया जावे ऐसा आग्रह करती हैं !

"The statement पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति is intriguing. If the fortnight had actually been bright , Bhishma would have clearly said so. He would not have said that the *paksa* deserved to be regarded as *šukla*. The implication seems to be that the *paksa* though not actually *šukla,* deserved to be regarded as *šukla*. And the reason for this is suggested by the word *tribhāgašeṣah* . The *paksa* was *krsna* but, since three parts of it had still remained - only one part having elapsed - it could as well be regarded as *šukla* (that is, the continuation of *šukla*). The *kṛṣṇa -pakṣa* was *tribhāgašeṣah,* that is to say, only one fourth of it had elapsed. One fourth of fortnight is 3.75 days . Therefore the date indicated in 153-28 would correspond to *Māgha-kṛṣṇa-caturthi.* " ❑

उधर ,जो श्रीकृष्णवचनानुसार अमावास्या पर ही युद्धारम्भ मानते रहे, उनके हिसाब से भीष्मपतन का दिन अर्थात शरशय्या प्रारम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल नवमी को आता है। वहाँ से अट्ठावन रात्रियाँ गिनकर माघ शुक्ल अष्टमी पर भीष्मनिधन बता सकते है। और

* देखिये प्रो. राघवन (पूर्व उल्लेखित) P. 19: तथा महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी कृत " गीता - प्रवचन गीता व्याख्यानमाला " खण्ड ४, पृ. ७९ - ८५.

❑ Anushasana Parvan, Part I , Introduction, P. LXXXIII - IV. (इसमें उल्लेखित श्लोक १५३/२८ वही है जो ऊपर १६७/२८ बताया है).

उस दिन माघ मास 'त्रिभागशेष' (तीन चौथाई शेष) कहा जा सकता है, क्योंकि उसका आधा पक्ष बीतकर डेढ शेष था(बशर्ते कि अमावास्यान्त मास पद्धति का अनुसरण हो)। इसी आधार पर प्रचलित पंचांगों में भीष्मनिधन तिथि माघ शुक्ल अष्टमी बताई जाती है। किन्तु इस पर आपत्ति यह है कि, इस गणनानुसार लड़ाई का चौदहवा दिन शुक्ल पक्ष में आकर उसकी उत्तररात्रि में चन्द्रोदय सम्भव नहीं। इसके अलावा, इन्हीं पंचांगों में विसंगति पर कोई ख्याल न करते, गीता जयन्ती अमावास्या के बजाय मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को बताई जाती है।

भीष्म निधन तिथि माघ शुक्ल अष्टमी को दर्शानेवाला एक उल्लेख महाभारत की कुछ पोथियों में शांतिपर्व अध्याय ४७ के एक श्लोक में आता है, जिसकी चर्चा आगे (प्रकरण ८ में) की है। इसके अलावा इस तिथि का उल्लेख ' भारतसावित्री' नाम की एक छोटी सी संस्कृत पद्यरचना में ' माघ मासे सिताष्टमी' इन शब्दों में पाया जाता है। किन्तु इस रचना में भीष्म का रणभूमि पर पतन मार्गशीर्ष पूर्णिमा के बाद आनेवाली कृष्ण सप्तमी को बताया है, जहाँ से माघ शुक्ल अष्टमी तक अट्ठावन रात्रियाँ पूर्ण नही होती। इस कारण कभी - कभी वहां 'सिताष्टमी ' के पूर्व एक अवग्रह देकर 'असिताष्टमी ' ऐसा भी पढा जाता है , जिसका अर्थ (माघ मास की) कृष्ण अष्टमी होता है। किन्तु इसमें भीष्म निधन के समय महाभारत में शुक्ल पक्ष का जो उल्लेख है उससे विरोध आता है। वस्तुत: 'भारतसावित्री ' के मूल शब्द निश्चित करना अति कठिन है। उसके श्लोक अधिकांश मात्रा में अन्य रचनाओं मे उद्धृत उपलब्ध होते हैं।*

पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (पूर्व उल्लेखित) निष्कर्ष निकालते हैं कि , इस गहन समस्या का पूरा हल असंभव होकर, महाभारत के ये संख्यादर्शक कूट श्लोक या तो किसी गुप्त परिभाषा में होकर उनका वास्तविक अर्थ अभी तक किसी की समझ मे ठीक नही आया है , अथवा उन श्लोकों में लेखकों के प्रमाद से कुछ अशुद्धियाँ आ गई हैं। इसी नैराश्यपूर्ण स्वर से चिं. वि. वैद्य (पूर्व उल्लेखित , मराठी , पृ १२७-२८) लिखते हैं " इसका समाधान प्राय: असंभव ही है.... या तो युद्धपर्व में आये वचन असत्य है या फिर अनुशासन पर्व के ये वचन असत्य , इस प्रकार का यह विरोध अपरिहार्य है ऐसा मानना पडता है" । ऐसे ही विचार डॉ. काणे आदि ने भी व्यक्त किये हैं। ❑

* देखिये डॉ. काणे, पूर्व उल्लेखित Vol. III , Pages 909 - 10, foot note 1773

प्रकरण ७

युद्ध के रहस्यमय कुल दिवस

युद्ध के विश्राम दिन

महाभारतकार ने संदिग्ध शब्द प्रयोगों द्वारा अत्यंत खूबीसे छिपाये कुछ रहस्यों के आधार पर,अब उनके विविध कालगणनात्मक एवं ज्योतिषात्मक कूटों का पूर्ण स्पष्टीकरण प्राप्त हो रहा है। इसमें एक रहस्य यह है कि, महाभारत में पूरे विस्तार से दिया महायुद्ध का वर्णन लड़ाई लगातार प्रतिदिन न होकर एक - एक अवकाशदिन छोडकर होने की गणना पर आधारित है ! यद्यपि प्रत्यक्ष लड़ाई के दिन अठारह बताये हैं , उनमें बीच के विश्रामदिवस मिला कर युद्धकाल के कुल दिवस पैंतीस गिने हैं। महाकवि ने महाभारत के श्लोकों मे इसके मार्मिक प्रमाण एवं संकेत रखे हैं।

इन विश्राम दिनों का जिन विशिष्ट कार्यो के लिये उपयोग किया जाता था, उनमें से कुछ का यहां शुरू में ही उल्लेख करता हूँ। अन्य कार्यो का उल्लेख आगे संदर्भानुकूल आयगा। लड़ाई के प्रतिदिन दोनों सेनाओं की जो नई नई व्यूहरचना होती थी उसकी माहिती, व्यूहों के विशिष्ट नामों सहित, महाकवि ने दी है। पांडवों ने लड़ाई के दूसरे रोज अपनी सेना की रचना 'क्रौंचारुण' व्यूह में, तीसरे रोज 'अर्धचन्द्राकार' व्यूह में, पाँचवे रोज 'श्येन' व्यूह में, छठे रोज 'मकर' व्यूह में, सातवे रोज 'वज्र' व्यूह में, आठवे रोज 'श्रृंगाटक' व्यूह में, ग्यारहवे रोज फिर '' क्रौंच'' व्यूह में, तथा बारहवे रोज 'मंडलार्ध' व्यूह में की थी। इसी प्रकार कौरव सेना के व्यूहों के भी नाम दिये हैं। दोनों सेना अति विशाल थी; और प्रतिदिन युद्धारम्भ सूर्योदय पर (एक दो रोज उसके भी कुछ पूर्व) होता था। प्रतिदिन लड़ाई बन्द होने के बाद, इन व्यूहरचनाओं के पूर्वाभ्यास (रिहर्सल्स) स्पष्टतया आवश्यक थे, ताकि लड़ाई के अगले दिन पर प्रारम्भ में ही सेना रणक्षेत्र पर तुरन्त इच्छित रचनानुसार खड़ी हो सके। बीच के अवकाश दिनों के अलावा अन्य कौन से समय ये पूर्वाभ्यास हो सकते थे ? क्या दिनभर की लड़ाई से अत्यन्त थकी सेना उसी दिन रात्रि समय में इस प्रकार के पूर्वाभ्यास कर फिर सूर्योदय से लड़ने के लिये खड़ी होना सम्भव माना जा सकता है ?

इसके अलावा, लड़ाई में प्रतिदिन रण भूमि अगणित मानवी एवं पशुओं (जिन में प्रचंड हाथी भी थे) के मृत शरीरों से, तथा उध्वस्त रथ आदि से, खचाखच पट जाती थी।

इसकी स्पष्ट सूचना महाभारत में स्थानस्थान पर दी हुई है (उदाहरणार्थ, द्रोण पर्व ४१-१८, १९, २०, ९३-६, कर्ण पर्व ९४-१३ से १९)। एक श्लोक में रणभूमि पर रक्त, चर्बी एवं माँस का कीच जम जाने का भी उल्लेख है (द्रोण पर्व १४८-५६)। महाकवि ने ये उल्लेख क्यों किये है ? लड़ाई फिर से चालू करने पूर्व इसकी साफ सफाई आवश्यक थी ; उसके बिना रणभूमि पर आसानी से फिर रथ चलाना असंभव था। यह सफाई विश्राम दिन पर हो सकती थी।

इसके बाद, युद्ध काल में कौरवो के बदलने वाले प्रमुख सेनापतियों के अभिषेकों पर विचार करें। भीष्म पतन के बाद द्रोण कौरव सेनाध्यक्ष हुए, तथा द्रोण के बाद कर्ण और उसके बाद शल्य। महाकवि ने द्रोण एवं कर्ण को किये गये धार्मिक विधिवत अभिषेकों का विस्तृत वर्णन दिया है, और शल्य को भी वैसा ही अभिषेक किया गया ऐसा कहा है। द्रोणाचार्य के अभिषेक का वर्णन इस प्रकार है -

अथाभिषिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः
सैनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शक्रमुखाः सुराः ॥ द्रोणपर्व, ७-६
ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च
संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधबंदिनाम् ॥ -८
जयशब्दैर्द्विजाग्र्याणां सुभगानर्तितैस्तथा
सत्कृत्य विधिना द्रोणं मेनिरे पाण्डवाञ्जितान् ॥ - ९

'' तदनन्तर जैसे पुरातन काल में इन्द्रादि देवों ने स्कन्द को सेनापति पद का अभिषेक किया था, वैसा ही दुर्योधनादि राजाओं ने द्रोणाचार्य को अभिषेक किया - ६. पुण्याहवाचन, स्वस्ति वाचन आदि धार्मिक विधि, भाट बंदिजनों द्वारा स्तुतिगान, श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा जयजयकाररूप आशीर्वचन, नृत्यांगनाओं के नृत्य,आदि सब प्रकारों से द्रोणाचार्य का विधिवत सत्कार कर, कौरवों के मन में विश्वास हो गया कि अब पांडव निश्चित ही पराजित हो जायेंगे -९''।

इसी प्रकार कर्ण को भी अभिषेक हुआ था।

सैनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः
ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ कर्ण पर्व १० - ४३
दुर्योधनमुखा राजन् राजानो विजयैषिणः
शातकुम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥ - ४४

औदुम्बरे सुखासीनमासने क्षौमसंवृते
शास्त्रदृष्टेन विधिना सम्भारैश्च सुसम्भृतैः ॥ -४६
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च सम्मताः
तुष्टुवुस्तं महात्मानमभिषिक्तं वरासने ॥ -४७

"जैसा (पूर्वकाल में) देवों ने स्कन्द को अपना सेनापति किया था, उसी प्रकार दुर्योधन तथा उसके अधीनस्थ विजयाभिलाषी राजाओं ने कर्ण को सेनापति बनाकर, उसका सत्कार करने की इच्छा से शास्त्रोक्त विधि द्वारा उस पर अभिषेक किया। कर्ण पर सिंचन करने स्वर्ण तथा मिट्टी के बर्तनों में अभिमंत्रित जल रखा था ; .... औदुंबर के सुन्दर आसन पर, मृदु रेशम का कपड़ा बिछाया था, तथा उसपर कर्ण आराम से विराजमान था शास्त्रीय विधि से उपरोक्त सुसज्जित सामग्री द्वारा कर्ण का अभिषेक सम्पन्न हुआ ; और इस प्रकार उच्चासन पर स्थित अभिषिक्त सेनापति महात्मा कर्ण का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारों वर्णो के आदरणीय व्यक्तियों ने स्तुतिगान किया"।

ऐसे विशाल स्वरूप में ये अभिषेक समारोह अवकाश दिनों पर ही हो सकते थे। प्रत्यक्ष लड़ाई के दिन किसी रात्री समय में थकी हुई निद्रावश सेना को अत्यावश्यक आराम से वंचित कर वे नही हुवे होंगे। उधर फिर लड़ना सूर्योदय पर शुरू होता था। द्रोण एवं शल्य के अभिषेक विश्राम दिनों में हुए इसके तो आगे बताये अनुसार महाभारत में स्पष्ट प्रमाण भी है।

यदि ये विश्राम दिन (जिनके और भी प्रमाण आगे के प्रकरणों में दिये हैं) प्रत्यक्ष लड़ाई के अठारह दिनों में जोडे, तो कुल युद्धकाल पैंतीस दिन का होता है। इस गिनती से महाभारत के युद्धविषयक कालगणना के (एवं ज्योतिष के) कई कूट आसानी से हल हो जाते हैं। किन्तु उसके पूर्व महाकवि की एक और सूक्ष्मता पर ध्यान आवश्यक है।

अवकाश दिनों में एक अपवाद

यद्यपि लड़ाई के प्रतिदिन बाद (उभय पक्षों की संमति से) एक विश्राम दिवस आता था, उसमें एक अपवाद भी हुआ। चौदहवे दिन को लगकर अवकाश दिन नही था। उस दिन अर्जुन नें सूर्यास्त पूर्व जयद्रथ का वध किया (प्रकरण १८)। किन्तु दुर्योधन ने अंधेरी रात में भी लड़ाई चालू रखी। मशालें जलाकर प्रकाश किया गया। इसका मार्मिक वर्णन महाकवि नें दिया है। किन्तु मध्यरात्रि तक दोनों सेना अत्यंत थक गई। यह देखकर केवल दया से प्रेरित होकर अर्जुन ने प्रस्ताव किया कि, कुछ समय लड़ाई स्थगित कर दोनो सेना रणभूमि पर ही कुछ विश्राम करें, और उत्तर रात्रि मे चन्द्रोदय होने पर फिर लड़ना

चालू हो। इस समय द्रोण कौरव सेनापति थे ; उन्होंने भी अपनी सेना की अवस्था तथा इच्छा देखकर अर्जुन का प्रस्ताव मान्य किया, और उभय सेनाओं ने रणभूमि पर ही विश्राम करना आरंभ किया।

किन्तु, सायंकाल हुवे जयद्रथ वध से अति उद्विग्न दुर्योधन ने शत्रुपक्ष से आया ऐसा विश्राम प्रस्ताव मान्य करने पर द्रोणाचार्य को दोष दिया ; यहां तक कि उसने उनकी ईमानदारी पर भी संशय किया (द्रोण पर्व १८५-२,३,४,८)। दुर्योधन के कटु वचनों से अति व्यथित होकर द्रोणाचार्य ने उत्तर दिया कि, अब इसके बाद (चन्द्रोदय पर पुनः शुरू होने वाली) लड़ाई अंतिम जय होने तक बिना स्थगन के चालू रखूंगा।

निहत्य सर्वपञ्चालान् युद्धे कृत्वा पराक्रम ॥ द्रोणपर्व १८५ - १२
विमोक्ष्ये कवचं राजन् सत्येनायुधमालभे ।.... -१३

"राजन् (दुर्योधन), सत्य की शपथ लेकर तथा अपने धनुष्य को स्पर्श कर मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि, अब लड़ाई में पराक्रम करके समस्त पांचालों का वध करने बाद ही कवच उतारूंगा।"* वैसे तो उसी दिन कुछ समय पूर्व भी जयद्रथ वध के पश्चात उदास दुर्योधन से बोलने में द्रोण ने ऐसा ही विचार व्यक्त किया था (द्रोणपर्व १५१-३४)। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि, वह वचन इतना तीव्र निर्धारयुक्त न होकर,उसमें थकी सेना को कुछ थोडा विश्राम देने हेतु लड़ाई स्थगित करने की गुंजाईश थी। किन्तु अब दुर्योधन के बाग्बाण से अति पीड़ित होकर द्रोणाचार्य ने 'जीतूंगा या मरूंगा' स्वरूप की प्रतिज्ञा की।

इस परिस्थिति में उत्तररात्रि में चन्द्रोदय पर फिर प्रारम्भ हुई लड़ाई चलते चलते अरुणोदय हुआ।

अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरःसरः
अरुणोऽभ्युदयांचक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाम्बरम् ॥ १८६-२.
ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययाना -
न्युत्सृज्य सर्वे कुरुपांडुयोधाः
दिवाकरस्याभिमुखं जपन्तः
संध्यागताः प्रांजलयो बभूवुः ॥ ४.

* यहां 'सर्वपंचालान्' में सम्पूर्ण पाडव पक्ष अभिप्रेत है ; क्योंकि पांचाल राजकुमार धृष्टद्युम्न पांडव सेना का प्रमुख सेनापति था।

ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोण : सोमकपाण्डवान्
अभ्यद्रवत् सपाञ्चालान् दुर्योधनपुरोगमः ॥ ५.

''तदन्तर सूर्य के पहिले दृश्यमान होनेवाले अरुण का उदय हुआ, जिससे चन्द्रप्रकाश क्षीण होकर आकाश में लालिमासा रंग फैल गया -२. उस समय सब कौरव पाण्डव योद्धाओं ने अपने रथ, अश्व तथा मनुष्ययान (पालकी आदि) छोड़कर, सूर्य की दिशा में अभिमुख होते हुए हाथ जोड़कर, जप द्वारा संध्यावन्दन किया -४. फिर द्रोणाचार्य ने अपनी सेना के दो विभाग किये, और दुर्योधन के आगे होकर (उसके देखते हुए) सोमक, पाण्डव तथा पांचालों पर धावा कर दिया -५।''

अरुणोदय के बाद सूर्योदय हुवा, किन्तु दोनों सेना रणभूमि पर ही डटी रही।

ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि
संध्यागतं सहस्त्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ १८७-१
उदिते तु सहस्त्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २.

''महाराज (धृतराष्ट्र), वे सब योद्धा वैसे ही कवच धारण किये हुए रणभूमि पर प्रातः संध्या समय के सहस्त्रांशु सूर्यभगवान की (स्तोत्र द्वारा) प्रार्थना करने लगे—१. तप्तकांचन के समान शोभायमान सूर्यबिंब का पूर्ण उदय हो जाने पर सबदूर प्रकाश छा गया और पुनः युद्ध चालू हो गया —२''। इस रात्रि युद्ध के बाद विश्राम दिवस नही था यह महाकवि ने निम्न श्लोक में फिर स्पष्ट किया है—

ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा
क्षुत्पिपासापरीताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽ भवन् ॥ १८७-६

''वे (योद्धा)रात्रि में लड़ाई कर थक गये थे, और सुबह सूर्य की धूप से एवं भूखप्यास से त्रस्त होकर उनमें से बहुतेरे (लड़ने में) ठीक से सुधबुध भी न रख सके''।

इस प्रकार चौदहवे दिन लड़ाई रात्रि समाप्ति तक चलकर बिना विश्राम के सीधी लड़ाई के पन्द्रहवे दिन में प्रवेश कर गई। और अंततोगत्वा उस दिन द्रोणाचार्य का रणभूमि पर निधन हो गया।

यदि अवकाश दिन पर रणभूमि की सफाई होकर दूसरे रोज फिर लड़ाई होती थी, तो इस पन्द्रहवे दिन के पूर्व विश्राम दिवस न होने पर उस दिन लड़ाई कैसी हुई ? इस संदर्भ में महाकवि विशेष रूप से कहते हैं कि इस रोज '' नासीद् रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं

प्रति''(१८७-२०.'सारी रणभूमि में रथ चलाने को रास्ता नही रहा'); फिर भी कुछ अति बलवान घोडे जैसे तैसे रथ हाकते थे (१८७-२१,२२)। तथा इस दिन मुख्य रूप से विशिष्ट योद्धाओं में वैयक्तिक द्वंद्व युद्ध हुए, जिनका महाकवि ने नामनिर्देश के साथ उल्लेख किया है।

अन्तिम युद्ध दिवस

किन्तु अवकाशदिनों में इस एक अभाव की पूर्ति महाकवि ने अन्य कूट कल्पना से कर दी। लड़ाई का अंतिम अठारहवा दिन लड़ाई के दो अर्ध दिनों मे विभाजित कर उन्होंने कुल युद्धकाल में वे दो अलग दिवस गिने ! उस अठारहवे दिन शल्य, जो उस समय कौरवों का सरसेनापति था, मध्यान्ह में मारा गया। उसके बाद दुर्योधन रण छोडकर भाग जाने से रणभूमि पर लड़ाई बंद हो गई। और आम धारणा है कि ,उसी दिन 'अपराण्ह' में (उस युद्ध का अंत करने वाला) भीम-दुर्योधन गदा युद्ध हुवा। यह धारणा शल्य पर्व के शुरू में आये इन श्लोकों से होती है—

ततः शल्यो महाराज कृत्वा कदनमाहवे
ससैन्योऽथ स मध्यान्हे धर्मराजेन पातितः ॥ शल्य पर्व, १-१०.
ततो दुर्योधनो राजा हतबन्धू रणाजिरात्
अपसृत्य न्हदं घोरं विवेश रिपुजाद् भयात् ॥ ११.
अथापराण्हे तस्यान्हः परिवार्य सुयोधनः
न्हदादाहूय युद्धाय भीमसेनेन पातितः ॥ १२.

''महाराज (जनमेजय) फिर सेनासहित उस युद्ध में भीषण संहार करने बाद शल्य मध्यान्ह समय में धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा मारा गया—१०.तत्पश्चात राजा दुर्योधन , जिसके सारे भाई मारे जा चुके थे , रणांगण से भागकर शत्रु के डर से घोर (द्वैपायन) सरोवर में प्रवेश कर गया—११''। और इस संदर्भ में श्लोक १२ का परम्परा से अर्थ लगाया जाता है कि, उसी दिन के (तस्यान्हः) अपराण्ह प्रहर में (अपराण्हे) पांडवों ने दुर्योधन को घेरकर, तथा युद्ध के लिये उसे सरोवर से बाहर आने का आव्हान देकर, भीम ने उसे (गदायुद्ध में) मार गिराया।

किन्तु, शल्यपर्व में ही बाद में आये विस्तृत वर्णन से स्पष्ट होता है कि, शल्यवध के दिन रात्रि प्रारंभ तक पांडवों को सरोवर में छिपे दुर्योधन का पताही नही लगा था। इस लिये उस दिन 'अपराण्ह प्रहर' में भीम ने उसे मार गिराना संभव ही नही था। उस विस्तृत

वर्णन के अनुसार शल्यवध होने पर स्वयं दुर्योधन रण छोडकर भाग जाने बाद, संजय (जो उस युद्ध मे कौरवों की ओर से लड़ता था) बन्दी बनाया गया। किन्तु महर्षि व्यास स्वयं उपस्थित होकर उनके आदेश से संजय को बंधमुक्त किया गया; किन्तु उसे शस्त्रकवचा दि से रहित किया गया। तदनंतर संजय हस्तिनापुर जाने लगा। उस समय सायान्ह था ऐसा स्पष्ट बताया है। संजय धृतराष्ट्र से कहता है-

अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः
प्रातिष्ठं येन नगरं सायान्हे रुधिरोक्षितः ॥ शल्यपर्व २९- ४१

"फिर उसकी (सात्यकि की) अनुज्ञा से तथा शस्त्र कवचादि से रहित होकर मैं (संजय) सायंकाल के समय हस्तिनापुर नगर की ओर चला ; उस समय मेरे शरीर से रक्त बह रहा था।"

संजय एक कोस चला तब उसको रास्ते में दुर्योधन अकेला मिला। उसे संजय ने उस दिन की लड़ाई के आखिरी क्षणों की जानकारी दी। वह सुनने पर दुर्योधन ने धृतराष्ट्र के लिये संजय को एक संदेश दिया ; और संजय के समक्ष वह पास के ही द्वैपायन सरोवर में प्रवेश कर छिप गया (२९ -५४)। इसके बाद वहां कृप, कृतवर्मा एवं अश्वत्थामा आये। संजय द्वारा उन्हें दुर्योधन छिपने का स्थान मालुम हुआ। किन्तु इतने में दुर्योधन का सब ओर तलाश करते हुए पांडवों को उसी दिशा में आ रहे देखकर, वे तीनों संजय के साथ चुपचाप अपने रथों में कौरव शिबिरों को चले गये। इस समय सूर्यास्त हो गया था। संजय धृतराष्ट्र से कहता है -

तत्र गुल्माः परित्रस्ताः सूर्ये चास्तमिते सति ॥ २९ - ६४
सर्वे विचक्रुशुः श्रुत्वा पुत्राणां तव संक्षयम् । ६५

"इस समय सूर्योस्त हो चुका था, ओर वहां सब पहरेदार आपके पुत्रों का (कौरवों का) संपूर्ण विनाश सुनकर भयभीत हुए जोर जोर से आक्रोश कर रहे थे।"

इधर, सरोवर के पास किसी को न देख थके हुए पांडव भी अपने शिबिरों को विश्राम करने चले गये। इस प्रकार उस दिन सूर्यास्त तक भी विजयी पांडव एवं छिप कर बैठा दुर्योधन आमने सामने नहीं हुए थे।

सरोवर से पाण्डव चले जाने बाद अश्वत्थामा आदि तीनों फिर धीरे धीरे वहां वापिस आये। उन्होंने दुर्योधन को आवाज देकर वे उससे वार्तालाप करने लगे। इसके पूर्व सूर्यास्त हो चुका था। उनका संभाषण चल रहा था तब संयोग से दिन भर के परिश्रम से थके कुछ व्याध वहां पानी पीने आये। रात्रि के अंधेरे में उनका वहां आना अश्वत्थामादि के

ध्यान में नही आया। किन्तु व्याधों ने वह संभाषण सुनकर दुर्योधन का सरोवर में छिपना जान लिया। और धनलोभ से उन्होंने सीधे पाण्डव शिबिरों में जाकर वह समाचार दिया। वह प्राप्त होते ही पाण्डव फिर सरोवर पर आये। उन्हे आते देख अश्वत्थामा आदि वहां से चले गये , और दुर्योधन फिर सरोवर के अंदर छिप गया।

किन्तु इस बार पाण्डवों ने उसे बाहर आने का आव्हान दिया। दुर्योधन ने माया प्रयोग से सरोवर का जल स्तम्भित कर देने से (२९ - ५४), पाण्डव स्वयं उसके पास नहीं पहुंच सकते थे। दुर्योधन सरोवर के भीतर से ही प्रत्युत्तर देता रहा। यह बातचीत काफी देर चलती रही। ओर यहां रहस्य यह है कि, आखिर दुर्योधन बाहर आकर भीम से गदा युद्ध करने खड़ा हुआ तब तक रात्रि समाप्त होकर अगला दिन उदित हो गया था। इसी समय नारद की सूचनानुसार बलराम तीर्थयात्रा समाप्त कर अपने ही दो शिष्य भीम एवं दुर्योधन का गदा युद्ध देखने वहां आये। उस दिन गदा युद्ध करीब आधा दिवस चल कर भीम के प्रहार से दुर्योधन गिर पड़ा। गदा युद्ध का यह अर्धदिवस शव्यवध के दिन अर्ध दिवस की लड़ाई में मिलाकर महाकवि ने खुबी से प्रत्यक्ष लड़ाई के अठारहवे दिन की गिनती पुरी की ; और इस प्रकार इसमे भी एक कूट कर रखा !

इस सारे वृत्तांत से स्पष्ट है कि,शल्यवध के ही रोज अपराण्ह में भीम - दुर्योधन गदायुद्ध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर उसी शल्यवध के प्रथम अध्याय में (ऊपर उद्धृत) श्लोक १२ में गदायुद्ध को "अथापराण्हे तस्यान्हः" कैसा कहा है ? यहां शाब्दिक रहस्य यह है कि, महाभारत कार ने 'अपराण्ह' का यह प्रयोग दिन के अपराण्ह प्रहर के आशय मे न कर 'अपर + अहन् (दूसरा दिन)' यह इस अर्थ में किया है *। अतः इस श्लोक का वास्तविक आशय होता है, 'उस (शल्यवध के) रोज के दूसरे दिन भीम ने दुर्योधन को मार गिराया'। 'मध्यान्ह' का विशेष उल्लेख कर उसके तुरन्त बाद 'अपराण्ह' शब्द का प्रयोग करने से उसके इस द्वितीय असाधारण अर्थ की पाठकों के मन में सहसा कल्पना नहीं आती।

इसी सम्बन्ध में दूसरी एक कूटोक्ति महाभारत के प्रारम्भ में मिलती है । समग्र महायुद्ध का सारांश केवल तीन श्लोकों में बताते हुए महाकवि लिखते हैं -

अहानि युयुधे भीष्मो दशैव परमास्त्रवित्
अहानि पञ्च द्रोणस्तु ररक्ष कुरुवाहिनीम् ॥ आदिपर्व २ - ३०

* महाकवि ने 'अपराण्हे' शब्द का एक कुछ चमत्कारी प्रयोग निम्न श्लोक में भी किया है, "अपराण्हे ऽ पराण्होऽस्य सूतपुत्रस्य मारिष । छिन्नमञ्जलिकेनाजौ सोत्सेधमपतच्छिरः" (कर्णपर्व, ९१ - ६४)

अहनी युयुधे द्वे तु कर्ण: परबलार्दन:
शल्योऽर्धदिवसं चैव गदायुद्धमत: परम् ॥ ३१
तस्यैव दिवसस्यान्ते द्रौणिहार्दिक्यगौतमा:
प्रसुप्तं निशि विश्वस्तं जघ्नुर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ३२

''महास्त्रज्ञाता भीष्म ने दस दिन युद्ध किया; द्रोण ने पाँच दिन कौरव सेना का आधिपत्य किया-३०. शत्रुदमन कर्ण ने दो दिन युद्ध किया; तथा शल्य ने आधा दिन; तदन्तर गदायुद्ध हुवा-३१. उसी दिन के अन्त में अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा ने विजय के विश्वास में सोती हुई (शेष) पांडव सेना की कत्तल कर डाली-३२.'' इन श्लोकों के सूक्ष्म अध्ययन से दिखेगा कि, यहां इतना ही कहा है कि, शल्य ने (कौरवों के प्रमुख सेनापति के रूप में) अर्ध दिवस की लड़ाई के 'बाद' गदायुद्ध हुवा; यह नही कहा है कि ये दोनो घटना शब्दश: एक ही दिन हुई। आगे वे अवश्य कहते हैं कि गदायुद्ध हुवा उसी रोज अश्वत्थामा द्वारा रात्रि में कत्तल हुई; जो ठीक ही है। फिर भी महाकवि ने ये तीनों घटना इतनी खूबी से लगातार एक के बाद एक कही है कि, वे तीनों एक ही तिथि पर होने का भ्रम निर्माण हो जाता है।

एक पंक्ति,जो प्रक्षिप्त नहीं

इस भ्रम का विद्वानों पर भी कितना प्रभाव है इसका एक उदाहरण देखिये। कुरुक्षेत्र पर युद्ध हो रहा था उन दिनों में बलराम ने सरस्वती के किनारे पर की तीर्थ यात्रा का विस्तृत वर्णन शल्यपर्व में आया है। इस यात्रा के अंतिम चरण में बलराम वृद्धकन्या तीर्थ नाम के स्थान पर पहुचे थे, तब उन्होंने शल्यवध का समाचार सुना।

तत्रस्थश्चापि शुश्राव हतं शल्यं हलायुध: ॥ शल्य पर्व ५२-२६.
तत्रापि दत्वा दानानि द्विजातिभ्य: परंतप:
शुश्राव शल्यं संग्रामे निहतं पाण्डवैस्तदा ॥ -२७.
समन्तपञ्चकद्वारात् ततो निष्क्रम्य माधव:
पप्रच्छर्षिगणान् राम: कुरुक्षेत्रस्य यत्फलम् ॥ -२८.

''वहीं पर बलराम ने शल्यवध का समाचार सुना-२६. वहाँ भी शत्रुहन्ता बलराम ने द्विजों को दान दिये और सुना कि युद्ध में पांडवों द्वारा शल्य मारा गया -२७. वहाँ से 'समंतपंचक द्वार' से निकलकर (कुरुक्षेत्र में प्रवेश करते हुए) बलराम ने ऋषियों से कुरुक्षेत्र (में निवास) का पुण्यफल पूछा -२८..'' यह बात शल्यवध के दिन अपराण्ह या सायान्ह की

होनी चाहिये। इसमें समंतपंचक एवं कुरुक्षेत्र का विशेष उल्लेख दर्शाता है कि, इस समय बलराम रणक्षेत्र के पास से जा रहे थे। वहां से बलराम तुरन्त विष्णु आश्रम, प्लक्ष प्रस्रवण एवं आगे कारपवन तीर्थ को गये। कारपवन पर उन्होने एक रात्रि व्यतीत की —

सम्प्राप्त: कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम्
हलायुधस्तत्र चापि दत्वा दानं महाबल: ॥ शल्य पर्व, ५४-१२.
तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणै: सह
मित्रावरुणयो: पुण्यं जगामाश्रमच्युत: ॥ -१४.

''कारपवन के श्रेष्ठ तीर्थस्थान को पहुंचकर महाबली बलराम ने वहाँ भी दान देकर -१२, वहां एक रात्रि व्यतीत कर, बलराम ब्राह्मण तथा मुनियों के साथ मित्रावरुण के पावन आश्रम गये-१४।''

बलराम ने (शल्यवध की वार्ता श्रवण करने बाद) इस स्थान पर एक रात्रि मुक्काम करने का यह स्पष्ट उल्लेख अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसी रात्रि के पश्चात बलराम कारपवन से मित्रावरुण तीर्थ गये, जहाँ यमुना में स्नान कर वे ऋषियों से धार्मिक कथा संवाद कर रहे थे, तब नारदमुनि ने वहां आकर भीम-दुर्योधन गदायुद्ध देखने चलने के लिये उन्हें प्रेरित किया, जो उस समय शुरू होने में ही था। इसपर बलराम अपनी तीर्थयात्रा समाप्त कर गदायुद्ध स्थान पर पहुंचे; और तत्पश्चात उस सुबह के समय उनकी उपस्थिति में गदायुद्ध प्रारम्भ हुवा। इस प्रकार इस वर्णन के अनुसार भी शल्यवध और गदायुद्ध के बीच एक रात्रि गई थी । अर्थात शल्यवध के दूसरे रोज ('अपर अण्हे') गदायुद्ध हुआ। फिर भी वे दोनों घटना एक ही रोज होने की भ्रामक धारणा से ग्रस्त होकर, तथा शल्यवध की वार्ता सुनने के पश्चात बलराम ने कारपवन में एक रात्रि बिताने के उल्लेख की उस धारणा से विसंगति देख, उस उल्लेख की उपरोक्त पंक्ति (श्लोक १४ पूर्वार्ध) पुणे की भांडारकर अनुसन्धान संस्था द्वारा प्रक्षित मानी गयी हैं। परन्तु ऊपर का सब विवेचन सिद्ध करता है कि, वह पंक्ति मूल महाभारत की ही होनी चाहिये। यहाँ बताना इष्ट होगा कि, तीर्थयात्रा के उस वर्णन में चमसोद्भेद, सप्तसारस्वत, तथा तैजस आदि अन्य भी कुछ स्थानों पर एक एक रात्रि बिताने का कहा है।

शल्यवध एवं गदायुद्ध इनके बीच एक दिन का यह अंतर अभ्यासकों के ध्यान में आता, तो विश्राम दिवस अलग रखकर भी युद्धकाल की कुल तिथियाँ वे अठारह के बजाय उन्नीस गिन सकते थे। किन्तु वस्तुत: महाभारतकार ने कुरुक्षेत्र पर हुवे महायुद्ध मे प्रत्यक्ष लड़ाई के दिवस $१७\frac{१}{२} + \frac{१}{२} = १८$ गिने होकर, बीच के विश्राम दिवस मिलाकर युद्धकाल के कुल दिनों की (एवं तिथियों की) संख्या ३५ है। तदनुसार ब्यौरेवार तालिका आगे (प्रकरण १५) दी है। ❑

प्रकरण ८

युद्धकालीन तिथियाँ

बलराम यात्रा के बयालीस दिन

इस सारे स्पष्टीकरण से महाभारत युद्ध कालगणना के अनेक कूट हल हो जाते हैं। महाभारत में युद्ध दिन अठारह बताये हैं; किन्तु वे प्रत्यक्ष लड़ाई के दिन हैं। युद्धकाल की पूरी गणना करने उनमें प्रत्यक्ष लड़ाई के हर दिन बाद एक अवकाश दिन जोडना आवश्यक है। इस प्रकार सत्रह अवकाश दिन होगें। यद्यपि पूर्व प्रकरण में स्पष्ट किये अनुसार एक अवकाश दिन कम था, फिर भी प्रत्यक्ष लड़ाई के अंतिम दिन का विभाजन दो दिनों में करने से पूरा युद्धकाल फिर पैंतीस दिन का होता है।

इस गणना से अब बलराम यात्रा के दिनों का कूट पूरा हल हो जाता है। उस यात्रा का आरंभ उपप्लव्य से युद्धारंभ के सात दिन पूर्व हुवा था। उन सात दिनों में युद्धकाल के पैंतीस दिन जोडने पर, यात्रा समाप्ति गदायुद्ध के समय बलराम के वचनानुसार बराबर बयालीस वे दिन पर होती है। उस श्लोक में बताये नक्षत्रों का हिसाब भी बिलकुल ठीक बैठता है। (सताईस नक्षत्रों का एक चक्कर पूर्ण कर) श्रवण पुष्य से ठीक बयालीस वे स्थान पर होकर, चन्द्र प्रति दिन औसतन एक नक्षत्र पार करता है।

गीता जयंती की वास्तविक तिथि

इस प्रकार युद्धारंभ की, अर्थात गीता जयंती की, वास्तविक तिथि स्वयं श्रीकृष्ण के वचनानुसार उक्त अमावास्या है। श्रीकृष्ण ने कर्ण से उस तिथिपर युद्ध आरंभ करने का आव्हान दिया था ; फिर भी नीलकंठ (एवं अन्य कुछ भाष्यकार) ''संग्रामो युज्यताम् तस्याम्'' इन शब्दों का अर्थ उस दिन युद्ध की तयारी प्रारंभ करो ऐसा करते हैं। किन्तु युद्ध की तयारी उसके पूर्व दोनो सेना कुरुक्षेत्र पहुंची तभी शुरू हो गई थी, और उस अमावास्या को प्रत्यक्ष लड़ाई आरंभ करनी थी — और अब स्पष्ट हुए अनुसार वह वस्तुतः हुई भी। उस आधार पर, तथा बीच के विश्राम दिवस गिनकर, प्रत्यक्ष लड़ाई का चौदहवा दिन युद्धकाल का सत्ताईसवा दिन होता है ; अमावास्या से आरंभ कर उसकी तिथि कृष्ण एकादशी होकर उस तिथि को उत्तररात्रि में चन्द्रोदय हुवा। इस प्रकार वह कूट भी हल हो

जाता है। उस चन्द्रोदय का निम्न मार्मिक वर्णन महाभारत के मूल रचयिता का ही होकर, बाद में किसीने उसमें डाला हुवा नही।

ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता ॥ द्रोणपर्व, १८४-४६.
दशशताक्षककुब्दरिनिःसृतः
किरणकेसरिभासुरपिंजरः
तिमिरवारणयूथविदारणः
समुदियादुदयाचलकेसरी ॥ - ४७
हरवृषोत्तमगात्रसमद्युतिः
स्मरशरासनपूर्णसमप्रभः
नववधूस्मितचारुमनोहरः
प्रविसृतः कुमुदाकरबांधवः ॥ - ४८.
ततो मुहूर्ताद् भगवान् पुरस्ताच्छशलक्षणः
अरुणं दर्शयामास ग्रसन् ज्योतिःप्रभाः प्रभुः ॥ - ४९.
अरुणस्य तु तस्यानु जातरूपसमप्रभम्
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमवासृजत् ॥ - ५०.
उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः
पर्यगच्छञ्शनैः सर्वा दिशः खं च क्षितिं तथा ॥ - ५१.
ततो मुहूर्ताद् भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवत्
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा ॥ - ५२.
ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशाम्पते ।..... - ५६.

''उसके बाद नेत्रों को सुखदायक, श्वेतकमल के नाथ, कामिनियों के कपोलसदृश पांडुवर्ण चन्द्रमा ने (इन्द्र की) पूर्व दिशा सुशोभित की - ४६. गुहा के भीतर से प्रगट होनवाले सिह के समान, चन्द्रबिंब पूर्व दिशा (जिसका स्वामी सहस्राक्ष इन्द्र है) से बाहर आकर उदयांचल पर दृश्यमान हुवा; सिंह की अयाल के लंबे बालों के सदृश अपने पिंगल वर्ण किरण प्रसारित करते हुए चन्द्रमा ने अंधकार, सिंह (काले) हाथीयों के समूह को विदीर्ण कर डालता है, उस प्रकार नष्ट कर दिया - ४७.श्री शंकर के वृषभोत्तम नंदी के (श्वेत) शरीर

समान कांतिमय, कामदेव के (सफेद) पुष्पधनुष्य सदृश प्रभा से पूर्णत: संपन्न, नववधु के स्मित समान मनोहर , तथा (चन्द्रोदय के साथ खिलने वाले) श्वेत कमलों के समूह का (या श्वेत कमल युक्त सरोवर का) प्रियमित्र , चन्द्र धीरे धीरे सब दिशाओं में प्रकाश प्रसारित करने लगा -४८.करीब एक मुहूर्त पश्चात शशलक्षण (खरगोश समान चिन्ह धारण करने वाले)भगवान चन्द्र अपना अरुण (सौम्य) प्रकाश प्रदर्शित करने लगे, जिससे नक्षत्रप्रभा फीकी पड़ गई -४९. अरुण कान्ति के पश्चात चन्द्रमा ने धीरे धीरे स्वर्णप्रभा समान अपने किरणों का विशाल जाल बिछा दिया - ५०. चन्द्रकिरणें अपने प्रकाश से अंधकार को हटाती हुई धीरे धीरे सब दिशा , भूतल तथा आकाश भी व्यापने लगी- ५१. फिर कुछ ही क्षणों में समस्त भूभाग ज्योतिर्मयसा हो गया, तथा अंधकार शीघ्र पूर्णतया नष्ट हो गया - ५२. राजन् (धृतराष्ट्र) तदनंतर युद्ध फिर प्रारंभ हो गया - ५६'' ।

यह स्पष्टतया पूर्व दिशा में हुए प्रत्यक्ष चन्द्रोदय का ही वर्णन है, जो महाभारत युद्ध की गूढ़ कालगणना से पूर्णत: सुसंगत है। वह केवल मेघावरण से मुक्त होने वाले चन्द्रबिंब का वर्णन नहीं है, जैसा कि कुछ भाष्यकार समझते हैं।

भीष्मनिधन की वास्तविक तिथि

इसी प्रकार भीष्मनिधन तिथि के कूट का भी सरल हल प्रस्तुत है। उक्त अमावास्या को युद्धारंभ होकर, प्रत्यक्ष लड़ाई का दसवा (बीच के विश्राम दिवस मिलाकर युद्ध का उन्नीसवा) दिन आगामी कृष्ण तृतीया पर आता है । उस दिन शाम के समय भीष्म का रणभूमि पर पतन हुआ । और तभी से उनकी भयानक शरशय्या प्रारंभ हुई । उस कृष्ण तृतीया (की शाम)से हम ठीक अट्ठावन रात्रि गिने -

१३ रात्रि, उस कृष्ण पक्ष की शेष
१५ रात्रि, अगले शुक्ल पक्ष की (पौष मास)
१५ रात्रि, अगले कृष्ण पक्ष की
१५ रात्रि, अगले शुक्ल पक्ष की (माघ मास)
५८

अब इस गणना से हम माघ शुक्ल पूर्णिमा की रात्रि के समाप्ति समय पर पहुंचते है । यही उष:काल का समय था, जब महात्मा भीष्म ने प्राणत्याग किया । उस समय महाभारत में कहे अनुसार महिना माघ एवं पक्ष शुक्ल था । अब रहा सवाल महाकवि द्वारा प्रयुक्त

'त्रिभागशेष' शब्द का। उसका वास्तविक आशय यह है कि, उस समय उस शुक्ल पक्ष के (अर्थात अंतिम तिथि पूर्णिमा की समाप्ति को) तीन 'मुहूर्त' शेष थे। यहां 'भाग' का अर्थ मुहूर्त है, जो एक दिन में तीस होते हैं।

यहाँ 'त्रिभाग' का अर्थ उस शुक्ल पक्ष का, या उस माघ मास का, गणितीय अनुपात से तीन चौथाई अंश ऐसा नहीं है। महाकवि के इस एक 'त्रिभागशेष' शब्दमात्र से ('अपराण्हे' के समान) सदियों तक अभ्यासकों के मन में जो भ्रम निर्माण कर दिया वह देखकर मन दंग रह जाता है ! *

अब यह स्पष्ट होगा कि महाभारत के कुछ प्रतियों में शांतिपर्व अध्याय ४७ श्लोक २ के बाद दी गई ये दो पंक्तियाँ अनधिकृत (इन्टरपोलेशन) होना चाहिये । ''शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव । प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे '' । इसमें माघ शुक्ल अष्टमी के मध्यान्ह काल का उल्लेख होकर, वह भीष्म निधन का समय है ऐसा अर्थ किया जाता है । किन्तु महाभारत में दिये सब कालगणनात्मक (एवं ज्योतिषात्मक) संकेत इसके विरुद्ध जाते हैं। और यदि भीष्म निधन मध्यान्ह में होता, तो वे शरशय्या का कुल समय 'अट्ठावन रात्रि' न गिनते, उसमें आधा अहन् जोडते (या कम करते)। किन्तु ऊपर बताये अनुसार वह समय बराबर 'अट्ठावन रात्रि 'था। गीता प्रेस आवृत्ती में उक्त पंक्तियों को कोई क्रमांक नही दिया है ; तथा उस अध्याय में अन्य भी ऐसी कई क्रमांकहीन पंक्तियाँ है।❑

---

* 'भाग' शब्द का मुहूर्त के अर्थ में उपयोग महाकवि ने द्रोणपर्व' १८६ - १, १९१ - ९ में भी किया है।

❑ वस्तुत: शांतिपर्व का यह अध्याय भीष्म का प्रत्यक्ष निधन कथन करने न होकर, उन्होंने प्राणत्याग के लिये जो उत्तरायण प्रारंभ की घडी निश्चित की थी उसका, कुछ दिन पूर्व माघ शुक्ल दशमी को, खयाल करते हुए , भीष्म ने परम भक्ति भाव से परमात्मा श्रीकृष्ण में अपना चित्त केन्द्रित कर किये ध्यान का इस अध्याय में वर्णन है। इस समय स्वयं श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में पांडवों के साथ थे। वहीं से उन्होंने वह ध्यान स्वीकार कर अपने योगसामर्थ्य से भीष्म को दिव्य ज्ञान प्रदान किया (श्लोक १०२) (उसी के आधार पर भीष्म ने मृत्युपूर्व पाच दिन युधिष्ठिर को महान शरशय्योपदेश दिया)। इसी समय भीष्म को प्रत्यक्ष मिलने श्रीकृष्ण पांडवों के साथ हस्तिनापुर से निकले ; वह अध्याय ४८ एवं ४९ में बताया होकर , वे भीष्म के पास पहुचे यह अध्याय ५० के श्लोक ५ में कहा है।

एक और स्पष्टीकरण। आपत्ति उठाई जा सकती है कि, अट्ठावनवी रात्रि पूर्णिमा की ही रात्रि होने से वह समाप्त होते ही शुक्ल पक्ष भी समाप्त हो जायगा ; और इसलिये यदि भीष्मनिधन शुक्ल पक्ष में ही हुआ था तो अट्ठावनवी रात्रि उस समय समाप्त नहीं हुई थी , या फिर वह निधन कृष्ण पक्ष में हुवा समझना चाहिये। किन्तु महाभारत में यहां 'रात्रि' शब्द का प्रयोग किया गया है। शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार 'निशा' में सूर्यास्त से सूर्योदय तक का पूरा समय आता है ; किन्तु 'रात्रि' में दोनों ही संध्याकाल समाविष्ट नहीं होते। इस प्रकार महाकवि का कथन बिलकुल ठीक ही है कि, भीष्मनिधन के समय अट्ठावन 'रात्रियाँ' हो चुकी थी , किन्तु फिर भी शुक्ल पक्ष ही था ; क्यों कि वह घटना कृष्ण पक्ष के प्रथम सूर्योदय से पूर्व उष: काल में हुई थी। महाभारत में अन्यत्र भी 'रात्रि' एवं 'निशा' शब्दों का इसी सूक्ष्म अर्थ में उपयोग है। और अब 'रात्रि' का यह सूक्ष्म आशय ध्यान में लेने से, महाकवि ने भीष्म के मृत्युसमय वचन में उस शुक्ल पक्ष के संबंध में 'भवति' ऐसा सीधा न कहकर, 'भवितुम् अर्हति' ऐसा क्यों लिखा यह भी स्पष्ट होगा। पूर्णिमा की 'रात्रि' समाप्त होने पर भी , कृष्ण पक्ष का प्रारम्भ न होने से , उस समय शुक्ल पक्ष ही 'मानना उचित होगा' इस आशय का भीष्म का वह मार्मिक वचन है।

तिथियों के कुछ संकेत

महाभारत युद्ध के अवकाश दिन (एवं अन्य भी कुछ रहस्यपूर्ण संकेत) ध्यान में लेने से महाकवि ने निश्चित संख्याओं में निर्दिष्ट दिनगणना का तालमेल इस प्रकार बराबर सुसंगत होता है। इसके कुछ सूक्ष्म प्रमाण यहां प्रस्तुत हैं।

इस संबंध में महाभारत युद्ध तिथियों की तीन भिन्न गणना प्रस्तुत है। पहली गणना मे अमावास्या को युद्धारंभ होकर लड़ाई आखिर तक (ऊपर बताये अनुसार एक अपवाद छोडकर) एक एक विश्राम दिन लेकर चली। दूसरी गणना में युद्धारंभ अमावास्या को है, किन्तु लड़ाई लगातार प्रतिदिन चली। तीसरी गणना में युद्धारंभ मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को होकर लड़ाई प्रतिदिन हुई। इन तीन गणनाओं के अनुसार प्रत्यक्ष लड़ाई के दिवस क्रमश: निम्न तिथियों पर आते हैं—

लड़ाई का दिन		प्रथम गणना	द्वितीय गणना	तृतीय गणना
१.	(गीता जयंती)	अमावास्या	अमावास्या	शुक्ल एकादशी
२.		शुक्ल द्वितीया	शुक्ल प्रतिपदा	शुक्ल द्वादशी
३.		शुक्ल चतुर्थी	शुक्ल द्वितीया	शुक्ल त्रयोदशी
४.		शुक्ल षष्ठी	शुक्ल तृतीया	शुक्ल चतुर्दशी
५.		शुक्ल अष्टमी	शुक्ल चतुर्थी	पूर्णिमा
६.		शुक्ल दशमी	शुक्ल पंचमी	कृष्ण प्रतिपदा
७.		शुक्ल द्वादशी	शुक्ल षष्ठी	कृष्ण द्वितीया
८.		शुक्ल चतुर्दशी	शुक्ल सप्तमी	कृष्ण तृतीया
९.		कृष्ण प्रतिपदा	शुक्ल अष्टमी	कृष्ण चतुर्थी
१०.	(भीष्म पतन)	कृष्ण तृतीया	शुक्ल नवमी	कृष्ण पंचमी
११.		कृष्ण पंचमी	शुक्ल दशमी	कृष्ण षष्ठी
१२.		कृष्ण सप्तमी	शुक्ल एकादशी	कृष्ण सप्तमी
१३.	(अभिमन्यु वध)	कृष्ण नवमी	शुक्ल द्वादशी	कृष्ण अष्टमी
१४.	(जयद्रथ वध)	कृष्ण एकादशी	शुक्ल त्रयोदशी	कृष्ण नवमी
१५.	(द्रोण वध)	कृष्ण द्वादशी	शुक्ल चतुर्दशी	कृष्ण दशमी
१६.		कृष्ण चतुर्दशी	पूर्णिमा	कृष्ण एकादशी
१७.	(कर्णवध)	शुक्ल प्रतिपदा	कृष्ण प्रतिपदा	कृष्ण द्वादशी
१७ $\frac{१}{२}$	(शल्यवध)	शुक्ल तृतीया	कृष्ण द्वितीया	कृष्ण त्रयोदशी
१८.	(गदायुद्ध)	शुक्ल चतुर्थी		

अब विशेष बात यह है कि महाभारत के रचयिता ने लड़ाई के प्रत्येक दिन का विस्तृत वर्णन दिया है, जिसमें कुछ विशिष्ट दिनों को सूर्यास्त होते ही सर्वत्र अधंकार छा जाने का कहा है। कुछ दिनों में सूर्योस्त के साथ लड़ाई स्थगित हुई। किन्तु कुछ दिनों पर

सूर्यास्त के बाद भी चालू रही; इसमें सूर्यास्त बाद चन्द्रप्रकाश का संकेत मिलता है। केवल प्रत्यक्ष लडाई के चौदहवे रोज सूर्यास्त पश्चात संपूर्ण अंधकार होने पर भी मध्यरात्रि तक मशालों के प्रकाश में लडाई चलने का वर्णन है। इस संदर्भ में तीनों तिथि गणनाओं का परीक्षण करने पर , मात्र प्रथम गणना सब संकेतो से सुसंगत सिद्ध होती है। अन्य दोनों का कुछ ही संकेतों से समन्वय होकर शेष संकेतों से उनका खंडन हो जाता है।

युद्धारंभ के रोज सूर्यास्त होतेही लड़ाई स्थगित हो गई।

ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वश :
प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किंचन ॥ भीष्म पर्व ४९ - ५२

"तब सेनाएँ अति त्रस्त होकर बिखर गई तथा सूर्यास्त होने पर कुछ भी जाना नहीं जा सका"। सूर्यास्त होते ही ऐसा अंधकार उस दिन शुक्ल एकादशी होने का पूर्ण खंडन कर अमावास्या की पुष्टि करता है।

इसके बाद प्रत्यक्ष लडाई के दूसरे, तीसरे, चौथे तथा पांचवे दिन भी लड़ना सूर्यास्त बाद बंद हो गया ; किन्तु अंधकार का वैसा संकेत नहीं है। अर्थात चन्द्रप्रकाश होगा, किन्तु इतना फीका कि सूर्यास्त बाद थोडे समय बाद भी लड़ाई नहीं चलाई गयी। प्रथम तालिका कि तिथियां इससे सुसंगत है। छठे दिन सूर्यास्त के बाद अंधकार का उल्लेख नहीं है, किन्तु सूर्यास्त बाद लड़ाई कुछ समय ओर चलने का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है।

अन्योन्यागस्कृतां राजन् यमराजविवर्धनम् ।
मुहूर्तास्तमिते सूर्ये चक्रर्युद्धं सुदारुणम् ॥ भीष्म पर्व ७९ - ६०

"राजन् (धृतराष्ट्र), सूर्यास्त होने के बाद एक मुहूर्त तक (योद्धाओं ने) एक दूसरे पर भीषण प्रहार करते हुए यमलोक की वृद्धी करने वाला महाभयंकर युद्ध किया। " यह शुक्ल दशमी का समर्थन तथा तृतीय गणना की कृष्ण प्रतिपदा का खंडन करता है। सातवे दिन भी सूर्यास्त के बाद लड़ाई कुछ समय चालू रही ऐसा कहा है, और वह अंधकार के संकेत बिना। यह भी पुनः प्रथम गणना का समर्थन करता हुआ तृतीय तालिका का खंडन करता है।

इसके बाद हम प्रत्यक्ष लड़ाई के आठवे दिन की और आते हैं। उस दिन भी सूर्यास्त बाद लड़ना चालू रहा। इस दिन के सूर्यास्त का उल्लेख इस श्लोक में है —

एवं तब बलं सर्वं हेडिम्बेन दुरात्मना
सूर्यास्तमनवेलायां प्रभग्नं विद्रुतं दिशः ॥ भीष्म पर्व , ९४-५०.

इसका आशय यह कि, सूर्यास्त के समय (हिडिंबापुत्र) घटोत्कच के भयानक पराक्रम से कौरव सेना त्राहि भगवान करने लगी। इसके बाद सेनापती भीष्म ने भगदत्त को घटोत्कच के प्रतीकारार्थ भेजा। इस पर पुनः भयानक संग्राम छिड़ गया (अध्याय ९५)। और इस तरह लड़ाई चल रही थी (९६-७८), तब 'रात्रि' समय प्राप्त हुआ।

रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान्
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥ भीष्म पर्व ९६-७९
..... न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरं तदा ॥ ८०

"इस दशा में रात्रिकाल प्राप्त हुवा और हमें (बाण आदि साम्रगी लेकर) पीछे चलने वाले सेवक बराबर दिखने में कठिनाई आने लगी। उस समय कौरव पांडवों ने अपनी अपनी सेना को वापिस लौटाया। और वे शिबिरों में पहुंचकर यथासमय विश्राम करने लगे।" ऊपर बताये अनुसार 'निशा' सूर्यास्त से तो 'रात्रि' कुछ समय बाद आरंभ होती है। अंधकार का उल्लेख न करते सूर्यास्त बाद कुछ समय लड़ना चालू रहने का वर्णन स्वच्छ चन्द्रप्रकाश दर्शाता हुवा प्रथम गणना की शुक्ल चतुर्दशी का समर्थन करता है।

किन्तु फिर संजय (जो कौरवों की और से लड़ता था) "नापश्याम ततो ऽ उनुगान्" (हमारे पीछे चलने वाले अनुचर सेवक ठीक से नही दीखने लगे) ऐसा क्यों कहता है ? उस युद्ध में कौरवों ने रणभूमि का पश्चिम भाग व्याप्त किया था, और इस कारण लड़ते समय उनकी सेना का मुह पूर्व दिशा की और होता था (देखिये प्रकरण १७)। अतः शुक्ल चतुर्दशी के उस रात्रि प्रारंभ समय कौरव सेना पर सामने से स्वच्छ चन्द्रप्रकाश गिरकर, उनकी छाया पीछे अनुचरों पर गिर रही थी, जिससे वे ठीक से न दीखने लगे। वह छाया भी एक दो व्यक्तियों की नही , अपितु हाथी, रथ इत्यादि से युक्त विशाल सेना की। फिर , 'रात्रि' पूर्व समय में अस्तंगत सूर्य का संधि प्रकाश पश्चिम से आता रहा, किन्तु 'रात्रि' प्रारंभ बाद वह भी बंद हो गया ; और उधर चन्द्र का करीब करीब पूर्ण बिंब पूर्वाकाश में और ऊपर चढकर, पश्चिम में गिरने वाली छाया अधिक गहरी हो गई।

इसके विपरीत जहां चन्द्रप्रकाश रहित अंधकार सूचित करना हो , वहां महाभारत में कहा है कि, उस समय किसी को आगे या पीछे कुछ नही दीख रहा था। इस संदर्भ में लड़ाई के प्रथम तथा ग्यारहवे दिन के सूर्यास्त दृश्य का वर्णन देख लिया जावे। और चौदहवे दिन के पूर्वरात्रि समय का भी यह वर्णन है —

.....तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ॥ द्रोणपर्व १५४-२२.

''सब ओर अंधकार व्याप्त होकर किसी को कुछ भी पहचान में नही आ रहा था''। इसी प्रकार लड़ाई के सोलहवे दिन (वद्य चतुर्दशी को) -

....गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥ कर्णपर्व, ३०-३७.
तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः
न किंचित् प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ -३८.

''सूर्य का अस्त हो गया , तथा सर्वत्र अंधकार और उसमें भी विशेष रूप से धूल व्याप्त होकर हमें शुभाशुभ (स्वपक्षीय या शत्रू) कुछ भी समझ में नही आ रहा था।'' लड़ाई के आठवे रोज ऐसी स्थिति नही थी।

श्लोक ९६-७९ में '' नापश्याम ततोऽनुगान्'' के स्थानपर भांडारकर संस्था एवं कुछ अन्य ''नापश्याम ततो रणम्'' पाठ देते हैं। उसमें भी 'रणम्' का अर्थ यहां रणभूमि के बजाय प्रत्यक्ष लड़ाई ऐसा हो सकता है (महाकवि ने उस शब्द का ऐसा प्रयोग भीष्मपर्व ९८-२३ में किया है)। इस प्रकार उस वचन का अर्थ होगा, '' तदनंतर हमने लड़ाई चलते नही देखी, अर्थात लडना स्थगित हो गया''।

नौवे दिन प्रथम गणना से वद्य पक्ष की प्रतिपदा थी। उस दिन सूर्यास्त बाद का दृश्य विशेष 'घोर' प्रतीत हो रहा था ऐसा दो बार उल्लेख है -

युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते
संध्या समभवत् घोरा नापश्याम ततो रणम् ॥ भीष्म पर्व, १०७-१
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे पांडवा वृष्णिभिः सह
सृञ्जयाश्च दुराधर्षा मंत्राय समुपाविशन् ॥ १०.

'' इस प्रकार दोनों सेना युद्ध करते करते सूर्यास्त होकर संध्यासमय घोर (बड़ा भयानक) प्रतीत होने लगा, और हमने उसके बाद लड़ाई चालू नही देखी (लड़ना स्थगित हो गया) ।. उस घोर रात्रिप्रारंभ काल में वृष्णियों सहित पांडव तथा शूर सृंजय गुप्त मंत्रणार्थ एकत्र बैठे -१०''। उस वद्य प्रतिपदा को सूर्यास्त बाद का समय चन्द्र प्रकाश के अभाव में रणभूमि पर विशेष भीषण प्रतीत हो रहा था। महाभारत में चन्द्रप्रकाश युक्त सायंकाल के वर्णन को 'घोर' कहा नही दीखता है।

प्रत्यक्ष लड़ाई के दसवे दिन की (प्रथम गणनानुसार) वद्य तृतीया की एक स्पष्ट पुष्टि देखिये। महाकवि कहते हैं कि , उस दिन सुबह सूर्योदय पश्चात ''अवाक् शिराश्च भगवान् उपातिष्ठत चन्द्रमा :'' (भीष्म पर्व ११२-१२) ('भगवान चन्द्रमा आकाश में

नीचे सिर किया दृश्यमान था')। पश्चिम क्षितिज में नीचे की ओर जानेवाले चन्द्रबिंब का यह दृश्य (स्वच्छ आकाश में) किसी भी वद्य तृतीया को सूर्योदय समय देखा जा सकता है। द्वितीय गणना की शुक्ल नवमी को वह संभव नही।

लड़ाई के ग्यारहवे रोज प्रथम गणना के अनुसार वध पंचमी होकर, महाभारत मे कहे अनुसार उस दिन सूर्यास्त होते ही सब ओर अंधकार छा गया —

सूर्ये चास्तमनुप्राप्ते तमसा चाभिसंवृते
नाज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन ॥ द्रोण पर्व, १६-४९.

''सूर्यास्त होने पर सब ओर अंधकार व्याप्त होकर न शत्रु न मित्र भी ठीक पहचान मे आने लगा''।

इसके बाद लड़ाई का चौदहवा दिन देखिये। इसकी रात्रि की चर्चा ऊपर काफी हो चुकी है। इस रोज सूर्यास्त होते ही सब ओर अंधकार हो गया ; फिर भी मशालें जलाकर मध्यरात्रि तक लड़ाई चली। उस रात्रि में ऐसा अंधकार और बाद में उत्तर रात्रि में चन्द्रोदय द्वितीय गणना का खंडन कर प्रथम गणना की संपूर्ण पुष्टि करता है, यह दोहराने की क्या आवश्यकता ?

धर्मयुद्ध के नियम

सूर्यास्त बाद लड़ना चालू रहने के महाभारत में ऐसे कई उल्लेख होते हुए भी, यह धारणा प्रसृत हो गई है कि, उस युद्ध मे हर रोज सूर्यास्त पर लड़ना स्थगित होता था। किन्तु न वैसा वस्तुतः प्रतिदिन हुवा, और न हि कौरव पांडवों का वैसा युद्धनियम था। उभय पक्षों ने उस युद्ध के लिये कुछ नियम मान्य किये थे, किन्तु महाकवि ने वे कथन करने में भी संदिग्ध शब्दों का प्रयोग किया है।

....ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपांडवसोमकाः ॥ भीष्मपर्व, १-२६.
धर्मान् संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ
निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात्प्रीतिर्नः परस्परम् ॥ -२७.
वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम्
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यात् न हन्तव्याः कदाचन ॥ -२८.

''तदुपरान्त कौरव, पांडव तथा सोमक वीरों ने उस युद्ध में लड़ाई नियमित करने हेतु कुछ नियम बनाये। युद्ध के दरम्यान प्रत्यक्ष लड़ाई से निवृत्त होने के (लड़ाई स्थगित होने के) समय में हम एक दूसरे से सौहार्द पूर्ण बर्ताव करें (धोखे से हमला नही करें)। लड़ाई के

दरम्यान शब्दों का जवाब शब्दों से ही दिया जावे ; रणभूमि छोडकर भागनेवालों की कदापि हत्या न की जावे'' । यहां केवल ''निवृत्ते विहिते युद्धे'' (युद्ध के दरम्यान प्रत्यक्ष लड़ाई से निवृत्त होने के समय में) इतनाही कहा है ; फिर भी कई भाषांतर कार उसमें अपनीही ओर से 'सूर्यास्त के बाद' 'रात्रि समय मे' आदि जोड देते हैं *। किन्तु जैसा कि अब स्पष्ट होगा महाकवि ने अपने उन शब्दों मे युद्धकाल के बीच आनेवाले अवकाश दिन भी खूबी से अन्तर्भूत कर लिये है ; और यह नही कहा है कि प्रतिदिन लड़ाई का स्थगन ठीक सूर्यास्त पर ही होना था।

अब इन सब तथ्यों के आधार पर उस महायुद्ध की संपूर्ण सुसंगत दिन तालिका प्रकरण १५ मे दी है। उसमें युद्धकालीन घटनाओं के अलावा युद्ध समाप्ति बाद पांडवों ने नदी तट पर बिताया शौचपालन का एक मास भी बराबर बताया है। जो उसे कम कर केवल बारह दिन गिनते हैं वे तर्क देते हैं कि, शौचपालन मास के प्रथम अठारह दिन युद्ध के अठारह दिनों में ही गिने जावें, क्योंकि लड़ाई के प्रथम दिन से ही योद्धा मरते थे ! किन्तु महाकवि ने शौचपालन का पूरा एक मास युद्धसमाप्ति के बाद हुई दाहक्रिया के बाद बताया है। इसके अलावा, जैसा कि अब सिद्ध हो रहा है, युद्धकाल के कुल दिन अठारह न होकर पैंतीस थे। और फिर, शौचपालन करते करते लड़ना भी चालू रखने की कल्पना ही कितनी विचित्र है ! ❑

* उदाहरणार्थ. देखिये, श्री राजगोपालाचार्य ''Mahabharata'', p. 205 : तथा गीता प्रेस ने दिया उक्त श्लोक का हिन्दी अनुवाद।

प्रकरण ९

कुछ विश्राम दिनों के सूक्ष्म प्रमाण

महाभारत युद्ध के विश्राम दिवस ध्यान में लेकर कुल युद्धकाल पैंतीस दिन गिनने से युद्धकाल की विविध घटनाओं से संबद्ध कालगणनात्मक कूट किस प्रकार सुसंगत हल हो जाते हैं यह हमने यहांतक देखा। किन्तु इसके अलावा विशिष्ट विश्राम दिनों के सूक्ष्म संकेत भी महाभारत के श्लोकों में प्राप्त होते हैं।

आठवा विश्राम दिवस

लड़ाई के आठवे और नवे दिनों के दरम्यान दुर्योधन की दुःशासन आदि से गुप्त बैठक होकर, उसमें कर्ण ने सुझाव दिया कि यदि भीष्म युद्ध से हट जाते हैं तो वह पाण्डवों को तुरन्त जीत लेगा। इस हेतु भीष्म को राजी करने दुर्योधन एक विशाल जुलूस के साथ भीष्म के शिबिर गया। किन्तु भीष्म ने निवृत्त होने के बजाय अगले दिन की लड़ाई में असीम पराक्रम करने का वचन दिया। तत्पश्चात दुर्योधन वापिस चला आया। इस समय रात्रिकाल था ; यह इस बात से स्पष्ट है कि दुर्योधन के उस जुलूस में दीप जल रहे थे (भीष्मपर्व ९७-३१,३२)। इसके अलावा , संभाषण के अंत में भीष्म ने दुर्योधन से कहा—

सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽपि कर्ता महारणम्
ये जनाः कथयिष्यन्ति यावत् स्थास्यति मेदिनी ॥ भीष्मपर्व, ९८-२३.

''दुर्योधन (गांधारीसुत), अब तुम (वापिस जाकर) स्वस्थ नींद लो ; कल मैं ऐसा भीषण युद्ध करूंगा , जिसका वर्णन लोक संसार के अंत तक करते रहेंगे।'' तदनुसार दुर्योधन ने वापिस अपने शिबिर जाकर रात बिताई।

प्रविष्टः स निशां तां च गमयामास पार्थिवः
प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान् नृपः ॥ ९८-२६.
राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह
अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान् ॥ -२७.

''फिर (अपने शिबिर में) प्रवेश कर राजा (दुर्योधन) ने वह रात्रि बिताई ; और रात्रि के अंत में प्रभात होने पर प्रातः काल उसने (अपने पक्ष के) राजाओं को आदेश दिया कि, सेना को लड़ाई के लिये तैयार खडी करो , आज क्रुद्ध भीष्म रणांगण पर सोमकों का विनाश करने वाले हैं।

उक्त भीष्म-दुर्योधन भेट के समय रात्रि थी इसका उल्लेख श्लोक ९८-२८ में भी आया है*।

दुर्योधन की वह भीष्म भेंट कौन सी रात्रि में हुई ? जिन्हें विश्राम दिनों की कल्पना नहीं वे स्वाभाविक ही यह घटना लड़ाई के आठवे रोज की ही रात की मानते हैं।❑ किन्तु पिछले प्रकरण में बताये अनुसार इस रोज लड़ाई सूर्यास्त के बाद भी कुछ समय रात्रि प्रारंभ तक चालू रही, और तदनंतर दोनों सेना अपने-अपने शिबिरों में जाकर आराम करने लगी। क्या दिन भर की भयानक लड़ाई से अतिशय थके हुए ('श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च' भीष्मपर्व ९६-७८) सैनिकों के अत्यावश्यक विश्राम में बाधा डालकर, उसी रात्रि में राजा दुर्योधन भीष्म शिबिर की ओर यह विशाल जुलूस निकालता? इस जुलूस का यह वर्णन महाभारतकार ने दिया है —

तं प्रयान्तं नरव्याघ्रं भीष्मस्य शिबिरं प्रति
अनुजग्मुर्महेश्वासः सर्वलोकस्य धन्विनः ॥ भीष्मपर्व, ९७-२३.
भ्रातरश्च महेश्वासास्त्रिदशा इव वासवम्
हयानन्ये समारुह्य गजानन्ये च भारत ॥ २४.
रथानन्ये वरश्रेष्ठं परिवव्रुः समन्ततः ....॥ २५.
प्रगृण्हन्नञ्जलीन् नृणामुद्यतान् सर्वतो दिशः
शुश्राव मधुरा वाचो नानादेशनिवासिनाम् ॥ २९.
संस्तूयमानः सूतैश्च मागधैश्च महायशाः
पूजयानश्च तान्सर्वान् सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ३०.
प्रदीपैः काञ्चनैस्तत्र गन्धतैलावसेचितैः
परिवव्रुर्महाराज प्रज्वलद्भिः समन्ततः ॥ ३१.
काञ्चनोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः
प्रोत्सारयन्तः शनकैस्तं जनं सर्वतो दिशम् ॥ ३३.

"भीष्म के शिबिर को जाते हुए उस पुरुषसिह (दुर्योधन) के पीछे सब देशों से (उसकी सेना में) आये धनुषधारी महावीर (योद्धागण) तथा उसके स्वयं के महाधनुर्धर भाई, इन्द्र के पीछे चलनेवाले देवों के समान चल रहे थे ; धृतराष्ट्र, उनमें से कुछ घोड़ों पर ,कुछ हाथियों पर, तो कुछ रथों पर आरूढ थे ; और उस नरश्रेष्ठ को चारों ओर से घेरे हुए थे — २३,२४,२५. उस समय अनेक देशों के निवासी पुरूषों की सभी दिशाओं से ऊपर उठी प्रणामांजलियां स्वीकार करते हुए (राजा दुर्योधन) उनके मधुर वचन सुन रहा था ; सूत मागध आदि उस महायशसंपन्न महाराजाधिराज (दुर्योधन) के स्तुतिपाठ गा रहे थे ; और वह भी उन सबका यथोचित सम्मान करता जा रहा था — २९,३०. सेवकगण सुगन्ध एवं तेल से युक्त सुवर्णमय जलते दीप लेकर महाराज दुर्योधन के पीछे चल रहे थे — ३१. सुनहरी पगड़ी धारण कर हाथों में बेत तथा झांझरी (एक वाद्य विशेष) लेकर चलने वाले (राजसेवक) उस जनसमुदाय को सब और धीरे-धीरे हटाते जा रहे थे—३३"।

* सच तो यह है कि यह घटना रात्रि समय होना निर्विवादही है। यदि वह दिन में मानी तो विश्रामदिवस अनायास सिद्ध हो जायगा; क्योंकि प्रत्यक्ष लड़ाई के रोज दिन के समय वह संभव ही नहीं थी।

❑ उदाहरणार्थ, भांडारकर संस्था का Bhishma Parvan, Introduction, p. CXVIII.

महाभारतकार ने उस जुलूस का दिया यह विस्तृत वर्णन देखने पर, रात्रि समय में एकत्रित वह जनसागर तथा उत्साहपूर्ण उन्मुक्त वातावरण पूरे दिनभर की भयानक लड़ाई से अत्यन्त थकी (तथा फिर अगले ही रोज सूर्योदय से वैसी ही लड़ाई करने बाध्य) सेना का नही हो सकता। इसके विपरीत, वह एक रात विश्राम कर दूसरे दिन भी प्रत्यक्ष लड़ाई से छुटकारा पाकर प्राप्त रात्रि का होना चाहिये। अनुमान स्पष्ट है कि, यह विशाल सैनिक जुलूस बीच के विश्राम दिवस पर रात्रिप्रारम्भ काल में निकला था, तथा इसके कुछ समय पूर्व दुर्योधन की कर्ण आदि से गुप्त मंत्रणा हुई थी।

संजय का वृत्तांत कथन

महर्षि व्यास के आदेश से संजय ने अंध धृतराष्ट्र को समग्र युद्ध वृत्तांत निवेदन किया। इसलिये उन्होंने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की। किन्तु संजय हस्तिनापुर में बैठे - बैठे ही दिव्य दृष्टि से कुरुक्षेत्र का सारा युद्ध देखकर धृतराष्ट्र को निवेदन करता था इस प्रकार जो धारणा प्रचलित हो गई है वह पूर्णतया भ्रामक है।* संजय स्वयं कुरुक्षेत्र पर

* "The Gita according to Gandhi" पुस्तक की प्रस्तावना में श्री महादेव देसाई लिखते हैं, "Sanjaya was endowed with divine vision and without being on the battlefield narrated the happenings to the blind king ." वाराणसी से प्रकाशित 'हिन्दी शब्दसागर' (दसवा भाग) में भी संजय के विषय में लिखा है, "कहते हैं कि इसे दिव्य दृष्टि प्राप्त थी, अतः यह हस्तिनापुर में बैठा हुआ कुरुक्षेत्र की सारी घटनायें देखता था और उनका वर्णन अंधे धृतराष्ट्र को सुनाता था।" कई अन्य ग्रंथों में भी यही गलत धारणा व्यक्त हुई है।

कौरवों की ओर से लड़ता था। उसकी 'दिव्य' दृष्टि का प्रभाव इतनाहि था कि, उस विशाल रणभूमि पर वह किसी एक स्थान में होने पर भी उसे सारी रणभूमि की घटनाएँ ज्ञात होती थी, तथा योद्धाओं के बाह्य आचरण के अलावा उनके मन के विचार भी वह जान सकता था (भीष्मपर्व, २-१०,११)। किन्तु उसने प्रत्यक्ष कुरुक्षेत्र पर होना आवश्यक था। इसीलिये उसे दिव्य दृष्टि प्रदान करते समय व्यासजी ने यह भी कहा कि—

नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं बाधिष्यते श्रमः
गावल्गणिरयं जीवन् युद्धादस्माद् विमोक्ष्यते ॥ भीष्मपर्व, २-१२.

"शस्त्रों से इसका वध नहीं होगा, तथा परिश्रम से इसे बाधा नहीं पहुँचेगी। यह संजय इस युद्ध से जीवित बच निकलेगा।" यदि युद्ध दिनों में संजय को हस्तिनापुर में ही होना होता, तो इस आश्वासन की क्या आवश्यकता थी ?

उस युद्ध में संजय स्वयं लडता था इसके कई उल्लेख महाभारत में है। उदाहरणार्थ देखिये भीष्म पर्व अध्याय ९४,९६ एवं ११९, द्रोणपर्व अध्याय २५ एवं ३०। तथा यही शल्यपर्व अध्याय २५ में भी कहा होकर, उसकी चर्चा प्रकरण ९ में 'अंतिम युद्धदिवस' शीर्षक के नीचे की है। सच तो यह है कि, संजय उस युद्ध में प्रत्यक्ष लड़ने के महाभारत में इतने स्पष्ट उल्लेख हैं कि, वह युद्धकाल में स्वयं न लड़ते हस्तिनापुर में ही रहता था यह भ्रम कैसा प्रसृत हुआ इसका आश्चर्य होता है !

किन्तु फिर संजय ने धृतराष्ट्र को युद्धवृत्तांत कब कथन किया ? क्या संपूर्ण युद्ध समाप्त होने बाद कथन किया ? या, प्रति दिन हस्तिनापुर जाकर कथन किया ? ऐसा नही। महाभारत के अनुसार संजय ने धृतराष्ट्र को युद्धवृत्तांत हस्तिनापुर जाकर चार हफ्तों मे कथन किया। उसने प्रथम वृत्तांत लड़ाई के दसवे दिन हुए भीष्म पतन के बाद दिया; वह 'भीष्मपर्व' में आया है; उसमें उभय सेना लड़ाई प्रारंभ होने के कुछ रोज पूर्व कुरुक्षेत्र पहुची तब से हकीकत होकर, युद्धारंभ के दिन हुवा सुप्रसिद्ध गीता संवाद भी उसमें आया है।

संजय ने दूसरा वृत्तांत द्रोणवध के बाद दिया; वही 'द्रोणपर्व' है। तीसरा वृत्तांत कर्णवध के बाद दिया ('कर्ण पर्व')। तथा अंतिम वृत्तांत दुर्योधन के मरणबाद दिया, जो 'शल्यपर्व' में तथा सौप्तिकपर्व के प्रथम ९ अध्याय में आया है।

दसवा विश्राम दिवस

अब भीष्म पतन के बाद हुई घटनाओं पर दृष्टि-क्षेप करें। प्रत्यक्ष लड़ाई के दसवे रोज शाम भीष्म रणभूमि पर नीचे गिर पडे। उसके बाद रात आई, और वह समाप्त होने

बाद (अर्थात दूसरा दिन उदित होने पर) कौरव और पांडव दोनों ही भीष्म के पास आदरयुक्त प्रेमभाव से आकर बैठे।

व्युष्टायाँ तु महाराज शर्वर्याः सर्वपार्थिवाः
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठत् पितामहम् ॥ भीष्मपर्व, १२१-१
उपारम्भ च युद्धेभ्यः संनाहान् विप्रमुच्य ते
आयुधानि च निक्षिप्य सहिताः कुरुपाण्डवाः ॥ -६.

"महाराज (धृतराष्ट्र), रात्रि समाप्ति बाद पांडव एवं कौरव मिलकर सब राजे पितामह भीष्म के पास आये —१. कौरव तथा पांडव लड़ाई से निवृत्त होकर कवच खोलकर एवं शस्त्र नीचे रखकर शंत्रुजय भीष्म के पास आकर बैठे"। इस समय भीष्म ने दुर्योधन को पांडवों से सुलह करने का उपदेश दिया जो व्यर्थ गया। इसके बाद दोनों पक्ष अपने अपने शिविरों में वापिस गये।

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्वानालयान् पुनः
तूष्णींभूते महाराज भीष्मे शन्तनुनन्दने ॥ भीष्म पर्व, १२२-१

"महाराज (धृतराष्ट्र), शंतनुनन्दन भीष्म चुप हो जाने पर वे सब नृपतिगण पुनः अपने निवास स्थानों (शिबिरों) को चले गये।" यदि यह प्रत्यक्ष लड़ाई का दिन होता, तो कौरव एवं पांडव इस सुबह के समय भीष्म के पास इस प्रकार न आकर रणक्षेत्र की ओर जाते। और भीष्म के पास आते भी तो शस्त्रादिसह आकर कुछ समय वहां रुककर, बाद में शिबिरों को वापिस न जाते रणक्षेत्र की ओर जाते। किन्तु यह विश्राम दिवस की सुबह थी।

इसके बाद अकेला कर्ण आकर भीष्म से मिला। भीष्म ने उसे पांडव पक्ष को मिल जाने की सूचना की; किन्तु कर्ण दुर्योधन को छोडना नही चाहता था। कर्ण वहां से दुर्योधन के पास गया(१२२-३९). संजय का प्रथम वृत्तांत, और अतः भीष्म पर्व भी, यहां समाप्त होता है। उस दिन इसके बाद हुई घटना संजय ने (द्रोणवध के बाद दिये) द्वितीय वृत्तांत में कही है।

भीष्मपतनपश्चात के इस दूसरे दिन सेनापतिहीन निराश हुई कौरव सेना ने कर्ण का विशेष स्मरण कर, उसे तुरन्त बुलाया जावे ऐसा आग्रह शुरू किया (द्रोण पर्व अध्याय १)। इस पर कर्ण फिर दुर्योधन के पास आया; और उसने कौरव सेना की हिम्मत बढाई (अध्याय२)। तदनंतर उसने फिर भीष्म के पास जाकर (नया प्रमुखसेनापति किसे किया जावे इस विषय में) कुछ वार्तालाप किया; और दुर्योधन के पास आकर उस पद के लिये

द्रोण का नाम सुझाया। तदनुसार दुर्योधन ने सेना के समक्ष द्रोण को विधिवत अभिषेक किया, जिसका विस्तृत वर्णन ऊपर पूर्व प्रकरण में उद्धृत किया है।

संजय ने इन सारी घटनाओं की हकीकत जिस प्रकार दो अलग वृत्तांतों में कथन की, उससे यह बीच का विश्राम दिवस स्पष्ट होता है। भीष्म पर्व के शुरू के श्लोकों में कहा है कि, संजय अपने प्रथम वृत्तांत कथन हेतु भीष्मपतन के बाद (कुरुक्षेत्र से) हस्तिनापुर गया।

अथ गावल्गणिविद्वान् संयुगादेत्य भारत
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित् ।। भीष्म पर्व , १३-१
ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दु:खित:
आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम् ।। २
संजय उवाच
संजयो ऽ हं महाराज नमस्ते भरतर्षभ
हतो भीष्म: शान्तनवो भरतानां पितामह: ।। ३
ककुदं सर्वयोधानां धामं सर्वधनुष्मताम्
शरतल्पगत: सोऽद्य शेते कुरुपितामह: ।। ४

''राजा जनमेजय (भारत) , भूत, वर्तमान एवं भविष्य के ज्ञाता, (रणभूमि की) सब घटनाएं (दिव्य दष्टि से) प्रत्यक्ष देखने वाले, विद्वान् गवल्गणिपुत्र संजय ने रणभूमि से (हस्तिनापुर) आकर चिन्तामग्न धृतराष्ट्र के पास अकस्मात पहुंचकर दुख के साथ भरतकुल के पितामह (भीष्म) (युद्ध में) मार गिराये जाने का समाचार सुनाया -१,२. संजय ने कहा :—महाराज भरतश्रेष्ठ , मैं संजय आपको प्रणाम करता हूं, भरतकुल के पितामह शन्तनुपुत्र भीष्म (युद्ध से) मार गिराये गये हैं -३. सर्व योद्धाओं के ध्वजस्वरूप (अग्रगामी शिरोधार्य), सब धनुर्धारियों के आधार स्थान, कुरुकुल के वे पितामह आज (अब) स्वयं बाणशय्या पर पड़े हैं -४''.

यदि अवकाश दिन ध्यान में न लिये, तो इसका आशय यह होगा कि, संजय भीष्मपतन के ही रोज रात को धृतराष्ट्र को यह वृत्तान्त देने हस्तिनापुर गया था। इन श्लोकों में 'अद्य' शब्द से (जिसका सामान्य अर्थ 'आज' होता है) यह भ्रम निर्माण भी होता है। किन्तु जैसा कि हमनें देखा है, यह वृत्तान्त भीष्मपतन तक ही सीमित न होकर , उसके बाद आयी रात्रि बीतने पर कौरव पांडव भीष्म के पास उपस्थित हुए आदि घटना भी संजय ने

उसी में बताई है। इससे स्पष्ट है कि, संजय भीष्मपतन के दूसरे दिन सुबह हस्तिनापुर गया था। अत: ऊपर उद्धृत श्लोक मे 'अद्य' का शब्दश: 'आज' ऐसा न होकर , 'अब' 'वर्तमान में' इस प्रकार है। और भीष्मपतन के बाद का यह दिन यदि अवकाश दिन न होता, तो उस सुबह उधर संजय हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के पास होता, और इधर कुरुक्षेत्र पर द्रोण के सेनापतित्व में लड़ाई शुरू भी हो जाती। किन्तु संपूर्ण युद्ध में संजय प्रत्यक्ष लड़ाई में कभी भी अनुपस्थित नही था। धृतराष्ट्र को अपना प्रथम वृत्तांत निवेदन कर संजय हस्तिनापुर से वापिस कुरुक्षेत्र आनेबाद, कर्ण द्वारा कौरव सेना की हिम्मत बढ़ाना एवं द्रोण को अभिषेक आदि घटना हुई।

भीष्मपतन (अमावास्यान्त) मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया को हुवा, अत: इस विश्राम दिवस पर कृष्ण चतुर्थी थी। इस तिथि का विशेष महत्व यह है कि, यद्यपि प्रत्यक्ष गीतोपदेश युद्धारंभ की अमावास्या को हुवा, संजय द्वारा कथन के रूप में उसका प्रथम प्रकाशन इस तिथि को हुवा ! तब तक प्रत्यक्ष श्रीकृष्णार्जुन संवाद होकर (बीच के अवकाश दिन मिलाकर) उन्नीस दिन हो गये थे। और इसी लिये गीता में धृतराष्ट्र के मुह मे 'अकुर्वत', तथा संजय के वचनों में 'उवाच' 'आह' 'बभूव', 'अभाषत' ऐसे भूतकाल के प्रयोग आये हैं। संजय ,स्वयं कुरुक्षेत्र पर युद्ध में उपस्थित न होकर ,हस्तिनापुर में ही बैठे - बैठे दिव्य दृष्टि से उस युद्ध की सारी घटना देखकर तुरन्त अंध धृतराष्ट्र से कथन करता रहा ऐसा मानने वाले, गीता में संजय द्वारा प्रयुक्त इन विशिष्ट (अनद्यतन) भूतकालीन क्रिया प्रयोगों का स्पष्टीकरण नही दे सकते।

ग्यारहवा विश्राम दिवस

प्रत्यक्ष लड़ाई के ग्यारहवे दिन बाद आनेवाले विश्राम दिवस पर मार्गशीर्ष वद्य षष्ठी थी। पंचमी को सूर्यास्त बाद सब ओर अंधकार छाकर लड़ाई स्थगित हुई। उस रात में द्रोण ने दुर्योधन को आश्वासन दिया कि, यदि लड़ाई के अगले दिन अर्जुन को कोई मुख्य रणभूमि से कुछ दूर व्यस्त रखे, तो वे युधिष्ठिर को जीवित पकड लेंगे। इस पर सुशर्मा ने अपने पाच भाई तथा हजारों संशप्तक योद्धाओं के साथ मान्य किया कि, हम मुख्य युद्ध भूमि से कुछ दूर अर्जुन से प्राणांतिक संग्राम करेंगे। इतना कहकर सुशर्मा आदि द्रोण एवं दुर्योधन के पास से चले गये (द्रोण पर्व अध्याय १७ श्लोक ११ से १८)। इस प्राथमिक आश्वासन के अलावा सुशर्मा आदि ने इस बारे में अग्नि के समक्ष विधिवत शपथ भी ली। वह शपथविधि कब हुआ ? महाभारतकार ने उसका विशेष वर्णन दिया है।

ततो ज्वलनमानर्च्य हुत्वा सर्वे पृथक् पृथक्
जगृहु: कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च ॥ द्रोण पर्व, १७-२२
ते च बद्धतनुत्राणा धृताक्ता कुशचीरिण:
मौर्वीमेखलिनो वीरा: सहस्रशतदक्षिणा: ॥ २३
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च निष्कान् दत्वा पृथक् पृथक्
गाश्च वासाँसि च पुन: समाभाष्य परस्परम् ॥ २६
प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपागम्य रणव्रतम्
तस्मिन्नग्नौ तदा चक्रु: प्रतिज्ञा दृढनिश्चया: ॥ २७
शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचो बभाषिरे
सर्वे धनंजयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे ॥ २८

"उन सब (हजारों योद्धाओं ने) अग्नि की अलग अलग पूजा कर उसमें हवन किया, तथा कुश के चीर (वस्त्र, वल्कल) और बिविध प्रकार के कवच धारण किये-२२ लाखो स्वर्ण मुद्राओं की दक्षिणा देकर उन वीरों ने कवच बाँधकर कुश चीर चढ़ाये, घी का लेप किया तथा धनुष्य की डोरी की मेखला कमरपर बाँधी —२३. ब्राह्मणों को उन्होंने अलग अलग स्वर्ण मुद्राएं, गौएं तथा वस्त्र प्रदान कर संतुष्ट किया ; फिर पुन: आपस में बातचीत कर अग्नि प्रज्वलित किया, और समीप जाकर (प्राणांतिक) लड़ाई का व्रत लेकर उस अग्नि को साक्षी रखते हुए उन दृढनिश्चयी वीरों ने प्रतिज्ञाएं ली —२६,२७. अर्जुनवध की प्रतिज्ञा कर उन सबने सभी लोगों को (सारी कौरव सेना को) सुनाते हुए उच्च स्वर से इस प्रकार कहा—२८"। क्या सारी सेना की उपस्थिति में इस प्रकार विधिवत प्रतिज्ञा ग्रहण का समारोह प्रत्यक्ष लड़ाई के (ग्यारहवे) दिन ही रात्रि प्रारंभ में, दिन भर की भीषण लड़ाई से थके सैनिकों को आवश्यक विश्राम से वंचित रखकर, किया गया माना जा सकता है ?

या, क्या वह शपथ समोरह लड़ाई के बारहवे दिन के सूर्योदय पूर्व रात्रि के समाप्ति प्रहर में हुवा होगा ? किन्तु तब यह मानना पडेगा कि, सुशर्मा आदि ने इस शपथविरधि के लिये सैनिकों को मध्यरात्रि में ही निद्रा से जगाया होगा। क्योंकि, बारहवे दिन लड़ाई प्रात:काल ही शुरू हो गई थी ; और स्पष्ट ही उसके पूर्व सुशर्मा तथा उसके साथियों का वह जाहिर शपथविधि होकर तदनुसार द्रोणाचार्य ने सेना की रचना भी की थी (२०-१,२,३)।

तर्कसंगत अनुमान यही होगा कि, उक्त शपथविधि बीच के अवकाश दिन पर हुवा था। किन्तु 'अद्य' 'तदा' आदि शब्दों का संदिग्ध प्रयोग कर महाकवि ने वह

अवकाश दिवस गूढ रखने का कुशल प्रयोग किया है। ग्यारहवे दिन लड़ाई स्थगित होनेबाद द्रोण दुर्योधन से कहते हैं—

एवं तेऽहं महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्
समानेष्यामि सगणं वशमद्य न संशय: ॥ १७-९

"महाराज (दुर्योधन), इस प्रकार मैं 'अद्य' तुम्हारे लिये धर्मपुत्र युधिष्ठिर को उसके (संरक्षक) सैनिकों सहित पकड़ कर ले आऊँगा इसमें संदेह नहीं"। इसी समय त्रिगर्तराज सुशर्मा अर्जुन को प्रमुख युद्धभूमि से कुछ दूर लड़ाई में व्यस्त रखनेका आश्वासन देकर कहता है—

अद्यास्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्ताथ वा पुन:
सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥ १७-१६

"हम आपसे सत्य प्रतिज्ञा से कहते हैं कि, 'अद्य' या तो पृथ्वी से अर्जुन नष्ट हो जायगा या त्रिगर्त नष्ट होंगे ; यह मिथ्या नहीं होगा।" इन दोनों वचनों में 'अद्य' का आशय शब्दश: आज ऐसा हो नहीं सकता; क्योंकि, यह संवाद लड़ाई के ग्यारहवे रोज रात को हुवा था। स्पष्ट ही यहाँ उस शब्द का अर्थ अब लड़ाई फिर चालू होने पर, अर्थात लड़ाई के अगले दिन, ऐसा है। इसी प्रकार विधिवत शपथग्रहण के बाद सुशर्मा के योद्धाओं ने कहा —

यदि त्वसुकरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे
इष्टान् लोकान् प्राप्नुयामो वयमद्य न संशय: ॥ १७-३६.

"किन्तु यदि 'अद्य' हम लड़ाई में (अर्जुनवध का) इस लोके में अत्यन्त मुश्किल का यह कर्म कर लें, तो नि:संशय श्रेष्ठ (पर) लोक प्राप्त करेंगे।" यहां भी 'अद्य' का आशय 'अब (अर्थात लड़ाई के अगले दिन)' हैं। इस श्लोक के बाद ही संजय का यह श्लोक हैं—

एवमुक्त्वा तदा राजंस्तेऽभ्यवर्तन्त संयुगे
आव्हयन्तोऽर्जुनं वीरा: पितृजुष्टाँ दिशं प्रति ॥ १७-३६.

यहाँ 'तदा' का सम्बन्ध "अभ्यवर्तन्त" से न होकर 'उक्त्वा' से है। अत: इस श्लोक का अर्थ होगा, "राजन् (धृतराष्ट्र), उस समय ऐसा कहकर (जब नियत समय पर फिर लड़ाई चालू हुई तब) अर्जुन को पितरों की (यानी दक्षिण) दिशा में चलने का आव्हान देते हुए वे वीर रणभूमि पर खडे हुए"।

तेरहवा अवकाश दिवस

लड़ाई के तेरहवे रोज जयद्रथ आदि ने मिलकर अभिमन्यु वध किया। अर्जुन को वह समाचार मिलने पर उसने प्रतिक्षा की कि ,अगले रोज मैं सूर्यास्तपूर्व जयद्रथ का वध करूंगा अन्यथा अग्निप्रवेश करूंगा (देखिये प्रकरण १८)। गुप्तचरों द्वारा इसकी सूचना पाने पर जयद्रथ दुर्योधन के पास गया। दुर्योधन ने उसे पूर्ण संरक्षण का आश्वासन दिया, और वे दोनो सेनापति द्रोण के पास गये ; उस समय रात्रिकाल चल रहा था।

एवमाश्वासितो राजन् पुत्रेण तव सैन्धवः
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ द्रोणपर्व, ७४-२१.

''राजा (धृतराष्ट्र), इस प्रकार दुर्योधन द्वारा आश्वासन पानेपर जयद्रथ दुर्योधन के साथ उस रात्रिसमय में द्रोण के पास पहुंचा।'' इधर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को चेतावनी दी कि, उसने अतिशय जल्दबाजी में उक्त प्रतिज्ञा कर भीषण धोखा खडा किया। उत्तर में अर्जुन ने असीम पराक्रम कर प्रतिज्ञा पूर्ण करने का विश्वास व्यक्त किया। फिर भी अर्जुन एवं श्रीकृष्ण दोनों को उस रात्रि में नींद नही आई।

तां निशां दुखशोकार्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनंजयौ ॥ ७७-१

''दुःख शौक से ग्रस्त होकर , सर्प समान लंबी सांस लेते हुए, श्री कृष्ण एवं अर्जुन को उस रात्रि में नींद नहीं आई।'' इस रात्रि के समाप्ति समय वे दोनों संतप्त थे, तथा अनेक अशुभ शकुन हो रहे थे; जिसका महाभारत ने दिया यह वर्णन प्रस्तुत संदर्भ में विशेष महत्त्व का है—

नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किं स्विदेतद् भविष्यति ॥ द्रोण पर्व , ७७-२.
ववुश्च दारुणा वाताः रुक्षा घोराभिशंसिनः
सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिधिः समदृश्यत ॥ ३.

''नर (अर्जुन) तथा नारायण (श्री कृष्ण) क्रुद्ध देखकर इन्द्रादि देवता उद्विग्न हो गये और चिन्ता करने लगे कि अब क्या होने वाला है ? -२. रुक्ष भयसूचक एवं दारुण वायु बहने लगे; सूर्यबिंब में शिररहित शवसमान भयानक आकृति सहित एक अत्यन्त अशुभ घेरा दिखाई देने लगा—३.'' यह सूर्यबिंब का उल्लेख बताया है कि इस समय रात्रि समाप्त होकर सुबह हो गई थी।

इस समय अर्जुन ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि वे जाकर सुभद्रा तथा विधवा उत्तरा का सान्त्वन करें। तदनुसार —

ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः
भगिनीं पुत्रशोकार्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ७७-११.

''इस पर भगवान श्रीकृष्ण अत्यन्त दुःखी मन से अर्जुन के शिबिर में गये, और पुत्रशोक से पीड़ित अपनी दुःखी बहन का सान्त्वन करने लगे।'' श्रीकृष्ण ने सुभद्रा से कहा —

प्राप्स्यते चाप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातक :
अस्यावलेपस्य फलं ससुहृद्गणबांधव : ॥ ७७-१८.
व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत्
न हि मोक्ष्यति पार्थात् स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९.
श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हतम्
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २०.

''सुभद्रे, बालक अभिमन्यु का वध करने वाला यह पापी जयद्रथ रात बीतने पर अपने मित्र तथा बांधवों सहित इस कृत्य का फल भोगेगा; वह इन्द्र की अमरावती में जाकर छिप गया तो भी अर्जुन के हाथ से नहीं बचेगा ; कल तुम सुनोगी कि रण में जयद्रथ का शिर काटकर समन्तपंचक क्षेत्र के बाहर फेक दिया गया है; शोक छोड़ दे , रोना बंद कर''।

अब यहां महत्त्व का प्रश्न यह है कि इसमें श्रीकृष्ण द्वारा उल्लेखित रात, जिसके बीतनेपर जयद्रथ वध होने वाला था, कौन सी थी ? ऊपर के विस्तृत विवरण से ज्ञात हो गया है कि, अभिमन्युवध तथा अर्जुन प्रतिज्ञा के पश्चात् एक रात्रि तो निकलही चुकी थी। स्पष्टतः श्रीकृष्ण द्वारा उल्लेखित वह रात्रि बीच के अवकाश दिन की आनेवाली रात्रि थी ; जिसके पूर्व उस दिन सुबह (सूर्योदय पश्चात्) श्रीकृष्ण ने सुभद्रा को यह आश्वासन दिया था।

सुभद्रा, द्रौपदी ,उत्तरा आदि का सान्त्वन कर श्री कृष्ण फिर अर्जुन के पास आये, और वे तथा अन्य योद्धा अपने शिबिरो को गये।

ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान् कृष्णो बन्धूंस्तथार्जुनम्
विवेशान्तः पुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथालयम् ॥ ७८-४४.

''तदन्तर उपस्थित राजाओं से, बाँधवों से तथा अर्जुन से अनुमति लेकर श्रीकृष्ण स्वयं के अंतःपुर (शिबिर) में गये ; और उसी के साथ वे राजा लोग भी अपने अपने शिबिरों में

चले गये। ''यदि यह दिन प्रत्यक्ष लड़ाई का होता तो इस समय वे शिबिरों को नही , अपितु सीधे रणभूमि पर लडने जाते।

किन्तु इस अवकाश दिन का और भी स्पष्ट प्रमाण है। इस घटना के बाद फिर एक रात्रि आई , जिसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन की शय्या के पास भगवान शंकर की पूजा की सामग्री रखने की व्यवस्था कर, अर्जुन को शांत चित्त से सो जाने को कहा, तथा वे स्वयं भी सो गये।

सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय व्रजाम्यहम्
स्थापयित्वा ततो द्वाःस्थान् गोप्तृंश्चात्तायुधान् नरान् ॥ ७९-६.
दारुकानुगतः श्रीमान् विवेश शिबिरं स्वकम्
शिश्ये च शयने शुभ्रे बहुकृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७.

'' 'अर्जुन तुम्हारा भला हो, अब शयन करो, मैं तुम्हारे कल्याण साधन के हेतु जा रहा हूँ ', ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने वहां शस्त्रधारी द्वारपाल एवम् रक्षक नियुक्त किये; और (सारथी) दारुक के साथ स्वयं अपने शिबिर में चले गये। वहां (अर्जुन के हित में) बहुत से संभाव्य कार्यकलापों पर विचार करते हुए वे शुभ्र शय्यापर शयन कर गये। '' इस (द्वितीय) रात्रि के पूर्वार्ध में श्रीकृष्ण को नींद लगी ; किन्तु मध्यरात्रि में वे जाग उठे।

....तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥ द्रोण पर्व ७९-२०.
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत। ..... २१.

'' उस रात्रि के मध्यकाल में भगवान् श्रीकृष्ण जाग उठे , और अर्जुन की प्रतिज्ञा का स्मरण कर (सारथि) दारुक से बोले .... '' । यहाँ 'प्रतिबुद्ध' शब्द उस रात में दारुक से हुवे इस संभाषण के पूर्व श्री कृष्ण की गहरी निद्रावस्था दर्शाता है। अर्जुन को भी उस रात्रि में निद्रा आकर उसने एक प्रकार का 'स्वप्न' देखा।

कुन्तीपुत्रस्तु तं मंत्रं स्मरन्नेव धनंजयः
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् मुमोहाचिन्त्यविक्रमः ॥ ८०-१.
तं तु शोकेन संतप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम्
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः ॥ २.

''महा पराक्रमी अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा के पालन की चिंता करता हुवा तथा (भगवान शंकर की प्रार्थना सम्बन्धी) मंत्र का ध्यान करता हुआ गहरी नींद (या तन्द्रावस्था) के अधीन हो गया -१। उस समय चिन्ताग्रस्त कपिध्वज अर्जुन के 'स्वप्न' में गरुडध्वज भगवान् श्री

कृष्ण उसके पास आये -२। '' इस 'स्वप्नावस्था' में श्री कृष्ण अर्जुन को भगवान् शंकर के पास ले गये , जिन्होने प्रसन्न होकर अर्जुन को महान पाशुपतास्त्र प्रदान किया। हर्ष युक्त होकर श्रीकृष्ण एवं अर्जुन शिबिर को वापस आये।

अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन् भवेनार्जुनकेशवौ
प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥ ८१-२४.

'' भगवान् शंकर की अनुज्ञा लेकर वे दोनों वीर (श्री कृष्ण एवं अर्जुन) उसी क्षण अत्यंत हर्ष के साथ अपने शिबिर को लौट आये '' । परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि, यह 'स्वप्न' श्री कृष्ण द्वारा निर्मित अर्जुन की गूढ़ावस्था का अनुभव था। आखिर वह रात्रि समाप्त हुई।

तयोः संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तथा
सात्यगाद् रजनी राजन् अथ राजान्वबुध्यत ॥ ८२-१.

'' श्रीकृष्ण और दारुक का इस प्रकार संभाषण चलते चलते रात बीत गई; और उधर राजा युधिष्ठिर भी जाग गये '' ।

इस से स्पष्ट होता है कि, वह द्वितीय रात्रि, जिसमें अर्जुन को नींद तथा उस गूढ़ 'स्वप्नावस्था ' का अनुभव हुवा (तथा श्रीकृष्ण को भी कुछ समय नींद आकर बाद में उन्होंने दारुक से संभाषण किया), उस प्रथम रात्रि (जिसमें उन दोनों को बिलकुल निद्रा नहीं आई थी) से निश्चित भिन्न थी। द्वितीय रात्रि के उस 'स्वप्न' का उल्लेख द्रोण पर्व के आखिर में व्यास -अर्जुन संवाद में भी आया है (२०२-१४५,१४६)।

इसके बाद फिर द्वितीय सूर्योदय व प्रातःकाल आया। सेना उस समय लड़ाई के लिये तैयार हो रही थी। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के पास आकर (८२-२९ से ३४) अर्जुन की प्रतिज्ञापूर्ति का आश्वासन दिया। इतनेमें स्वयं अर्जुन वहां आया (८४-१) । यहां फिर महत्त्व का उल्लेख यह है कि ,अर्जुन तथा श्रीकृष्ण दोनों इस द्वितीय प्रातः काल में विशेष प्रसन्न मुद्रा में थे (जब कि प्रथम रात्रि के बाद वे बिलकुल भिन्न, संतप्त एवं चिन्ताग्रस्त अवस्था में थे)।

अर्जुन की प्रसन्न वृत्ति देख युधिष्ठिर ने कहा —

व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान्
यादृग्रूपा च ते च्छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ८४-४.

''अर्जुन , यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि (आज) लड़ाई में तुम्हे निश्चय ही महान विजय प्राप्त होगा। तुम्हारी मुद्रा ही यह बता रही है ; तथा भगवान् श्री कृष्ण भी प्रसन्नचित दिख रहे हैं। '' अर्जुन ने युधिष्ठिर को उस रात्रि का 'स्वप्नानुभव' बताया , जो सुनकर वहाँ उपस्थित सब को आनंद हुवा। युधिष्ठिर की अनुज्ञा लेकर वे सब (पिछली सुबह के समान शिबिरों की ओर न जाते) सीधे रणक्षेत्र को गये।

अनुज्ञास्तास्ततः सर्वे सूहृदो धर्मसूनुना
त्वरमाणाः सुसन्नद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८४-८.

''तदनन्तर युधिष्ठिर की अनुज्ञा प्राप्त कर, कवच आदि से पूर्णतया युक्त तथा हर्षोल्लास से प्रफुल्लित वे सब स्वजन मित्र शीघ्रता से युद्ध के लिये गये।''

इस द्वितीय प्रातःकाल के समय पांडवों के आसपास अनेक शुभशकुन हो रहे थे (जब कि पूर्व प्रात काल में ऊपर उद्धृत किये अनुसार बहुत अशुभ शकुन हुए थे)।

तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः
ववौ संहर्षयन् पार्थं द्विषतश्चापि शोषयन् ॥ ८४-२४.
ततस्तस्मिन् क्षणे राजन् विविधानि शुभानि च
प्रादुरासन् निमित्तानि विजयाय बहूनि च
पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष ॥ २५.

''जैसा जैसा अर्जुन आगे बढ़ने लगा, मंगल , सुगंधयुक्त एवम् पवित्र वायु उसके पीछे बहने लगी, जो उसका हर्ष बढ़ाती हुई कौरवों को उदास कर रही थी -२४. उस समय कई शकुन हुवे, जो पांडवों की विजय तथा आपके (धृतराष्ट्र के) पुत्रों की (कौरवों की) पराजय सूचित कर रहे थे- २५''।

इस प्रकार अभिमन्यु वध के दिन की शाम और जयद्रथ वध का दिन इनके दरम्यान दो स्पष्टतया भिन्न रातें (तथा दो भिन्न प्रातः काल) बीतने का महाभारत काव्य में दर्शित होने से बीच का अवकाश दिन सिद्ध होता है।

फिर भी यहाँ एक पंक्ति पर विशेष विचार इष्ट होगा। अपनी उस प्रतिज्ञा के अंत में अर्जुन ने कहा था —

धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्तिताः
ये चानुकीततास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥ ७३-४५.
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥ -४६.

''यदि यह रात्रि समाप्त होने पर 'श्वः' (कल) मैं जयद्रथ न करूं , तो मैंने जिनका उल्लेख किया है और जिनका नहीं किया उन सब धर्मभ्रष्टों की दुर्गति मुझे शीघ्र प्राप्त हो। '' यहाँ अर्जुन ने 'व्युष्टाम् इमां रात्रिं श्वः ' कहा होने से , उसका आशय वह शब्दशः 'कल' जयद्रथ करने वाला था ऐसा आभास हो सकता है। किन्तु महाभारत के युद्ध वर्णन में 'श्वः' का आशय कई बार प्रत्यक्ष लड़ाई का अगला दिन ऐसा होता है। तथा यहां भी 'श्वः' के पहिले 'यह रात्रि समाप्त होने पर' ऐसा जोड़ने के बावजूद, 'श्वः' का वही आशय है। 'श्वः' किसी भी अर्थ में लिया, तो भी वह चालू रात्रि के बाद ही आनेवाला था। अर्जुन का यह आशय दीखता है कि, आज की यह रात्रि बीतने बाद मैं प्रत्यक्ष लड़ाई के अगले रोज जयद्रथ वध करूं गा; फिर कौरव चाहे तो (जैसा कि जयद्रथ वध के दिन के बाद वास्तव में हुवा) अवकाशदिन न लेते शब्दशः अगले ही दिन लड़ाई प्रारंभ करें, या हमेशा मुजब एक दिन विश्राम लेकर लड़ना प्रारंभ करें। अभिमन्युवध और जयद्रथवध के बीच दो रात्रि बीतने के (ऊपर बताये) स्पष्ट प्रमाण देखते, अर्जुन की उस प्रतिज्ञा के बाद एक विश्राम दिवस जाकर तदनंतर जयद्रथ हुवा यह निःसंदेह है। और, अर्जुन की प्रतिज्ञा विफल होगी ऐसा कुछ भी वचन महाभारत कार उसके द्वारा व्यक्त नही करेंगे यह कहनेकी आवश्यकता नही; इस संदर्भ में अर्जुन के उस वचन का आशय लेना चाहिये।

अंतिम अवकाश दिन

लड़ाई के सत्रहवे दिन अपराण्ह समय कर्णवध हुवा। उसके बाद सायंकाल तक लड़ाई चलकर बाद में उदास मानस से कौरव सेना अपने शिबिरों को वापिस गई। संजय धृतराष्ट्र से कहता है-

प्रत्युपायाम सायान्हे निर्जिताः सव्यसाचिना
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः ॥ शल्यपर्व, ३-८.

'' हमारे कई श्रेष्ठ वीर मारे जाकर , तथा अर्जुन द्वारा पराजित एवं तीक्ष्ण बाणों से बुरी तरह घायल होकर , हम सायंकाल के समय (शिबिरों मे) वापिस लौटे''। (तथा देखिये ४-३)। इसके बाद प्रमुख कौरव योद्धागण रात्रिप्रारंभ समय रणभूमि से करीब आठ कोस दूर हिमालय पर्वत पर गये।

ततो वाहान् सभाश्वस्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः
ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः ॥ ५ - ५०
आकाशे विद्रुमे पुण्ये प्रस्थे हिमवतः शुभे
अरुणां सरस्वतीं प्राप्य पपुः सस्नुश्च ते जलम् ॥ ५१.

''तत्पश्चात् युद्धार्थ उत्साह से भरे हुवे वे कौरव योद्धा आठ कोस से कुछ कम दूरी पर गये, और अपने वाहनों को विश्राम देकर वहाँ उन्होंने डेरा डाला - ५०; वे खुले आकाश के नीचे, हिमालय पर्वत के वृक्ष रहित पवित्र मंगल पठार पर (ऊंचे मैदान पर) पहुँचे; और अरुणा एवं सरस्वती नदियों के संगम पर जाकर* उन्होंने स्नान तथा जलपान किया - ५१'' ।

कर्णवध के कारण उद्विग्न होकर उन्होंने 'वह रात्रि' हिमालय के पठार पर ही बिताई ।

अथ हैमवते प्रस्थे स्थित्वा युद्धाभिनन्दिनः
सर्व एव महायोधास्तत्र तत्र समागताः ॥ ६-१.
.... रात्रिमुषितास्ततः ॥ ३.
रणे कर्णे हते वीरे त्रासिता जितकाशिभिः
नालभञ्शर्म ते पुत्रा हिमवन्तमृते गिरिम् ॥ ४.

''युद्ध के लिये उत्साहित वे सब महायोद्धा हिमालय के मैदान पर डेरा डालकर (महत्त्वपूर्ण विचार- विनिमयार्थ) वहां एकत्र बैठे — १. .... उन्होंने वही पर वह रात्रि बिताई —३. युद्ध में वीर कर्ण के मारे जाने से, तथा विजय से उल्हसित पांडवों द्वारा (जोर शोर से हर्षनादप्रदर्शन से) त्रस्त होने से,आप के पुत्र (कौरव) हिमालय पर्वत के अलावा और कहीं शान्ति प्राप्त न कर सके— ४'' । कर्ण के स्थान पर सेनापति हेतु अश्वत्थामा ने शल्य का नाम प्रस्तावित किया । सभी ने उसका अनुमोदन किया । शल्य ने भी संमति देकर विजय का आश्वासन दिया । और 'इसके नंतर' शल्य को विधिवत् अभिषेक किया गया ।

.....एवमुक्तस्ततो राजा मद्राधिपतिमञ्जसा ॥ शल्य पर्व , ७-६.
अभ्यषिञ्चत सेनाया मध्ये भरतसत्तम
विधिना शास्त्रदृष्टेन क्लिष्टरूपो विशाम्पते ॥ ७.
अभिषिक्ते ततस्तस्मिन् सिंहनादो महानभूत्
तव सैन्येऽभ्यवाद्यन्त वादित्राणि च भारत ॥ ८.

''महाराज धृतराष्ट्र , शल्य द्वारा इस प्रकार (सम्मति और आश्वासन युक्त) वचन कहे जाने पर, (ततः) तत्पश्चात् (बार बार होते जा रहे पराभवों से) दुःखी दुर्योधन ने शास्त्रीय

* अरुणा और सरस्वती नदियों के संगम का उल्लेख वनपर्व ८३-१५१ में आया है : इसके अलावा शल्यपर्व अध्याय ४ भी देखिये ।

विधि के अनुसार अपनी सेना के बीच मद्रराज शल्य को (सेनापतिपद का) अभिषेक किया - ६,७. राजा धृतराष्ट्र , शल्य का वह अभिषेक सम्पन्न होते ही आपकी (कौरवों की) सेना में बड़े जोर से (हर्ष एवं उत्साह सूचक) सिंहनाद हुवा तथा वाद्य बजाये गये- ८.'' ।

यहाँ एक रहस्य है । यद्यपि शल्य को सेनापति नियुक्त करने का निर्णय हिमालय पर (कर्णवध के बाद रात्रिप्रारंभ काल में) लिया गया था, फिर भी उसको प्रत्यक्ष अभिषेक उस रात्रि की समाप्ति बाद वहाँ से वापिस नीचे लौटकर कुरुक्षेत्र पर आने बाद कौरव सेना के समक्ष किया गया । सम्पूर्ण विशाल सेना केवल रातभर के लिये रणभूमि से इतनी दूर हटाना सम्भव नहीं था ; केवल प्रमुख योद्धा ही हिमालय पर गये थे । और, अभिषेक सेना की उपस्थिति में किया जाने का श्लोक ७-७,८ में कहा है ; रणनीति के अनुसार वह आवश्यक भी था ।

उस अभिषेक के बाद कौरव सेना ने जोर जोर से किया हर्ष नाद स्वयं युधिष्ठिर ने सुना । तब वह अपनी सेना के साथ कुरुक्षेत्र के अपने हिस्से में था ।

सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिर :
वार्ष्णेयमब्रवीद् वाक्यं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ७-२४.
मद्रराजः कृतः शल्यो धार्तराष्ट्रेण माधव
सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः ॥ २५.

'' आपकी (कौरवों की) सेना का वह हर्षनाद सुनकर युधिष्ठिर ने अपने सब योद्धाओं के सामने श्रीकृ ष्ण से कहा, 'दुर्योधन ने (उसकी) समस्त सेना द्वारा पूजित महाधनुर्धर मद्रराज शल्य को सेनापति बनाया है' ।'' यदि वह (अभिषेक तथा) तथा हर्षनाद दूरस्थ हिमालय के पठार पर होता, तो युधिष्ठिर को उसकी जानकारी गुप्तचरों से मिलती, न कि स्वयं के कानों से ।

शल्य को सेनापति करने का हिमालय पर लिया गया निर्णय कथन करने बाद, महाभारतकार एकदम संदिग्ध शब्द प्रयोग कर कहते हैं कि, 'ततः' यानि तदनंतर शल्य को अभिषेक किया गया । किन्तु यहाँ 'ततः' का ' उसके पश्चात् तुरन्त' यह आशय नहीं है । उस 'ततः' में प्रमुख कौरव योद्धा हिमालय पर एक रात्रि बिताकर दूसरे दिन वापिस कुरुक्षेत्र लौटने की घटना खूबी से छिपाई है ।

इसी सन्दर्भ में एक अन्य महत्त्व का संकेत यह है कि, उस अभिषेक के बाद (प्रत्यक्ष लड़ाई शुरू होने के पूर्व) एक और रात्रि गई । उस रात्रि में कौरव योद्धा (शल्य के

सेनापतित्व से आश्वशत होकर) प्रसन्नचित्त थे , जबकि उसकी पूर्वरात्रि में (हिमालय के मैदान पर) वे अस्वस्थ एवं उद्विग्न थे।

अभिषिक्ते तथा शल्ये तव सैन्येषु मानद
न कर्णव्यसनं किंचिन्मेनिरे तत्र भारत ॥ ७-२१.
प्रहर्षं प्राप्य सेना तु तावकी भरतर्षभ
तां रात्रिमुषिता सुप्ता हर्षचित्ता च साभवत् ॥ २३.

''माननीय राजा धृतराष्ट्र , इस प्रकार आपकी सेना के मध्य शल्य को अभिषेक होने पर आपके सैनिकों को कर्णवध का कुछ भी शोक नहीं रहा—२१. हर्षित होकर आपकी सेना ने बडे आनंद से रात अच्छी नींद में व्यतीत की —२३. '' । कर्णवध के बाद बीती इस द्वितीय रात्री के पश्चात लड़ना पुन: आरभं हो गया।

व्यतीतीयां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा
अब्रवीत् तावकान् सर्वान् संनह्यन्तां महारथा: ॥ ८-१.

''रात्रि समाप्त होने पर राजा दुर्योधन ने आपके (कौरवों के) समस्त योद्धाओं को एकत्रित कर आदेश दिया, 'महारथियों' कवचादि से सुसज्जित होकर युद्धार्थ तैयार हो जाओ''। और इसके बाद तुरन्त (सूर्योदय के ही कुछ पूर्व) अरुणोदय पर (''पूर्वां संध्यां'' ८-४५) लड़ाई पुन: आरंभ हो गई। यदि यह रात्रि वही होती, जिसमें प्रमुख कौरव योद्धा रणक्षेत्र से आठ कोस दूर हिमालय पर जाकर सोये थे, तो लड़ाई इतने शीघ्र अरुणोदय पर पुन: आरंभ होना संभव नही था।

अन्त में इस अवकाश दिन का एक और निश्चित संकेत है। शल्य को अभिषेक होने पर कौरव सेना नें किया महान हर्षनाद सुनते ही युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से तत्काल विचार विनिमय किया। श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर को रणभूमि पर स्वयं ही शल्यवध करने का परामर्श दिया। इस मार्गदर्शन के बाद श्रीकृष्ण 'सायंकाल' में अपने शिबिर लौटे।

यच्च ते तपसो वीर्यं यच्च क्षात्रं बलं तव
तद् दर्शय रणे सर्वं जहि चैनं महारथम् ॥ शल्यपर्व, ७-४१.
एतावदुक्त्वा वचनं केशव: परवीरहा
जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानो ऽथ पाण्डवै : ॥ ४२.

'' 'राजन् , आपके पूरे तपोबल, शौर्य तथा क्षात्रवल का रणभूमि में उपयोग कर महारथी शल्य का वध कीजिये'—४१; यह सलाह देकर श्री कृष्ण पांडवों द्वारा सम्मानित होकर,

'सायंकाल के समय' अपने शिबिर गये—४२''। वह सायंकाल न कर्णवध के दिन की थी , और न हि शल्य वध के दिन की। कर्णवध के दिन तो शाम तक शल्य को अभिषेक हुवा ही नही था। कर्णवध और शल्याभिषेक के दरम्यान एक रात जाने का महाभारत में उल्लेखही है। और उधर शल्य उसके अभिषेक के बाद हुई लड़ाई मे पहले ही रोज मध्यान्ह में मारा जाने से , उस दिन सायंकाल में श्री कृष्ण की युधिष्ठिर को शल्यवध के लिये वह प्रेरणा का सवाल ही नही उठता। अत: निष्कर्ष अनिवार्य है कि, वह युधिष्ठिर - श्रीकृष्ण संवाद (एवं उसके तुरन्त पूर्व शल्याभिषेक) बीच के अवकाश दिन पर हुवा था। आश्चर्य की बात तो यह है कि, इस अंतिम अवकाश दिन की कल्पना के अभाव मे महाभारत के अनेकानेक अभ्यासक आज तक श्लोक ७-४२ में प्रयुक्त उक्त शब्द 'सायं' का क्या अर्थ करते रहे ? क्या इसी लिये महाभारत को भिन्न लेखकों की रचनाओं की एक विसंगत खिचडी माना जा रहा है ?

इस प्रकार महाभारत के युद्धवर्णन में सूक्ष्म अध्ययन करने पर ऐसी कई घटनाएँ दीखती है, जो महाकवि की कूटात्मक शैली के कारण प्रत्यक्ष लड़ाई के दिन होने का आभास होता है, किन्तु वस्तुत: किसी विश्राम दिवस पर हुई ।

महाकवि की कूट कुशलता

श्री रा.ल. गोखले के एक लेख('विविध ज्ञान विस्तार 'मराठी , वर्ष ९ अंक १) अनुसार महाभारत के युद्धवर्णन में प्राय: लड़ाई लगातार अठारह दिन ही बताई है ; और अमावास्या को युद्धारंभ मानकर लगातार चौदहवा दिन शुक्ल त्रयोदशी को आने से मूल महाभारत में उस दिन को भी वैसा ही दर्शाया होगा ; किन्तु बाद में किसी ने , विश्राम दिवस की कल्पना जोडकर वह चौदहवा दिन अमावास्या से सत्ताईसवा गिनकर वद्य पक्ष के उत्तरार्ध में बताने , मूल महाभारत में हस्तक्षेप कर उस दिन के वर्णन में रात्रि युद्ध एवं उत्तररात्रिका चन्द्रोदय जोड दिया। उक्त लेखक लड़ाई के उस चौदहवे दिन बाद विश्राम दिवस नही मानते ; और उस चौदहवे दिन के पूर्व भी वे भीष्मपतन युद्धारंभ से लगातार दसवे दिन बताकर उसमें विश्राम दिवस नही जोडते हैं। सारांश, मात्र चौदहवे दिन के उत्तर रात्रि में चन्द्रोदय वर्णन के संदर्भ में वे विश्राम दिवस देखते हैं , और वह मूल महाभारत में बाद में किसी ने किये हस्तक्षेप के रूप में। किन्तु पूर्व प्रकरणों में स्पष्ट बताये अनुसार उस उत्तररात्रि के चन्द्रोदय का वर्णन बाद में किया हस्तक्षेप न होकर , मूल महाभारत का ही सुसंगत मार्मिक अंश है। और महाभारत में दिया प्रदीर्घ युद्ध वर्णन लगातार अठारह दिनों की लड़ाई का न होकर आरंभ से आखिर तक कूट तरीके से विश्राम दिवस ध्यान में लेकर

किया है। इसी आधार पर महाभारत के गूढ कालगणनात्मक (एवं आगे बताये अनुसार ज्योतिषात्मक भी) कूट अब सरल सुसंगत हल हो रहे हैं।

विविध प्रकार से कूट निर्माण करने हेतु संदिग्ध शब्द रचना करने में महाकवि सिद्धहस्त है ! 'अद्य' का साधारणतया 'आज' अर्थ होता है ; किन्तु महाभारत युद्ध वर्णन में कुछ स्थानों पर उसका आशय होता है— लड़ाई पुन: प्रारंभ होने पर। इसका द्रोणपर्व में आया एक उदाहरण ऊपर दियाही है। इसके अलावा , सेनापति के रूप में अभिषेक के बाद शल्य ने कौरव सेना को किया आवाहन महाभारत में इन शब्दों में दिया है—

..अद्य चाहं रणे सर्वान् पञ्चालान् सह पाण्डवैः ॥ शल्य पर्व ७-१३.
निहनिष्यामि वा राजन् स्वर्गं यास्यामि वा हतः
अद्य पश्यन्तु मां लोका विचरन्तमभीतवत् ॥ १४.
....अद्य सैन्यानि पाण्डूनां द्रावयिष्ये समन्ततः ॥ १९.

''राजा (दुर्योधन), 'अद्य' मैं लड़ाई में पाडवों सहित समस्त पांचालों का वध करूंगा , अन्यथा मैं स्वयं मारा जाकर स्वर्ग पधारूँगा। 'अद्य' सब लोक मुझे रणभूमि पर निर्भयता से पराक्रम करते देखें। 'अद्य' में पांडवों की सेना को रणभूमि से भगा दूँगा।'' यहाँ 'अद्य' शब्द का आशय पाठक सहज ही 'आज' लेते हैं (देखिये गीता प्रेस का भाषांतर)। किन्तु हमने ऊपर देखा है कि शल्य के इस भाषण के बाद एक रात बीतने पर ही लड़ाई फिर प्रारम्भ हुई थी। अतः 'अद्य' का यहां आशय अब लड़ाई पुन: प्रारम्भ होने पर, या लड़ाई के अगले दिन, इस प्रकार है।

उसी खूबी से महाकवि 'श्वः' का प्रयोग करते हैं, जिसका अर्थ साधारण परिभाषा में शब्दशः (आगामी) 'कल' होता है। किन्तु महाभारत के युद्ध वर्णन में कई स्थानों पर उसका आशय (बीच में एक अवकाश दिन छोडकर) 'लड़ाई का आगामी दिवस' ऐसा होता है।

फिर, महाकवि कई बार प्रथम एक घटना का वर्णन देते हैं,और 'ततः' (तदुपरान्त) कहकर दूसरी घटना का उल्लेख करते हैं। यहां स्वाभाविक ही भ्रम होता है कि, वह द्वितीय घटना प्रथम घटना के तुरन्त बाद हुई होगी; किन्तु वस्तुत: उन दोनों के बीच कुछ समय (या अन्य कोई घटना) का अंतर होता है।

इसके अलावा,महाकवि के कथन में एक अन्य प्रकार की भी संदिग्धता होती है। जिस दिन शल्य को सेनापति का अभिषेक हुवा उस दिन रात में कौरवों को अच्छी नींद

आई (देखिये ऊपर श्लोक ७-२३); तथा पांडवों को भी आई —

सुष्वाप रजनीं तां तु विशल्य इव कुंजर :
ते च सर्वे महेष्वासा : पञ्चाला : पाण्डवास्तथा ॥ ७-४४.
कर्णस्य निधने हृष्टाः सुषुपुस्तां निशां तदा.... ॥ ४५.

''(युधिष्टिर ने) उस रात्रि में चोटरहित स्वस्थ हाथी के समान गहरी निद्रा ली।* इसी प्रकार वे सभी शूर पांचाल एवं पांडव वीर कर्णवध के हर्ष में उस रात्रि में सुख से सोये।'' वस्तुत: कर्णवधोत्तर एक रात्रि इसके पहिले ही निकल चुकी थी, जिसमें भी पाण्डवों ने सुख से नींद ली ही होगी। किन्तु इस द्वितीय रात्रि के सम्बन्ध में कर्णवध का विशेष उल्लेख करने से, सहज ही भ्रम हो जाता है कि, कर्णवध के बाद यह प्रथम रात्रि ही होगी ; जिससे बीच के अवकाश दिन की और पाठकों का ध्यान नहीं जाता।

संवादों का जाल

महाकवि की एक और खूबी पर यहाँ ध्यान देना आवश्यक है। समग्र महाभारत संवादस्वरूप होकर, संवादों में भी उपसंवाद है। सर्वप्रथम संवाद सौति एवं शौनक का होकर, वर्तमान महाभारत सौति ने शौनक को सुनाया ऐसा उसका स्थूल स्वरूप है। किन्तु उसने वह मुख्यत: वैशंपायन - जनमेजय संवाद के पुनर्कथन के रूप में कहा है। राजा जनमेजय यह परीक्षित का पुत्र , अभिमन्यु का पोता एवं अर्जुन का पड़पोता था। वैशंपायन महर्षि व्यास का शिष्य था। किन्तु वैशंपायन ने भी कौरव पांडवों का सारा वृत्तांत काफी मात्रा में अन्य व्यक्तियों के संवादों के रूप में वर्णन किया है। विशेष रूप से युद्ध का विस्तुत वर्णन मुख्यत: संजय-धृतराष्ट्र संवाद में आया है।

इन अनेक संवादोपसंवादों के जंजाल में लपेटे गये युद्धवर्णन के विषय में एक मजे की बात देखिये। प्राय: पर्व के प्रारंभ में वैशंपायन अपने इनेगिने शब्दों में जनमेजय से उस पर्व की घटनाएँ अति संक्षेप में बताते हैं। उस पर जनमेजय कहते है कि, मुझे यह सब विस्तार से श्रवण करने की इच्छा है। फिर वैशंपायन उन्ही घटनाओं का संजय - धृतराष्ट्र संवाद के रूप मे वर्णन प्रारंभ करते हैं। किन्तु उसमें भी संजय पहले मात्र संक्षिप्त वर्णन देता है, यद्यपि वह स्वयं वैशंपायन के प्राथमिक सारांश से कुछ अधिक होता है। वह सुनने पर धृतराष्ट्र भी संजय से कहता है कि, मुझे यह पूरे विस्तार से कथन कर। और इसके बाद

* यहाँ 'विशल्य' शब्द में एक सुन्दर श्लेष है। जहाँ हाथी के सम्बन्ध में उसका अर्थ 'किसी चोट या बीमारी से रहित' होगा, वहाँ युधिष्ठिर के सन्दर्भ में उसीका अर्थ '(कौरव सेनापती) शल्य से रहित, अर्थात् अंतिम लड़ाई में शल्य की मृत्यु के विषय में आश्वस्त' ऐसा है।

संजय विस्तृत वर्णन देता है (जो वैशंपायन जनमेजय को, तथा अंत में सौति शौनक को सुनाते है) ।

इस प्रकार महाकवि एक ही घटनाक्रम के तीन वर्णन देते हैं। और उसमें कूटमय शब्द रचना कर परस्पर विसंगति के आभास निर्माण कर देते हैं ! परिणामस्वरूप इस महाकाव्य में भिन्न- भिन्न लेखकों की रचनाएँ मिश्रित हैं ऐसा भ्रम होता है। किन्तु ये तीनों वर्णन एक ही महाकवि ने अतीव कुशलता से लिखे होकर भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा कथन किये बताये हैं, तथा मूलतः वे सब सुसंगत है।

उदाहरणार्थ , शल्यपर्व में संजय के विस्तृत वर्णन से भीम- दुर्योधन गदायुद्ध शल्यवध के दूसरे रोज बताया दीखता है, किन्तु वैशपांयन का प्रारंभिक कथन इसके विरुद्ध प्रतीत होता है। किन्तु हमने ऊपर देखे अनुसार यह विसंगति महाकवि के 'अपराण्हे तस्यान्हः' शब्दों के संदिग्ध प्रयोग से उत्पन्न होने वाला केवल आभास है। इसी प्रकार वैशपांयन के उसी प्राथमिक कथन में दुर्योधन मृत्यु के बाद संजय हस्तिनापुर पहुचने की वेला 'पूर्वाण्ह समय' कही होकर, उस शब्द का सामान्य अर्थ दिवस का पूर्वभाग, यानी सूर्योदय और मध्यान्ह के बीच का काल ऐसा है ; जबकि आगे जाकर स्वयं संजय वह वेला 'प्रत्यूष काल' यानी सूर्योदयपूर्व उषःकाल कहता है (सौप्तिक पर्व ९-६०)। किन्तु यह विसंगति भी मात्र आभास है, क्यों कि, 'पूर्वाण्हसमय' का अर्थ 'दिवस प्रारंभ होने पूर्व का समय' ऐसा भी हो सकता है।

❑

प्रकरण १०

भीष्मोपदेश की तिथियां

पांडवों की भीष्म भेंट

माघ पूर्णिमा को रात्रि समाप्ति समय हुवे अपने निधन के पूर्व भीष्म ने शरशय्या से युधिष्ठिर को गंभीर धर्मोपदेश किया, जो शांतिपर्व एवं अनुशासन पर्व में आया है। वह कितने दिन चला ? वस्तुतः शरशय्या की कुल ५८ रात्रियों में से रणभूमि पर भीष्म पतन के बाद चला शेष युद्ध (विश्राम दिनों सहित), बाद में एक माह शौच पालन, युधिष्ठिर को हस्तिनापुर में राज्याभिषेक, आदि घटनाओं के दिवस घटाने पर, उस शय्योपदेश के लिये पाच दिन बचते हैं। नीचे दिये विवेचन से इसकी पुष्टि होगी, तथा प्रकरण १५ में दी तिथि तालिका से भी यह स्पष्ट होगा। इस गणना से उपदेश आरंभ की तिथि माघ शुक्ल एकादशी होती है।

उपदेश आंरभ के एक दिन पूर्व माघ शुक्ल दशमी को श्रीकृष्ण के साथ पांडव हस्तिनापुर से कुरुक्षेत्र पर भीष्म से मिलने गये। वहां पहुचने पर श्रीकृष्ण ने भीष्म से अनुरोध किया कि, वे युधिष्ठिर को धर्मोपदेश करें। भीष्म से यह वार्तालाप चल रहा था (अध्याय ५०,५१,५२) तब सूर्यास्त समीप आया।

ततो मुहूर्ताद् भगवान् सहस्रांशुर्दिवाकर :
दहन् वैनमिवैकान्ते प्रतीच्यां प्रत्यदृश्यत ॥ शांतिपर्व, ५२-२६.

"इसके बाद कुछ ही समय (एक मुहूर्त) में भगवान सहस्त्रकिरणधारी सूर्य वनप्रदेश को (लाल रंग से आवृत कर) मानो अतिशय दग्ध करते हुए पश्चिम दिशा में दृश्यमान होने लगे"। इसके दूसरे रोज उपदेश आरंभ हुवा, यह इसके तुरंत बाद आने वाले अध्यायों से स्पष्ट है। फिर इसका एक संकेत इससे भी मिलता है कि, इस समय भीष्म के पास बैठे हुए ऋषि मुनि अपने अपने निवास स्थानों को जाने लगे, तब उन्होंने "श्वः समेष्याम" (भीष्मपर्व ५२-२९) यानी हम कल वापिस आयेंगे ऐसा कहा। इसी समय श्रीकृष्ण एवं पांडव भी भीष्म की प्रदक्षिणा कर हस्तिनापुर वापिस जाने अपने रथों में बैठे (५२-३०)।

यहां महाभारतकार ने एक तिथिसूचक संकेत रखा है। पांडव अपनी सेना सहित हस्तिनापुर (जो कुरुक्षेत्र के पूर्व मे था) वापिस जाने लगे, तब उन्हें सामने आकाश में चन्द्र दीखने लगा।

ततः पुरस्ताद् भगवान् निशाकरः
समुत्थितस्तामभिहर्षयंश्चमूम्   ५२-३३.

''उस समय भगवान चन्द्रमा उस सेना को हर्षित करता हुवा सामने आकाश में अच्छी प्रकार ऊपर उठा दिखाई दिया'' । सूर्यास्त पश्चात् पूर्व दिशा में हुआ यह 'समुत्थित' (आकाश में ऊपर की और) प्रसन्न चन्द्रदर्शन शुक्ल पक्ष के उत्तरार्ध में ही संभव होकर, शुक्ल दशमी की पुष्टि करता है ।

भीष्म के शेष दिनों के विषय में एक कूट श्लोक

यहां महाकवि ने एक कालगणनात्मक कूट श्लोक रखा है । इस दिन भीष्म से बोलने में श्रीकृष्ण ने कहा —

पंचाशतं षट् च कुरुप्रवीर
शेषं दिनानां तव जीवितस्य
ततः शुभैः कर्मफलोदयैस्त्वं
समेष्यसे भीष्म विमुच्य देहम् ॥ शांतिपर्व ५१-१४

'' कुरुश्रेष्ठ भीष्म , आपके जीवन के अब 'पंचाशतं षट् च' दिन बचे है, तदनन्तर आप देहत्याग कर अपने सत्क्रर्मो के शुभ फलारंभ के साथ (उत्तम गति को) जायेंगे''। यहाँ 'पचाशतं ' का अर्थ पचास तथा 'षट्' का छः कर, कुल छप्पन दिवस ऐसा आशय सामान्यतः लिया जाता है। किन्तु अनुशासन पर्व श्लोक १६७-२७ (प्रकरण ६ में उद्धृत) मे कहे अनुसार, भीष्मपतन से उनके निधन तक कुल अट्ठावन रात्री बीती थी। इसमें कुछ दिन भीष्मपतन के बाद युद्धकाल के थे ; बाद में शौच पालन का एक माह तथा राज्याभिषेक के दिन बीते ; और इस सबके बाद श्रीकृष्ण की भीष्म से यह भेट हो रही थी। अतः इस भेट से भीष्म का जीवन छप्पन दिन बचना कदापि संभव नही था।

'बिमलबोध' नामक भाष्य मे ये छप्पन दिन भीष्मपतन से ही गिनने का सुझाव दिया है। इस पर डॉ. बेलवलकर ठीक ही कहते हैं कि * भीष्म पतन से निधन तक (शरशय्या की) कुल अट्ठावन रात्रियाँ बीती होने से वह समय छप्पन दिन से अधिक होता है। इसके अलावा, श्रीकृष्ण भीष्म का शेष जीवन इस भेट के दिन गिने रहे थे, तब वह गिनती पीछे जाकर भीष्मपतन के प्रारंभ से करना कैसा तर्कसंगत होगा ?

* देखिये भांडारकर संस्था द्वारा प्रकाशित Anushasana Parvan, Part I, Introduction, p. LXXXII, footnote 2: तथा पुणें की 'सह्याद्रि' मासिका पत्रिका (जनवरी १९४९) में उनका मराठी लेख ।

किन्तु स्वयं बेलवलकर 'पंच षट् च' का अर्थ छः पर पाँच अर्थात पैसठ ऐसा कर, 'अशतं' यानी 'सौ से कम' ऐसा स्पष्टीकरण देते हुए , 'पंचाशतं षट् च' का कुल आशय सौ में पैसठ कम यानी ३५ बताते हैं । साथ में वे यह भी सुझाव देते हैं कि, 'पंचाशतं षट् च' के स्थान पर 'पंचाथ त्रिंशच्च' पढा जावे । इसी प्रकार भाष्यकार आचार्य नीलकंठ ' पंचाशतं षट् च' का अर्थ ५X६ करना चाहते है। किन्तु पांडवों की भीष्म से उस भेट के दिन से भीष्म का शेष जीवन तीस-पैतीस दिन भी बचना संभव नहीं था। ये लेखक शौचपालन के दिन घटाकर वे शेष दिन उतने बताने की चेष्टा करते है। दूसरे कुछ लेखक उपदेश समाप्ति के बाद कुछ दिन बीतने पश्चात भीष्म निधन हुवा ऐसा तर्क करते हैं। किन्तु यह भ्रम महाकवि के एक अन्य कूटश्लोक (अनुशासन पर्व १६७-५) के कारण होकर , उसका भी सरल स्पष्टीकरण आगे दिया है। वस्तुतः महाभारत के अनुसार उपदेश समाप्ति के ही रोज भीष्म का प्राणत्याग हुआ था।

प्रो.प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त तर्क देते है कि, * भीष्म के जीवन के विषय में वह वचन श्रीकृष्ण ने युद्धसमाप्ति के रोज (या उसके एक दिन बाद) भीष्म से बोलते हुए कहा होगा , और बाद में किसी पोथीलेखक ने वह श्लोक वहाँ से हटाकर शरशय्योपदेश के प्रारंभ के संदर्भ में रख दिया होगा। किन्तु जब स्वयं भीष्म रणभूमि पर उनके पतन से प्रारंभ हुई (शरशय्या की) कुल रात्रि अट्ठावन गिन रहे हैं, (तथा वह पतन और युद्ध समाप्ति इनके दरम्यान दो से अधिक दिनों का अंतर था,तब) युद्ध समाप्ति से उनके निधन तक छप्पन दिवस कैसे होंगे ? इसके अलावा, ऊपर कहे अनुसार श्रीकृष्ण भीष्म का शेष जीवन उस भेट के दिन से गिन रहे थे, तब वह समय युद्धसमाप्ति तक पीछे जाकर गिनना कैसा उचित होगा ?

इस सारे संदर्भ में इस कूट का सुसंगत आशय इस प्रकार प्राप्त हो रहा है। महाकवि ने यहां 'पंचाशतं' का प्रयोग 'पचास' इस साधारण अर्थ मे नही किया है यह कुछ विद्वानों का कहना ठीक ही है। उसका विग्रह पंच+अशतं ऐसा है। किन्तु इसके बाद महत्त्व की बात यह कि, 'अशतं' में 'शतं' शब्द भी यहां निश्चित 'एक सौ' इस सामान्य अर्थ का नही है। उसका स्थूल अर्थ 'बहुत' ऐसा भी होता है। इस प्रकार 'अशतं' का अर्थ 'बहुत नहीं', अर्थात् 'थोड़े ही' यह होगा। श्रीकृष्ण यहाँ भीष्म से कहते हैं कि, ''तब जीवितस्य दिनानां शेषं अशतं, पंच षट् च'', अर्थात् 'आपके जीवन के शेष दिन अब बहुत नही (थोड़े ही) है बल्कि पाँच-छः ही हैं'। और यहां प्रस्थापित तिथि गणना के अनुसार माघ

* "Ancient Indian Chronology," pp. 22, 43-44.

शुक्ल दशमी को सायंकाल में श्रीकृष्ण भीष्म से यह कह रहे थे; और ठीक साडे पांच दिन बाद पूर्णिमा के रात्रिसमाप्ति समय भीष्म का निधन हुवा !

उपदेश के पाच दिन

उपदेश का प्रारंभ माघ शुक्ल एकादशी को हुवा। प्रथम दिन का वृत्तांत शांतिपर्व के अध्याय ५३ से ५८ में आया है। इस दिन सूर्योदय के कुछ पूर्व श्रीकृष्ण जाग उठे (५३-१)। उन्होंने युधिष्ठिर को भीष्म के पास चलने प्रेरित किया। भीष्म के पास पहुचने पर युधिष्ठिर ने उनका आशीर्वाद प्राप्त कर प्रश्न करना प्रारंभ किया (अध्याय ५६)। सूर्यास्त समय पांडव हस्तिनापुर वापिस लौटे।

ततो दीनमना भीष्ममुवाच कुरुसत्तमः ॥ ५८-२७.
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां पादौ तस्य शनैः स्पृशन्
श्व इदानीं स्वसन्देहं प्रक्ष्यामि त्वां पितामह
उपैति सविता ह्यस्तं रसमापीय पार्थिवम् ॥ २८.
दृषद्वतीं चाप्यवगाह्य सुव्रताः
कृतोदकार्थाः कृतजप्यमंगलाः
उपास्य संध्यां विधिवत् परंतपा-
स्ततः पुरं ते विविशुर्गजाव्हयम् ॥ ३०.

"तदनंतर कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने भीष्म के चरण धीरे से स्पर्श कर दीनचित्त होकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा, 'पितामह, सूर्य (दिन भर) पृथ्वी का रस शोषण कर अब अस्ताचल के समीप जा रहा है, अतः मैं मेरा (अगला) प्रश्न आपसे कल पूछूँगा'— २७,२८. .... और उन शत्रुनाशक उत्तमव्रतधारी वीरों (पांडवों) ने दृषद्वती नदी में स्नान कर शास्त्रोक्त विधि से जलअर्घ्य, तप आदि मंगल कर्म एवं संध्योपासना की और तदनन्तर वे हस्तिनापुर में वापिस आ पहुँचे"।

उपदेश के दूसरे रोज माघ शुक्ल द्वादशी थी। इस दिन का वृत्तांत शांतिपर्व के अध्याय ५९ से १६७ में आया है, जिसका आरंभ इस प्रकार है—

ततः कल्यं समुत्थाय कृतपूर्वाण्हिक क्रियाः
ययुस्ते नगराकारैः रथैः पाण्डवयादवाः ॥ शान्तिपर्व ५९-१

प्रतिपद्य कुरुक्षेत्रं भीष्ममासाद्य चानघ
सुखां च रजनीं पृष्ट्वा गाङ्गेयं रथिनां वरम् ॥ २.

"तदनंतर पौ फटने के समय उठकर प्रातःकालीन कर्म कर पांडव तथा श्रीकृष्ण नगराकार (विशाल) रथों में (हस्तिनापुर से) निकले - १. निष्पाप जनमेजय, कुरुक्षेत्र पहुँचने पर महारथी गंगासुत भीष्म के पास जाकर उन्होंने उनसे रात सुखपूर्वक बीतने के विषय में पृच्छा की - २"। इस रोज युधिष्ठिर के बाद नकुल ने भी एक प्रश्न पूछा (१६६-१), जिसका उत्तर देकर भीष्म चुप हो गये। तदनन्तर पाण्डव हस्तिनापुर लौट गये, और उन्होंने आपस में ही कुछ धर्मचर्चा की।

इत्युक्तवति भीष्मे तु तूष्णींभूते युधिष्ठिरः
पप्रच्छावसथं गत्वा भ्रातॄन् विदुरपञ्चमान् ॥ शांतिपर्व, १६७-१.
धर्मे चार्थे च कामे च लोकवृत्तिः समाहिता
तेषां गरीयान् कतमो मध्यमः को लघुश्च कः ॥ २.

"इतना कहकर भीष्म चुप हो गये ; तब युधिष्ठिर (शेष पांडवादि के साथ) अपने महल गये और चार भाई एवं पांचवे विदुर इन्हें प्रश्न किया कि— १, प्रायः लोकों में धर्म , अर्थ और काम के प्रति प्रवृत्ति होती है, तो इन तीनों में कौन सा श्रेष्ठ , मध्यम तथा कनिष्ठ है ? — २"।

उपदेश के तीसरे दिन का वृत्तांत शांतिपर्व के अध्याय १६८ से ३३९ में आया है। रोज सुबह कुरुक्षेत्र जाना तथा सायंकाल वापस हस्तिनापुर आना, यह प्रथम दो दिनों पर महाभारत मे स्पष्ट बताई प्रथा आगे भी चालू रही। महाकवि ने इस जाने आने का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, फिर भी एक कूट श्लोक द्वारा इसका संकेत दे रखा है, जिसकी चर्चा आगे की है। तीसरे दिन के प्रवचन का आरंभ निम्न श्लोक से सूचित होता है। वैशंपायन जनमेजय से कहते हैं कि, अपने निवास स्थान पर (हस्तिनापुर में) आपस में हुई धर्मचर्चा मे आखिर स्वयं युधिष्ठिर ने भी अपना मत व्यक्त किया। वह श्रवण करने पर—

स चापि तान्धर्मसुतो महामना-
स्तदाप्रतीतान् प्रशशंस वीर्यवान्
पुनश्च पप्रच्छ सरिद्वरासुतं
ततः परं धर्ममहीनचेतसम् ॥ शांतिपर्व, १६७-५१.

" तब वे (वहां उपस्थित सब) प्रसन्नचित्त हुवे और पराक्रमी महात्मा युधिष्ठिर ने भी उनकी प्रशंसा की ;और तदनंदर उसने पुनः उदारहृदयी गंगासुत भीष्म से धर्म के विषय में

प्रश्न किया'' । आपस की चर्चा पांडवों के निवास स्थान पर हुई थी, और उधर भीष्म कुरुक्षेत्र पर थे । महाकवि ने यहां 'ततः' का संदिग्ध प्रयोग किया होकर, तीसरे दिन पांडव फिर हस्तिनापुर से भीष्म के पास गये यह इस श्लोक से सूचित होता है । इस दिन का उपदेश अध्याय ३३९ तक चलकर , उसके बाद अध्याय ३४० से ३५१ में भीष्मोपदेश से जिसका संबंध नही ऐसा एक वैशंपायन- जनमेजय संवाद आया है । इस पर से दीखता है कि, उस दिन का भीष्मोपदेश अध्याय ३३९ के बाद स्थगित हुआ । उस अध्याय के अन्त में भीष्म, वैशंपायन तथा सौति के ऐसे उद्‌गार भी हैं , जो एक विषयखंड का समारोप सूचित करते है ।

चौथे दिन का उपदेश शांतिपर्व अध्याय ३५२ से ३६४ तथा अनुशासन पर्व अध्याय १ से १०९ में आया है । इस दिन के उपदेश की समाप्ति का संकेत इस श्लोक में मिलता है—

शरतल्पगतं भीष्मं वृद्धं कुरुपितामहम्
उपगम्य महाप्राज्ञः पर्यपृच्छद् युधिष्ठिरः ॥ ११० - १.

''शरशय्यास्थित कुरुकुलपितामह वृद्ध भीष्म के पास जाकर महाबुद्धिवान युधिष्ठिर ने प्रश्न किया'' । यदि यहां नया दिन प्रारंभ न होता, तो युधिष्ठिर ने प्रश्न पूछने हेतु फिर शरशय्या स्थित भीष्म 'के पास जाने का' विशेष उल्लेख करने में क्या तूक था ?

अंतिम पांचवे दिन का वृत्तांत अनुशासन पर्व अध्याय ११० से १६५ तक आया है। यह माघ पूर्णिमा का दिवस था । इस दिन उपदेश देते देते भीष्म ने बहुत थकावट अनुभव की, और उन्हें लगा कि अब मृत्यु करीब है (१५८-४) । तदुपरान्त थोडासा और भाषण कर भीष्म ने अपना धर्मोपदेश अंतिम रूप से समाप्त किया; तथा युधिष्ठिर को आशीर्वाद देकर हस्तिनापुर वापिस जाने का आदेश दिया ; और कहा कि मेरे प्राणत्याग हेतु नियुक्त उत्तरायण प्रारंभ के ठीक समय फिर मेरे पास आना (१६६-१४) । 'ऐसाही करुंगा' कहकर राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर वापिस गये (अनुशासन पर्व १६६-१५) ।

महाकवि का एक और 'काल-कूट'

इसके बाद भीष्म निधन हुआ । पाचवे दिन उपदेश समाप्त होने पर पाण्डव हर रोज के अनुसार हस्तिनापुर वापिस गये ; और भीष्मनिधन के लिये नियुक्त समय पर वे पुनः भीष्म के पास आये । वे कितने समय बाद वापिस आये ? मेरी गणना के अनुसार, पाण्डव (माघ) पूर्णिमा को सायंकाल भीष्म से वापिस हस्तिनापुर गये, तथा उसी रोज उत्तर रात्रि में वे

वापिस भीष्म के पास आये । किन्तु इस संबंध में भी महाभारत की एक पंक्ति ने अभ्यासको के लिये बड़ी ही उलझन पैदा कर रखी है !

उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पंचाशन्नगरोत्तमे
समयं कौरवाग्रस्य सस्मार पुरुषर्षभः ॥ अनुशासन पर्व १६७-५.
स निर्ययौ गजपुराद् याजकैः परिवारितः
दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणं ॥ ६.

यहां अंतिम तीन पंक्तियों में कहा है कि, ''पुरुषश्रेष्ठ (युधिष्ठिर) ने कुरुकुल के अग्रणी (भीष्म) द्वारा (निधन के लिये) निश्चित किये समय का ख्याल किया ; और सूर्य (दक्षिणायन से) निवृत्त होकर उत्तरायण में प्रवृत्त (प्रविष्ट) देख (अंत्यविधि हेतु)वह उपाध्यायों सहित (पुनः भीष्म के पास पहुंचने) हस्तिनापुर से निकला'' । किन्तु प्रथम पंक्ति का आशय प्रायः यह लिया जाता है कि, युधिष्ठिर ने इस दरम्यान 'पंचाशत्' यानी पचास रात्रि उस उत्तम नगर (हस्तिनापुर) में बिताने बाद (उसे भीष्मनिधन का समय प्राप्त होने को स्मरण हुवा) । किन्तु उपदेश समाप्ति एवं भीष्मनिधन के दरम्यान पचास रात्रि कैसी बीत सकती थी ? शरशय्या पर भीष्म ने कुल अट्ठावन रात्रि बिताई थी। उनमें से भीष्मपतन बाद के लड़ाई के शेष दिन, पांडवो द्वारा शौच पालन का मास , युधिष्ठिर को राज्याभिषेक के तथा बाद से भीष्मोपदेश के दिन, यह सारा घटाने पर उस उपदेश समाप्ति से भीष्मनिधन तक पचास रात्रि होना सर्वथा असंभव था।

डॉ. बेलवलकर यहां 'शर्वरीः' (जो बहुवचन का रूप है) के स्थान पर 'शर्वरीम्' यह एकवचनी रूप, तथा 'पंचाशत्' के स्थानपर 'पंचाह' (यानी पाच दिन) पढ़ा जावे ऐसा सुझाव देकर कहते है कि, पोथी लेखकों के प्रमाद से 'ह' का 'श' हो सकता है। उनकी राय में भीष्मोपदेश करीब एक मास चलकर , उसकी समाप्ति बाद युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में पांच दिन और एक रात बिताने पश्चात् भीष्म निधन समय प्राप्त हुवा । किन्तु मैंने ऊपर बताये अनुसार भीष्म के उपदेश में एक माह तथा उसके बाद निधनपूर्व पांच दिन बीतना सम्भव नहीं था। श्री बेलवलकर की वह सूचना अमान्य कर डॉ. रा. ना. दांडेकर लिखते हैं कि, इस श्लोक में उल्लेखित पचास रात्रियों का सुसंगत स्पष्टीकरण असंभव है । * प्रो. सेनगुप्त (पूर्व उल्लेखित, pp.7, 20)इस श्लोक का अर्थ देते हैं कि,

* भांडारकर संस्था का Anushasana Pravan, Part I, Introducation p. Lxxxii, and also p. 1121.

युद्ध समाप्ति से युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में पचास रात्रि बिताने बाद भीष्मनिधन समय आया। किन्तु यह महाभारत के उस कथन से विसंगत है कि, युद्ध समाप्ति बाद युधिष्ठिर ने एक माह शौच पालन में हस्तिनापुर के बाहर ('बहिःपुरात्', शांतिपर्व १-२) व्यतीत करने पश्चात् उसने हस्तिनापुर में प्रवेश किया (शांतिपर्व अध्याय ३७)।

अब उक्त कूट वचन का सुसंगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत है। उसमें 'पंचाशन्नगरोत्तमे' का विग्रह 'पंचाशत् + नगरोत्तमे' ऐसा न होकर, 'पंच + अशम् (अशं) + नगरोत्तमे' ऐसा है ! पंच यानी पाच ; इस संख्या की संगति 'शर्वरीः' इस बहुवचनी शब्द से ठीक बैठती है। इसके बाद ध्यान में लेना है कि, जिस प्रकार 'अशत्' (या पंचाशत्) के सामने 'न' अक्षर आनेपर 'त्' का 'न्' होकर 'अशन्न रूप होगा, उसी प्रकार अशम् (अशं) के सामने भी 'न' आनेपर 'म्' का 'न्' होकर वही 'अशन्न' रूप हो सकेगा ! ''शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये'' इस वैदिक वचन में प्रथम दो अक्षर 'शन्नो' ऐसे भी लिखे जाते हैं। वही बात ''शन्नो अस्तु (भव) द्विपदे शं चतुष्पदे'' (ऋग्वेद १० -४५-४३,१०-८५-४४) इस मंत्र की है। इसी का एक उदाहरण महाभारत में भी मिलता है। संजय धृतराष्ट्र से कहता है —

इत्येवं द्रोणपुत्रस्य निशम्य करुणां गिरम्
प्रत्यूषकाले शोकर्तः प्रादवन्नगरं प्रति ॥ सौप्तिक पर्व, ९-६०.

''(दुर्योधन के अंतिम क्षणों में) अश्वत्थामा ने कहे करुण वचन सुनकर मैं शोक से व्याकुल होकर प्रत्यूषकाल में हस्तिनापुर शीघ्रता से चला आया''। यहाँ 'प्रादवन्नगरं' का विग्रह '(अहम्) प्राद्रवम् नगरं' ऐसा होकर 'म्' में 'न' मिलाकर 'न्न' हुवा है।

इसी प्रकार 'पंचाशन्नगरोत्तमे' में 'नगरोत्तमे' के पहिले (पंच + अशम् =) 'पंचाशम्' है, न कि 'पंचाशत्'। अब 'शम्' (शं) यानी कल्याणप्रद, सुखी, स्वस्थ ; अतः 'अशम्' यानी असुखी, दुखी, उदास, अस्वस्थ ऐसा अर्थ होता है। इस दृष्टि से उक्त पंक्ति का अर्थ होगा, ''युधिष्ठिर ने उस श्रेष्ठ नगर (हस्तिनापुर) में पांच रात्रि दुखी (उदास) मानस से बिता ने बाद'' (भीष्मनिधन के समय का ध्यान रखकर वह भीष्म के पास वापिस आया)।

ये पाच दुखी रात्रियॉं कौनसी ? उपदेश पूर्ण समाप्त होने बाद भीष्मनिधन के पूर्व युधिष्ठिर ने ये पांच अतिरिक्त रात्रियाँ हस्तिनापुर में व्यतीत की ऐसा नही। शुक्ल दशमी को श्रीकृष्ण के साथ पांडव भीष्म को मिलने गये थे तब श्री कृष्ण ने भीष्म से (ऊपर स्पष्ट किये अनुसार) कहा कि, अब आपका जीवन मात्र पाच- छः दिन ही बचा है ; क्यों कि तत्कालीन पंचांगों से उत्तरायण प्रारंभ की तिथि एवं वेला ज्ञात हुई ही होगी। इस परिस्थिति में पितामह भीष्म के उन आखिरी दिनों मे उनसे थोडे समय भी दूर न रहने की युधिष्ठिर को स्वाभाविक ही

इच्छा थी। किन्तु दैनंदिन राजकार्य के हेतु उसे रोज राजधानी वापिस जाना आवश्यक था। अतः उपदेश प्रारंभ होने बाद भी वह भीष्म के उन अंतिम दिनों में अति कष्टयुक्त अंतःकरण से उन के पास से दूर होकर प्रतिदिन हस्तिनापुर वापस जाता था। और रात हस्तिनापुर में बिताकर फिर दूसरे दिन भीष्म के पास आता था। युधिष्ठिर की उस समय की इस दुखी मनः स्थिति का महाभारत कार ने शांतिपर्व ५८-२७,२८ (ऊपर उद्धृत) में स्पष्ट उल्लेख किया है।

इस प्रकार मरणोन्मुख भीष्म से दूर रहकर युधिष्ठिर ने माघ शुक्ल दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी एवं चतुर्दशी को हस्तिनापुर मे बिताई पाच रात्रियों का मार्मिक उल्लेख महाकवि ने कूटात्मक शैली मे उक्त श्लोक में किया है। किन्तु इन पाच रात्रियों का ही ऐसा उल्लेख क्यों ? क्या उपदेश के अंतिम दिन की (पूर्णिमा की) रात्रि भी युधिष्ठिर नें अति दुखी मानस से व्यतीत नही की होगी ? किन्तु उस दिन उपदेश समाप्ति बाद युधिष्ठिर हस्तिनापुर वापिस आने पर, उसी रात्रि के समाप्ति प्रहर में भीष्म के प्राणत्याग का समय होने से युधिष्ठिर फिर उसी रात्रि में अन्त्येष्टि किया की सारी सामग्री लेकर कुरुक्षेत्र पर भीष्म के पास जाने निकला ; और इस प्रकार यह पूर्णिमा की रात्रि उसने हस्तिनापुर में नही बिताई *।

अतः प्रस्तुत श्लोक का उपलब्ध पाठ पूर्णतया सुसंगत एवं मार्मिक है। बात इतनीहि कि, स्वयं महाकवि ने 'पंचाशं नगरोत्तमे' के बजाय 'पंचाशन्नगरोत्तमे' ऐसा महाभारत की सर्वप्रथम पोथी में लिखकर (या गणेशजी द्वारा लिखवाकर !) सदियों तक अभ्यासकों के लिये एक कूट कर रखा !

कुल मिलाकर खुबी यह है कि, एकसमान प्रतीत होने वाले शब्दसमूहों के भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग कर महाकवि ने गहन कूट निर्माण कर रखे हैं ! भीष्म की शरशय्या पर कुल रात्रि गिनने में वे 'अष्टपंचाशतं' कहते हैं, जहाँ 'पंचाशतं' का सीधा अर्थ पचास (और इसलिये 'अष्टपंचाशतं' का अर्थ अट्ठावन) है। किन्तु भीष्म के उपदेशपूर्व शेष दिन गिनते समय वे 'पंचाशतं षट् च' कहते हैं, जहाँ 'पंच' याने पाच यह संख्या होकर 'अशतं' शब्द अलग है ! और अंत में, युधिष्ठिर की भीष्मनिधनपूर्व उदास रात्रियों का उल्लेख करते समव महाकवि द्वारा प्रयुक्त 'पंचाशन्नगरोत्तमे' शब्दसमूह में भी उद्दिष्ट संख्या पांच ही होने पर भी उससे जुड़ा शेष शब्द 'अशम्' है !

युद्धकाल की भीष्मनिधन तक की संपूर्ण तिथितालिका, सूर्यचन्द्र के नक्षत्रस्थानों सहित, आगे प्रकरण १५ में दी है। ❑

* इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में मैंने उक्त श्लोक की पांच रात्रियों में दशमी की रात्रि न गिन कर पूर्णिमा की समाविष्ट की थी ; अब उसमें बदल किया है।

भाग ३

ज्योतिषात्मक कूट

प्रकरण ११

शांतिवार्ता दिन की ग्रहस्थिति

विद्वानों के विविध मत

महाभारत में ज्योतिष विषयक कूट भी होकर वे अधिकतर युद्धकाल के वर्णन में आये हैं। उनको स्पष्ट करने के भी विविध प्रयास किये गये हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार महाभारत के ये ग्रहस्थिति सम्बन्धी उल्लेख पूर्णतया असंगत एवं असम्भव है, तथा उन से कुछ भी युक्ति संगत आशय निकालना संभव नही। डॉ. काणे लिखते हैं, "" The astronomical passages of the Mahabharata..... are hopelessly inconsistent and that no certain chronological conclusion can be drawn therefrom.... To me it appears probable that the final redactor of the Mahabharata had two or more sets of astronomical data about the war before him and without trying to examine and sift them he included them all in his work ..... I hold that either the Mahabharata passages on the positions of the planets were interpolated at a very late stage or are hopelessly inconsistent '' *। स्वामीकन्नु पिल्लई कहते हैं, '' Some of the Mahabharata references to astronomy afford an even better illustration of reckless astrological statements made without due regard to astronomical possibilities'' ❑. चिं. वि. वैद्य भी कहते हैं, ''.... the astronomical references in the Mahabharata of which much has been made by some thinkers. We, on our part, believe that most of these references are of doubtful authenticity. In other words

* पूर्व उल्लेखित, Vol. III p. 923.

❑ Quoted in S. Raghavan's "The Date of the Maha Bharata War," p. 36.

they do not belong to the original Mahabharata of Vyas but to its latest edition. It will be admitted by all that some of them are fanciful and absurd''*.

कुछ अन्य विद्वानों को महाभारत के ज्योतिषात्मक उल्लेख सुसंगत प्रतीत होते है ; और वे उस आधार पर महाभारत युद्ध का वर्ष निश्चित करने का प्रयास करते हैं। किन्तु उनके निष्कर्ष ईसा पूर्व करीब बत्तीसवी सदी से ईसा पूर्व करीब बारहवी सदी तक भिन्न भिन्न होते हैं।

इनमें से प्रथम गुट द्वारा की गई महाभारत के ज्योतिषात्मक वचनों की आलोचना उन वचनों का वास्तविक गूढ आशय समझ में न आने का परिणाम है। अब उन कूटों का भी सुसंगत हल उपलब्ध हो रहा है, जो आगे के प्रकरणों मे स्पष्ट किया है। किन्तु मजे की बात यह कि, द्वितीय गुट के लेखकों के तर्क भी प्राय: गलत हैं। महाभारत के ज्योतिषात्मक उल्लेख अर्थपूर्ण है यह उनका मत ठीक है ,फिर भी वे जो तिथियाँ, दिन एवं नक्षत्र गृहीत धरते हैं वे सही नही। इस कारण उनपर आधारित इनके अनुमान भ्रामक हैं। यह भी आगामी विवेचन से स्पष्ट होगा।

महाभारत की रचना कूटमय होने से कई बार एक वचन का आशय पूरा स्पष्ट करने कुछ बाद के श्लोकों का विवेचन आवश्यक होता है। जैसे वनवास प्रारंभ तिथि निश्चित करने पूर्व हमें अज्ञातवास समाप्ति तिथि निश्चित करनी पड़ी। ज्योतिषात्मक विवेचन में भी कहीं कहीं बाद की कोई स्थिति निश्चित कर, फिर उसके आधार पर उसके पूर्व की स्पष्ट करना आवश्यक हो सकता है।

ग्रहस्थिति वर्णन का प्रारंभ

ग्रहस्थिति का प्रथम ब्यौरेवार वर्णन श्रीकृष्ण की हस्तिनापुर में हुई शांति वार्ता के वृत्तांत में आता है। श्रीकृष्ण उस प्रवास पर उपप्लव्य से निकले उस समय चन्द्र रेवती नक्षत्र में था , तथा जिस दिन शांतिवार्ता हुई उस दिन चन्द्र पुष्य नक्षत्र में या, यह महाभारत में कहा है (देखिये प्रकरण ५)। इसके अलावा शांतिवार्ता के दिन की कुछ ग्रहों की भी स्थिति महाभारतकार ने दी होकर, वह हस्तिनापुर की सीमा पर श्रीकृष्ण से वार्तालाप करने में कर्ण के वचन द्वारा इस प्रकार बताई गई है -

* ''Mahabharata - a Criticism''(p. 64)| ऐसे ही और मतों के लिये देखिये ''History and Culture of the Indian People" (Bharatiya Vidya Bhavan, Vol. I, p. 272) तथा डॉ. दप्तरी (पूर्व उल्लेखित)।

प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः
शनैश्चरः पीडयति पीडयन् प्राणिनोऽधिकम् ॥ उद्योगपर्व १४३ -८
कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन
अनुराधां प्रार्थयते मैत्रं संगमयन्निव ॥ ९
नूनं महद्भयं कृष्ण कुरूणां समुपस्थितम्
विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रां पीडयते ग्रहः ॥ १०
सोमस्य लक्ष्म व्यावृत्तं राहुरर्कमुपैति च ।.... ११

इन श्लोकों का सम्बन्ध आगे बताये ग्रहों से है।

शनिः— श्लोक ८ में कहा है, "तेजस्वी दुष्टग्रह शनि प्राजापत्य नक्षत्र को पीड़ा दे रहा होकर, प्राणियों को अत्यन्त पीड़ादायक है" । यहाँ शनि का स्थान स्पष्ट नहीं बताया है, किन्तु छः रोज बाद शनि अनुराधा में होना सूचित किया गया है (देखिये प्रकरण १३) । शनि की गति बहुत मंद होने से इस दिन भी उसे वहीं माना जा सकता है। 'प्राजापत्य' (जिसकी देवता प्रजापति है) नक्षत्र (कृत्तिका के बाद की) रोहिणी या मूल नक्षत्र है। किन्तु आगे जाकर भीष्मपर्व श्लोक ३-३२ में स्पष्ट किया गया है कि, इन दिनों में शनि रोहिणी को पीड़ा दे रहा था ; और यद्यपि रोहिणी का एक अर्थ ज्येष्ठा भी है , ज्येष्ठा की देवता प्रजापति न होने से यहां ज्येष्ठा विचाराधीन नही है। निष्कर्ष यह कि, इस समय शनि (अनुराधा में होकर) (कृत्तिका के बाद की) रोहिणी को पीडा दे रहा था। वह ऐसी दूरी से यह कर सकता था।

मंगल :— श्लोक ९ में कहा है, "मधुसूदन(कृष्ण), मंगल (अंगारक) ग्रह ज्येष्ठा में वक्र होकर अनुराधा के पास पहुंचा है ; (ज्येष्ठा की ओर पीठकर) वह मानो (मैत्र नक्षत्र अर्थात्) अनुराधा से मीलनार्थ अनुरोध कर रहा है ! " इस प्रकार मंगल इस समय वक्र गति में ज्येष्ठा से वापिस आता हुआ अनुराधा में था।

राहू :— श्लोक १० में कहा है, " (कोई) एक ग्रह विशेष रूप से चित्रा को पीड़ा दे रहा है, जो कुरुवंश के लिये वास्तव में बहुत भयसूचक है" । यह ग्रह श्लोक ९ में उल्लेखित मंगल हो या फिर श्लोक ११ में उल्लेखित राहू। छः दिन बाद राहू विशाखा में था (प्रकरण १३) ; और उसकी धीमी गति देखते इस रोज भी राहू वहीं माना जा सकता है। वहाँ से वह चित्रा को पीड़ा दे सकता था। इसके अलावा श्लोक ११ में कहे अनुसार चन्द्र का विशिष्ट चिन्ह लुप्त हो गया है, तथा 'राहू सूर्य के निकट जा रहा है'। इस रोज सूर्य स्वाति में था यह आगे बताया है। इस प्रकार राहू (जो हमेशा उलटा घूमता है) सूर्य के निकट जा रहा था। ❑

प्रकरण १२

मघा नक्षत्र का दिन

चन्द्र मघा नक्षत्र में

संजय ने भीष्म को दिये प्रथम युद्ध वृत्तांत में न केवल प्रत्यक्ष युद्धारंभ से, अपितु उसके पूर्व दोनों सेना कुरुक्षेत्र पहुंचकर उन्होंने अपने- अपने शिबिर लगाये आदि हकीकत भी आयी है। उसमें ये दो श्लोक आते हैं —

यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ भीष्मपर्व, १७-१
मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्तमहाग्रहाः ॥ २

"भगवान कृष्णद्वैपायन व्यास ने कहा था तदनुसार सब राजे (कुरुक्षेत्र पर) एकत्र हुवे — १. उस दिन चन्द्र मघा नक्षत्र में था , तथा आकाश में सात महाग्रह देदीप्यमान दिखे — २" ।

महाभारत के संस्कृत भाष्यकार नीलकंठ उन श्लोकों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष युद्धारंभ से देखते हैं। किन्तु युद्धारंभ के समय चन्द्र मृग नक्षत्र में था यह भी उनकी राय होने से, वे उस रोज चन्द्र मघा में नहीं बता सकते। अतः वे उपरोक्त श्लोक में 'मघा' का आशय 'मघा नक्षत्र के सहचर पितृदेवताओं का निवास ' ऐसा कर कहतें हैं कि, उस युद्ध में मरनेवाले योद्धाओं की उत्तम गति हेतु इस युद्धारंभ के रोज चन्द्र पितृलोक में स्थित था। चिं. वि. वैद्य भी यह युद्धारंभ का दिन मानते हैं। किन्तु वे भी युद्धारंभ समय चन्द्र मृग में मानते हैं , अतः यहाँ मघा नक्षत्र की संगति बैठाने असमर्थ होकर लिखते हैं कि, मघा का यह उल्लेख एक गूढ है ('महाभारताचा उपसंहार', मराठी, पृष्ठ १२६)।

श्री दफ्तरी उस दिन को युद्धारंभ दिन नहीं मानते, किन्तु यहाँ 'मघा' का अर्थ 'मूल' नक्षत्र करते हैं (पू.उ. PP. 26-27) । इस पर श्री काणे ठीक ही कहते हैं कि, (पू.उ. PP. 907-917), महाभारतकार का वैसा आशय होता तो क्या वे 'मघाविषयगः' के स्थान पर सीधा 'मूलविषयगः' ही नहीं कहते ? फिर भी स्वयं काणे इस दिन को युद्धारंभ का ही दिन मानकर अर्थ देते हैं कि, उस दिन चन्द्र मघा के 'क्षेत्र' में यानी मघा के आसपास था। किन्तु युद्धारंभ के समय चन्द्र ज्येष्ठा में था यह भी उनकी धारणा होने से, वे आखिर लिखते हैं कि, महाभारत में दिग्दर्शित युद्धारंभ तिथि एवं नक्षत्र में कुछ विसंगति है। और अंत मे, महाभारत

की एक पोथी में तो ''मघाविषयगः सोमः'' के स्थानपर ''मेघावनद्धमाकाशं'' (आकाश मेघों से व्याप्त था) ऐसा लिख दिया है ! *

वह युद्धारंभ दिन नहीं था

वस्तुत: इस श्लोक में 'मघाविषय' यानी मघा नक्षत्र ही है ; किन्तु यह युद्धारंभ का दिन नहीं था । चन्द्र पुष्य नक्षत्र में था उस रोज श्रीकृष्ण ने कर्ण को सातवे दिन बाद आनेवाली अमावास्या युद्धारंभार्थ घोषित की थी । चन्द्र औसतन प्रतिदिन एक नक्षत्र आगे बढ़ता है ; और पुष्य से मघा मात्र दो ही स्थान आगे है । यह देखते मघा नक्षत्र का वह दिवस युद्धारंभ का नहीं हो सकता । उस दिन से अमावास्या पांच दिन बाद थी ; और युद्धारंभ अमावास्या को ही हुआ था यह पूर्व प्रकरणों में सिद्ध किया है ।

मघा नक्षत्र दिवस के वृत्तांत मे (भीष्म पर्व अध्याय १७,१८,१९) कहे अनुसार उस दिन पांडव सेना की व्यूहरचना अर्जुन ने की थी । किन्तु प्रत्यक्ष युद्ध के प्रथम दिन पांडव सेना की व्यूहरचना धृष्टद्युम्न ने की थी (उद्योगपर्व अध्याय १६४ श्लोक १०,११,१२ तथा गीता १- ३) । इसके अलावा, युद्धारंभ के दिन लड़ाई शुरू होने के पहिले गीतोपदेश हुवा, और इसके बाद युधिष्ठिर ने रणभूमि पर ही भीष्म द्रोण को वंदन किया । परंतु मघा नक्षत्र दिवस के वर्णन मे इसका तनिक भी उल्लेख या संकेत नही ।

महाकवि का कूट

पुष्य नक्षत्र के दिन दोना सेनाओं ने अपने अपने स्थान से कुरुक्षेत्र को प्रस्थान करने बाद दूसरे दिन वे कुरुक्षेत्र पहुची । किन्तु युद्धारंभार्थ घोषित अमावास्या अभी कुछ दिन दूर थी । बीच के दिनो मे दोना सेनाओं ने कुरुक्षेत्र के अपने अपने हिस्से में शिबिर निर्माण कर युद्ध के पूर्वाभ्यास (Rehearsals) किये ! और मघा नक्षत्र दिन का महाकवि नें दिया वर्णन इन पूर्वाभ्यासों का है, प्रत्यक्ष लड़ाई का नहीं ! इस वर्णन में महाभारतकार शंख, दुंदुभि आदि के ध्वनि का तथा हाथी , अश्व , रथों के चलन से होनेवाले कोलाहल का बारबार उल्लेख करते है ; किन्तु प्रत्यक्ष बाणवर्षा , शस्त्रों के एक दूसरे पर प्रहार , या किसी के हताहत होने का उसमें नाम भी नहीं ! प्रत्यक्ष लड़ाई के वर्णन में ऐसे स्पष्ट उल्लेख अवश्य आये

* देखिये भांडारकर संस्था द्वारा प्रकाशित Bhishma Parvan p. 767, note on verse 17 - 2

हैं । स्पष्ट ही मघा नक्षत्र दिवस पर दोनो सेनाओं ने रणभूमि पर जो किया वह मात्र पूर्वाभ्यास रूप था (इसकी अधिक चर्चा प्रकरण १७ में की है) ।

मघा नक्षत्र दिवस पर युद्धारंभ होने का भ्रम निर्माण करने में महाभारत कार की एक और खूबी कारण हुई है । युद्धारंभ की अमावास्या के पूर्व रात्रि की ग्रहस्थिति का विस्तृत वर्णन महाभारत में कृष्ण चतुर्दशी को हुए व्यास - धृतराष्ट्र संवाद में आया है (देखिये प्रकरण १३) । मघा नक्षत्र दिवस के चार दिन बाद हुवा वह संवाद वैशंपायन ने स्वयं के शब्दों में जनमेजय को कथन किया है । इसके विपरीत मघा नक्षत्र दिवस का वर्णन संजय ने धृतराष्ट्र को दिये प्रथम युद्ध वृत्तांत में आया है ; उस वृत्तांत में संजय ने प्रत्यक्ष लड़ाई के पूर्व कुछ दिन कुरुक्षेत्र पर हुई घटनाओं की भी जानकारी दी है । और खास बात यह कि, महाभारत में संजय का वह वृत्तांत (और अत: मघा नक्षत्र दिवस का वर्णन) वैशंपायन द्वारा जनमेजय को कृष्ण चतुर्दशी को हुए व्यास - धृतराष्ट्र संवाद के कथन के बाद आता है । इससे , वह मघा नक्षत्र दिवस उस कृष्ण चतुर्दशी के बाद का होकर युद्धारंभ दिवस होगा ऐसा महाभारत के अभ्यासकों को आभास होता रहा ।

सप्त महाग्रह दीप्यमान थे याने क्या ?

अब उस दिन आकाश में सात महाग्रह तेजस्वी चमक रहे दीखे इस वर्णन पर विचार करें । कुछ विद्वानों की राय में ये सात महाग्रह सूर्य , चन्द्र , मंगल , बुध , गुरु , शुक्र एवं शनि होकर वे सब इस समय परस्पर निकट आये थे । किन्तु सात महाग्रह एकत्र आये थे, या एक दूसरे से कुछ अंतर पर होते हुए भी आकाश में एकही समय दृश्यमान थे, ऐसा उक्त श्लोक में नही कहा है । इसके अलावा उन सात ग्रहों मे सूर्य का समावेश करना व्यर्थ है । यह सही है कि, सूर्य एक तारा होते हुए भी (क्रांतिवृत्त में उसकी भासमान गति के कारण) भारतीय ज्योतिष शास्त्र में उसे ग्रह माना गया है । किन्तु वर्षाऋतु बाद कई दिन बीत ने पश्चात इस दिन सूर्य तेजस्वी दीख रहा था यह कहने में कोई विशेषता नही थी । और आकाश में सूर्य होने पर उसी समय चन्द्र एवं शुक्र छोडकर अन्य ग्रह दृश्यमान भी होना संभव न होकर , चन्द्र और शुक्र भी 'दीप्यमान' नही प्रतीत होंगे । महाकवि का यहां आशय यह है कि, सूर्य छोडकर अन्य सात महाग्रह उस दिन रात मे अलग - अलग समय पर विशेष प्रकाशमान दीखे थे । ये सात ग्रह थे —— चन्द्र , मंगल , बुध , गुरु , शुक्र शनि एवं धूमकेतु । धूमकेतु को भीष्मपर्व श्लोक ३-१३ में (प्रकरण १३ में उद्धृत) महाग्रह कहा है । और चन्द्र पृथ्वी का उपग्रह होने पर भी भारतीय ज्योतिष मे उसे ग्रहों के समान माना जाता है ।

अब ये सात ग्रह उस रात्रि मे प्रकाशमान दीखने वे सूर्य के समीप न होना (यानी उनका 'अस्त' न होना) आवश्यक है। आगे बताये अनुसार (प्रकरण १३ एवं १५), पाच दिन बाद आनेवाली अमावास्या को सूर्य स्वाती में था , और वह भी कुछ दिन पूर्व से। अत: हम देखें कि, उपरोक्त सात ग्रह उस दिन स्वाती में या उसके निकट नही थे। महाभारतकार के ज्योतिष विषयक वचनों की सूक्ष्मता यह कि , इन्हीं सात महाग्रहों को बाद में कर्णवध के दिन उन्होंने सूर्य के निकट बताया है — पूर्ण सुसंगत तरीके से (प्रकरण १४)।

(१) **चन्द्र** :— इस दिन स्वाती स्थित सूर्य से चन्द्र बहुत दूर मघा में था ; तथा मध्यरात्रि के कुछ पश्चात् आकाश में स्पष्ट उदित हुवा।

(२) **मंगल** :— दो दिन पूर्व (प्रकरण ११) यह अनुराधा के पास था। वह करीब बीस दिन में नक्षत्र बदलता है। इस रोज भी मंगल वहीं करीब होगा। इस प्रकार स्वाती से पूर्व को कुछ फांसले पर होने से सूर्यास्त बाद पश्चिम आकाश में कुछ समय स्पष्ट दिख सकता था।

(३) **बुध** :— चार दिन बाद इसका स्थान चित्रा में निश्चित किया है (प्रकरण १३)। यह करीब आठ दिन में नक्षत्र लांघता है। अत: इस रोज यह चित्रा के आरंभ के पास होगा, तथा सूर्योदय के पूर्व पूर्व दिशा में दीखा होगा।

(४) **गुरु** :— चार दिन बाद इसका स्थान विशाखा के समीप अनुराधा में निश्चित किया है (प्रकरण १३)। यह करीब १६० दिन में नक्षत्र बदलता है। अत: इस दिन वहीं होकर सूर्यास्त पश्चात् पश्चिम को दृश्यमान हो सकता था।

(५) **शुक्र** :— चार दिन बाद इसे मूल नक्षत्र में माना है। यह करीब ११ दिनों में नक्षत्र बदलता है। अत: इस रोज उसे मूल नक्षत्र में या उसके करीब मानना उचित होकर, वह पूर्व रात्रि के समय पश्चिम को दीख सकता था।

(६) **शनि** :— चार दिन बाद इसे अनुराधा में माना है। शनि करीब चार सौ दिनों में नक्षत्र बदलता है। अत: इस रोज भी उसे वही मानकर वह सूर्यास्त पश्चात् पश्चिम में दीख सकता था।

(७) **धूमकेतु** :— चार दिन बाद यह पुष्य में था। इस रोज भी इसे वहीं या उसके आसपास समझकर सूर्योदय पूर्व यह पूर्व दिशा में दृश्यमान माना जा सकता था। ❑

प्रकरण १३

युद्धारंभ की ग्रहस्थिति

युद्धारंभ की अमावास्या पर चन्द्र का स्थान

महाभारत कार ने युद्धारंभ समय अमावास्या को चन्द्र के नक्षत्र का विशेष संकेत दिया होकर, वह युद्धकालीन समग्र ज्योतिषात्मक विवेचन के लिये मूलभूत महत्त्व का है। श्रीकृष्ण ने कर्ण को युद्धारंभार्थ आगामी अमावास्या घोषित करने में (उद्योगपर्व १४२-१८ ऊपर उद्धृत) उस अमावास्या को 'शक्रदेवताम्' कहा। उसका आशय यह कि, उस अमावास्या को चन्द्र ऐसे नक्षत्र में था जिसका स्वामी इन्द्र (शक्र) है। प्राचीन भारतीय ग्रथों में हर नक्षत्र की देवता बताई है। उसमें ज्येष्ठा की देवता इन्द्र बताई है, अत: अनेक लेखक (जो उस अमावास्या को युद्धारंभ मानते हैं और जो नही मानते हैं ऐसे भी) उस अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा में था ऐसा प्रतिपादन करते हैं। किन्तु श्रीकृष्ण ने वह घोषणा की उस दिन से वह अमावास्या आठवे रोज थी ; और उस घोषणा के दिन चन्द्र पुष्य में था यह महाभारत मे कहा है (प्रकरण ५ देखिये)। पुष्य से ज्येष्ठा दस स्थान आगे है ; तथा चन्द्र औसतन प्रति दिन एक नक्षत्र लांघता है। यह देखते वह उन सात दिनों में (तीन नक्षत्रलोप कर) दस नक्षत्र पार करना असंभव है। अत: चन्द्र उस अमावास्या को ज्येष्ठा में पहुचना संभव नही था।

फिर उस अमावास्या को चन्द्र का नक्षत्र कौनसा था ? वह चित्रा था। चित्रा की भी देवता इन्द्र कही गई है (तैत्तिरीय संहिता ४-४-१० एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण १-५-१)। पुष्य से चित्रा छ: स्थान आगे है ; अत: उन सात दिनों में चन्द्र की एक नक्षत्र वृद्धि मानकर अमावास्या को चित्रा नक्षत्र आता है। तथा उस अमावास्या को (सूर्योदय समय) चन्द्र चित्रा में दर्शाने से अन्य भी सब ग्रहस्थिति सुसंगत बैठती है, यह आगे दिये विवेचन से स्पष्ट होगा।

फिर , इस गणना से अंतिम गदायुद्ध के समय , शल्यपर्व ३४-६ (ऊपर उद्धृत) में बलराम के वचनानुसार , चंद्र बराबर श्रवण में आता है (आगे दी तिथि तालिका देखिये)। इसके विपरीत , यदि उस अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा में माना , तो गदायुद्ध के समय वह श्रवण में नही हो सकता। ज्येष्ठा से श्रवण (बीच में एक पूर्ण नक्षत्रचक्र गिनकर) बत्तीसवे स्थान पर है ; जब कि विश्राम दिवस समाविष्ट कर गदायुद्ध दिन युद्धारंभ से पैंतीसवा आता

है। अत: उस अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा में माना, तो गदायुद्ध के दिन वह श्रवण में होने के लिये बीच में लगातार तीन नक्षत्र वृद्धि माननी पडेगी। इस प्रकार गणना करने से उस अमावास्या के पूर्व सात दिनों में (अमावास्यापर चन्द्र ज्येष्ठा में दर्शाने लिये) तीन नक्षत्र लोप, और बाद मे लगातार तीन नक्षत्र वृद्धि माननी पडेगी , जो संभव नही।

अब यदि उस अमावास्या को युद्धारंभ , किन्तु लड़ाई प्रतिदिन , ऐसी गणना की तो अमावास्या से गदायुद्ध दिवस अठारहवा (वस्तुत: प्रकरण ७ में बताये अनुसार उन्नीसवा) होगा। इसमें भी (अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा में दर्शाया तो) गदायुद्ध दिवस पर चन्द्र श्रवण से काफी दूर होगा। अंत में , युद्धारंभ मार्गशीर्ष शु. एकादशी को एवं लड़ाई प्रतिदिन ऐसी गणना की, तो गदायुद्ध का दिवस उस अमावास्या से २९ वा (वस्तुत: ३० वा) होगा। और उस अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा में मानकर गदायुद्ध के रोज वह श्रवण पहुचने, बीच में लगातार तीन (या दो) नक्षत्र लोप मानने होंगे। इस प्रकार इसमें उस अमावास्या के पूर्व सात दिनों में तीन नक्षत्र लोप तथा अमावास्या के बाद फिर तीन (या दो) नक्षत्र लोप ऐसा मानना पडेगा, जो संभव नही। सारांश, गदायुद्ध के दिन चन्द्र का स्थान महाभारत मे स्पष्ट कहे अनुसार श्रवण नक्षत्र में रखनेपर, किसी भी प्रकार युद्धारंभ की अमावास्या को उसका नक्षत्र ज्येष्ठा नही हो सकता। किन्तु इस कारण ज्येष्ठा के विषय में अपना गलत आग्रह छोडने के बजाय, जहां काणे (पूर्व उल्लेखित) आदि कुछ लेखक महाभारत के ज्योतिष विषयक वचनों को ही विसंगत कहने लगते हैं, वहां दप्तरी (पूर्व उल्लेखित) जैसे कुछ अन्य विद्वान उस श्लोक में ही हस्तक्षेप कर गदायुद्ध के दिन चन्द्र श्रवण में था यह उल्लेख ही हटाना चाहते हैं।

जो विद्वान उस अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा में बताना चाहते हैं, उनमें से कुछ का उद्देश यह होता है कि, उस आधार पर सूर्य भी उस दिन वहीं बताकर आगे भीष्मनिधन के समय उत्तरायण आरंभ पर सूर्य धनिष्ठा के आरंभ में हो सकेगा, और उस पर से महाभारत युद्ध का समय ईसा पूर्व पन्द्रहवी शताब्दि सिद्ध हो सकेगा (देखिये प्रकरण १६)। किन्तु ये लेखक भीष्मनिधन तिथि माघ शुद्ध अष्टमी मानते हैं , जो अब माघ पूर्णिमा स्पष्ट होने से, ईसापूर्व पन्दहवी शताब्दि के अनुमान के लिये वह आधार नही रहेगा। और यदि माघ पूर्णिमा को सूर्य धनिष्ठा के आरंभ में माना, तो उक्त अमावास्या को वह ज्येष्ठा के बजाय अनुराधा में होगा; जिससे अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा में किन्तु सूर्य पीछे अनुराधा मे ऐसी असंभव बात होगी। वस्तुत: आगे प्रकरण १६ में बताये अनुसार, महाभारत युद्ध

का काल ईसा पूर्व पन्द्रहवी सदी सिद्ध करने युद्धारंभ की अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा में मानना आवश्यक नही।

उस अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा मे था इस धारणा का एक और खंडन प्रस्तुत है। उस अमावास्या को चन्द्र ज्येष्ठा में, और अत: सूर्य भी वही माना, तो (उसके सात रोज पूर्व) श्रीकृष्ण की हस्तिनापुर शांति वार्ता के दिन सूर्य ज्येष्ठा या अनुराधा में होगा। किन्तु उस अवस्था में उस दिन अनुराधा में बताया मंगल (देखिये प्रकरण ११)सूर्य के सान्निध्य के कारण दृश्यमान नही हो सकता था ; तथा मंगल मानो ज्येष्ठा की ओर पीठ कर अनुराधा से मीलनार्थ इच्छा व्यक्त कर रहा है यह महाकवि का मार्मिक वचन निरर्थक हो जायगा। किन्तु आगे बताये अनुसार , उस समय सूर्य मंगल से दूरी पर होने से मंगल स्पष्ट दृश्यमान हो सकता था। इसी प्रकार उपरोक्त अवस्था में दो दिन पश्चात मघा नक्षत्र के दिन सूर्य उसी स्थान पर (ज्येष्ठा या अनुराधा मे) मानना पडेगा ; किन्तु पूर्व प्रकरण में देखे अनुसार मंगल तथा गुरु एवं शनि उस दिन अनुराधा में होने से, सूर्य के सान्निध्य के कारण दृश्यमान नही होते, और 'तेजस्वी' तो कदापि नही दीखते। किन्तु महाभारत के अनुसार वे वैसे दृश्यमान थे। अंत में , इस विवेचन में आगे बताये अनुसार, उस अमावास्या को सूर्य ज्येष्ठा में मानना उन दिनों में कुछ अन्य ग्रहों की भी स्थिति से विसंगत है।

वद्य चतुर्दशी की ग्रहस्थिति

अब हम महाकवि ने युद्धारंभ के पूर्व दिन के दिये विस्तृत वर्णन की चर्चा करें। व्यास धृतराष्ट्र से कहते है —

रोहिणीं पीडयन्नेष स्थितो राजन् शनैश्चरः
व्यावृत्तं लक्ष्म सोमस्य भविष्यति महद्भयम् ॥ भीष्मपर्व २-३२
विष्वग्वाताश्च वान्त्युग्रा रजो नाप्युपशाम्यति
अभीक्ष्णं कम्पते भूमिरर्कं राहुरुपैति च ॥ ३-११
श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति
अभावं हि विशेषेण कुरूणां तत्र पश्यति ॥ १२
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाक्रम्य तिष्ठति
सेनयोरशिवं घोरं करिष्यति महाग्रहः ॥ १३
मधास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ॥ १४

शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते
उत्तरे तु परिक्रम्य सहितः समुदीक्षते ॥ १५
श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥ १६
ध्रुवं प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्तते
रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ
चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रहः ॥ १७
वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः ॥१८
संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ
विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ ॥ २७
चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकान्हाहि त्रयोदशीम्
अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः ॥ २८
कृत्तिकां पीडयंस्तीक्ष्णैर्नक्षत्रं पृथिवीपते
अभीक्ष्णवाता वायन्ते धूमकेतुमवस्थिताः ॥ ३०
चतुर्दशीं पंचदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम्
इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम्
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ॥ ३२
अपर्वणि ग्रहेणेतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः
मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम् ॥ ३३
पतन्त्युल्का सनिर्घाता शक्राशनिसमप्रभाः
अद्य चैव निशां व्युष्टामनयं समवाप्स्यथ ॥ ३५

हम प्रथम इसमें दिग्दर्शित विभिन्न ग्रहों के स्थान निश्चित करें। फिर उस संदर्भ में इन श्लोकों का अनुवाद करेंगे।

सूर्य :— इसका स्थान प्रत्यक्ष रूप में नही बताया है ; किन्तु श्लोक ११,१७,२८,३२ एवं ३३ में सूचित किया है। हम प्रथम चन्द्र के आधार से सूर्य का स्थान निश्चित करें। इसके दूसरे दिन अमावास्या को (सूर्योदय समय) चन्द्र (ऊपर बताये अनुसार) चित्रा में था। अमावास्या को प्रातःकाल सूर्य चन्द्र के ही नक्षत्र में या एक नक्षत्र

आगे होता है; यदि आगे हो तो अमावास्या की समाप्ति पूर्व चन्द्र (अपनी शीघ्र गति से) सूर्य के नक्षत्र में पहुँच जाता है। अतः इस अमावास्या को सूर्य चित्रा या स्वाती में होना चाहिये। किन्तु महाभारत में दी इन दिनों की अन्य ग्रहों की स्थिति सूर्य को उस अमावास्या पर स्वाती में मान ने से सुसंगत होती है ; यह हस्तिनापुर की शांतिवार्ता से आरंभ कर सूर्य चन्द्र की दैनंदिन गति की आगे दी तालिका से स्पष्ट होगा।

क्या इस अमावास्या को सूर्यग्रहण था ? कई लेखक ऐसा सोचते हैं। किन्तु इस युद्धारंभ दिन का महाभारत में विस्तृत वर्णन दिया होकर उसमें कहीं भी ग्रहण का उल्लेख या संकेत नहीं। इस दिन का सूर्योदय समय 'विमल' था (उद्योगपर्व १९५-१)। फिर पूर्वाण्ह का (भीष्मपर्व ४५-१), 'गतपूर्वाण्हभूयिष्ठ' यानी सुबह के उत्तरार्ध का (४७-१, ४९-२४), और अन्त में सूर्यास्त समय का भी उल्लेख आया है। इस दरम्यान कभी भी सूर्यग्रहण होता तो महाकवि उसका उल्लेख करते। बल्कि ग्रहणकाल में उभय सेनाओं ने लड़ाई स्थगित कर धार्मिक पूजन आदि करना भी बताया जाता। बाद में एक अन्य दिन लड़ना स्थगित कर दोनों सेनाओं ने उदीयमान सूर्य की अर्चना करने का उल्लेख आया है (देखिये प्रकरण ७)।

राहू और केतु काल्पनिक ग्रह है ; जो वस्तुतः चन्द्र की कक्षा पर दो बिंदु (nodes of the moon's orbit) हैं, जहाँ क्रांतिवृत्त का समक्षेत्र (plane of the ecliptic) उस कक्षा को तिरछा छेदता है। अमावास्या पर यदि राहू (या केतु) सूर्य से करीब दश अंश के भीतर हो तो अवश्य ही सूर्यग्रहण होगा ; यदि वह अंतर दस से बारह अंश हो तो सूर्यग्रहण हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। और यदि अंतर बारह अंश से अधिक हो तो सूर्यग्रहण नहीं होगा। राहू नक्षत्र मंडल में हमेशा उलटा घूमता है। श्लोक ३-११ मे कहा हैं, 'अर्कं राहुरुपैति' यानी 'राहू सूर्य के करीब आ रहा है'। वही बात महाकवि ने पूर्व में भी बताई है (प्रकरण ११)। प्रतीत होता है कि, युद्धारंभ की उस अमावास्या को स्वाती में स्थित सूर्य से राहू दस-बारह अंश पर था, और विशाखा में होकर पीछे सूर्य की ओर बढ़ रहा था। इस प्रकार राहू सूर्य से ऐसी दूरी पर था , जहां कुछ परिस्थिति में सूर्यग्रहण सम्भव होता है ; किन्तु उस अमावास्या को ग्रहण प्रत्यक्ष नहीं था। फिर भी ग्रहण न होते हुए भी ('अपर्वणि') सूर्य (तथा चन्द्र) से राहू की इतनी समीपता बहुत अशुभ मानी गयी। जैसा कि श्लोक ३-१७ में कहा है , राहू 'चित्रास्वात्यन्तरे' यानी चित्रा एवं स्वाती से कुछ ही अंतरपर होकर, चित्रा स्थित चन्द्र तथा स्वाती स्थित सूर्य इन दोनों को पीडा पहुंचा

रहा है। यहाँ 'ग्रह' का अर्थ 'ग्रहण' करना आवश्यक नहीं ; (राहू नाम का) 'ग्रह' ऐसा भी उसका अर्थ हो सकता है (देखिये आदिपर्व २४-७)।

चन्द्र :— यद्यपि अमावास्या को (सूर्योदय पर) चन्द्र चित्रा में था , यहां चित्रा की 'वृद्धि' होने से वद्य चतुर्दशी को भी वह चित्रा में था (देखिये आगे दी तिथि तालिका)। इस अनुसार चन्द्र वद्य त्रयोदशी को हस्त नक्षत्र में था। इस संदर्भ में एक स्पष्टीकरण आवश्यक है। युद्ध आरंभ होने पूर्व बलराम तीर्थयात्रा करने निकल गये ऐसा कहकर शल्यपर्व में आगे कहा है —

मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्वयादवैः
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिंदमः ॥ शल्यपर्व ३५-१४

"शत्रुओं का दमन करनेवाला भोज (कृतवर्मा) सब यादव सैनिकों सहित मैत्रनक्षत्र योग पर (चन्द्र मैत्र नक्षत्र में था तब) दुर्योधन से आकर मिला"। यह निश्चित हुवा था कि, इस युद्ध में स्वयं श्रीकृष्ण पांडव पक्ष में रहकर मात्र अर्जुन का सारथ्य करेंगे, तथा यादव सेना दुर्योधन की ओर से लड़ेगी। तदनुसार यह श्लोक है। किन्तु इस श्लोक में एक श्लेषात्मक कूट है। अनुराधा की देवता 'मित्र' होकर, 'मैत्र' नक्षत्र का अर्थ साधारणतः अनुराधा किया जाता है। महाभारत में उद्योगपर्व १४३-९ में वैसा अर्थ आया है (देखिये प्रकरण ११)। अनुराधा चित्रा के तीन स्थान बाद है। और यदि चन्द्र चित्रा मे था तब युद्धारंभ हुवा, तो उसके कुछ रोज बाद चन्द्र अनुराधा में पहुचनेपर कृतवर्मा यादव सेना के साथ दुर्योधन से आकर मिला यह कैसा कहा जा सकता है ?

वस्तुतः युद्धारंभ के दिन से ही कृतवर्मा लड़ाई में सम्मिलित था (भीष्मपर्व ४८-४६)। बात यह है कि 'मैत्र' शब्द 'मित्र' से बना होकर, मित्र यह सूर्य का एक नाम है। 'हस्त' नक्षत्र की देवता 'सविता' है ; और सविता याने भी सूर्य। सारांश, यहां 'मैत्र नक्षत्र' शब्द का प्रयोग हस्त नक्षत्र के लिये किया है , जो चित्रा के एक स्थान पहिले है। इस प्रकार वद्य त्रयोदशी को चन्द्र हस्त नक्षत्र में होने पर कृतवर्मा सारी यादव सेना के साथ दुर्योधन से आकर मिला।* और इसी लिये वद्य चतुर्दशी को भीष्म ने दुर्योधन से संवाद करने में

---

* इस श्लोक की प्रथम पंक्ति का (और अतः उसमें उल्लेखित मैत्र नक्षत्र का) संबंध कुछ लेखक (जैसे दफ्तरी, पूर्व उल्लेखित, p. 118) इसके पूर्ववर्त्ती (३५-१३) बलराम यात्रा विषयक श्लोक से लगाते हैं। किन्तु बलराम सब यादवों के साथ यात्रा पर नहीं गये थे। इसके विपरीत कृतवर्मा (जैसा कि पूर्व निश्चित था) सब यादव सेना के साथ दुर्योधन से आकर मिला था। बलराम की यात्रा इसके पूर्व पुष्यनक्षत्र पर आरंभ हुई थी (देखिये प्रकरण ५)

कृतवर्मा का कौरव पक्ष के एक प्रमुख योद्धा के रूप मे उल्लेख भी किया (उद्योगपर्व १६५-२४,२५,२६)।

मंगल :— इसका उल्लेख श्लोक ३-१८ में होकर वहां भी एक कूट है। यहां 'ब्रह्मराशि' का सम्बन्ध श्रवण से जोड़कर इस श्लोक में प्रायः यह आशय देखा गया है कि, इस समय मंगल श्रवण में था। किन्तु छः दिन पूर्व (प्रकरण ११) उसे वक्र गति में अनुराधा के पास बताया है ; अतः इस दरम्यान वह वक्र से सीधी गति में आया हो तो भी छः दिन में चार नक्षत्र आगे श्रवण में नहीं पहुंच सकता। अतः उक्त श्लोक से यहां अन्य आशय लेना उचित होगा। ब्रह्मा याने प्रजापति। महाभारत में मेषवृषभादि राशि नहीं हैं ; फिर भी समीपवती नक्षत्रों का एक (विशिष्ट आकृति दर्शक) समूह इस अर्थ में राशि शब्द का प्रयोग किया दीखता है। यहाँ 'ब्रह्मराशि' का मतलब 'नक्षत्रीय प्रजापति' ऐसा दीखता है ! तैत्तिरीय उपनिषद में (१-५-२-२) कहे अनुसार हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा एवं अनुराधा ये नक्षत्र मिलकर नक्षत्रीय प्रजापति की आकृति होती है। "यो वै नक्षत्रियं प्रजापति वेद। उभयोरेनं लोकयोर्विदुः। हस्त एवास्य हस्तः। चित्रा शिरः। निष्ट्या हृदयम्। ऊरू विशाखे। प्रतिष्ठानुराधा। एव वै नक्षत्रियः प्रजापतिः"। मंगल इस ब्रह्मराशि की प्रतिष्ठा (आधार या पांव) रूप अनुराधा में था। छः दिन पूर्व भी वह वहीं था।

इस श्लोक (३-१८) मे 'वक्रानुवक' का आशय यह दीखता है कि, छः रोज पूर्व मंगल 'वक्र' गति में ज्येष्ठा से उलटा अनुराधा की ओर जा रहा था , किन्तु शीघ्र ही उसने फिर अपनी सीधी ('अनुवक्र') गति प्राप्त कर ली ; और अब वह फिर ज्येष्ठा की दिशा में बढ रहा था। वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' १-१० पर लिखे उत्पल भाष्य में कहा है। "अनुवक्रं स्पष्टगतित्वम्। वक्रां गतिं त्यक्त्वा पुनः स्पष्टाम् गतिमाश्रितो अनुवक्रित इत्युच्यते।"

फिर भी इस श्लोक (३-१८) की प्रथम पंक्ति में श्रवण का उल्लेख क्यों आया है ? यद्यपि नक्षत्रों की यादी में अनुराधा के बाद ज्येष्ठा , मूल,पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा होकर बाद में श्रवण नक्षत्र आता है , प्रत्यक्ष आकाश में देखते सब नक्षत्र एक सीधी रेषा में न होकर , ज्येष्ठा से उत्तराषाढा तक दक्षिण की ओर कुछ अंदर गये दीखेंगे , तथा अनुराधा के सीधे सामने श्रवण दिखेगा ! जब नक्षत्र एक सरल रेषा में नही होते हैं , तब ग्रह उनमें से हर एक में प्रत्यक्ष प्रवेश न कर, उनके पास होकर किन्तु अपनी रेषा में आगे बढ़ते रहते हैं। अतः जब मंगल अनुराधा में पुनः 'अनुवक्र' (सीधी दिशा में) हुवा तो पंचांग में उसे ज्येष्ठा की ओर जाता हुवा बताया , तो भी प्रत्यक्ष में उसकी दिशा श्रवण की ओर दीखना स्वाभाविक ही था। इस श्लोक मे 'श्रवणं अनुवक्रं कृत्वा' का आशय मंगल वक्र गति

त्यागकर सीधा श्रवण की और मुड़ा दीख रहा है ऐसा है, श्रवण में पहुंच गया ऐसा नहीं। मंगल का एक और उल्लेख श्लोक ३-१४ में भी है, जिसकी चर्चा आगे अलग से की है।

बुध: — श्लोक ३-१२ में निर्दिष्ट 'श्वेत ग्रह' बुध होगा। वह चित्रा पर आक्रमण कर रहा है ऐसा कहा है। वह चित्रा के सिर पर स्वाती की दिशा में होगा। (श्लोक ३-१६ में भी श्वेत ग्रह का उल्लेख है, किन्तु आगे बताये अनुसार उसका संबंध शुक्र से अधिक अच्छा बैठता है)। ग्रहस्थिति के इतने विस्तृत वर्णन में महाकवि ने बुध छोड़ देना संभव नहीं था। इसलिये उस वर्णन में अन्य किसी श्लोक का बुध से ठीक संबन्ध बैठता नहीं यह देख, श्लोक १२ में बुध का उल्लेख देखना उचित मालुम पड़ता है। इसकी अन्य दिनों पर बुध की स्थिति से भी संगति बैठती है; ऐसे दो स्थानों पर (प्रकरण १४) बुध का स्पष्ट उल्लेख भी है।

गुरुः — श्लोक २७ में कहा है, 'गुरु एवं शनि ये दो तेजस्वी ग्रह एक वर्ष से विशाखा के आसपास है'। यहाँ 'विशाखायाः समीपस्थौ' का आशय 'अनुराधा में' ऐसा हो सकता है। यदि वे दोनों ग्रह विशाखा में ही या (उसके पीछे) स्वाती में होते, तो इस समय सूर्य स्वाती में होने से वे दृश्यमान नहीं होते। गुरु एक नक्षत्र में पाच माह दस दिन रहता है। और वह इसके पूर्व बारह माह में प्रथम स्वाती के उत्तरार्ध में, बाद में विशाखा में, और अंत में (इस समय) अनुराधा के अंतिम चरण में होगा; इस प्रकार वह वर्षभर 'विशाखायाः समीपस्थः' था। इस गणना से वह पांच दिन पूर्व सूर्यास्त बाद दृश्यमान हो सकता था (प्रकरण १२), तथा कर्णवध के दिन ज्येष्ठा में पहुंच सकता था (प्रकरण १४)। गुरु का उल्लेख श्लोक १४ में भी होकर, उसकी अलग से चर्चा आगे की है।

शुक्र : — श्लोक १५ में कहा है कि, शुक्र उस समय पूर्वा प्रोष्ठपदा एवं उत्तरा (प्रोष्ठपदा) इन दोनों को अपने तेज से व्याप्त कर रहा था। प्रोष्ठपदा यह भाद्रपदा का दूसरा नाम है। इस श्लोक के स्पष्टीकरण में निम्न तथ्य ध्यान में लेना आवश्यक है।

शुक्र करीब ग्यारह दिनों में एक नक्षत्र लांघता है, वहां सूर्य करीब १३ $\frac{१}{२}$ दिनों में। इस प्रकार सूर्य से शुक्र कुछ अधिक शीघ्र चलता है। किन्तु कभी भी वह सूर्य से ४७ अंश (करीब साढ़े तीन - चार नक्षत्र) से अधिक दूर नहीं जाता। वह सीमा प्राप्त होने पर वह अपनी दिशा पलटकर 'वक्र' गति से वापिस सूर्य की और आने लगता है। इस वक्र गति में (बीच में सूर्य के पास से होकर) शुक्र फिर सूर्य से (पीछे) उक्त

सीमा तक पहुंचने पर, वह वक्र गति छोड़ वापिस सीधी गति में चलने लगता है। शुक्र की वक्र गति उसकी सीधी गति से धीमी होती है।

शुक्र बड़ा तेजस्वी ग्रह होकर कभी - कभी सूर्य की उपस्थिति में भी दृश्यमान होता है। वह सूर्य से अपनी अधिकतम दूरी पर पहुंचता है तब उसका प्रकाश रात्रिकालीन आकाश में और भी तेजस्वी होता है। शुक्र आकाश के मध्यभाग में कभी भी दृश्यमान नहीं होता। वह या तो सूर्यास्त पश्चात पश्चिम को या सूर्योदय के पहिले से पूर्व को दीखता है। किन्तु सूर्य से आठ अंश सीमा में पहुंचने पर शुक्र अदृश्य होता है, यानि उसका 'अस्त' हो जाता है।

यह सब ध्यान में लेकर हम श्लोक ३-१५ एवं १६ पर विचार करें। श्लोक १५ में शुक्र का स्पष्ट नाम होकर श्लोक १६ में कहा है, 'प्रज्वलित श्वेत ग्रह' तेजस्वी ज्येष्ठा नक्षत्र पर आक्रमण कर रहा है। श्लोक १५ के संदर्भ में यह श्वेत ग्रह शुक्र प्रतीत होता है। महाभारतकार ने भीष्म पर्व ८२-१२ में भी 'श्वेत ग्रह' शब्दप्रयोग किया होकर, उसका अर्थ शुक्र किया गया है (ज.वि.ओक कृत 'गीर्वाण लघु कोश')। अब, शुक्र ज्येष्ठा पर आक्रमण कर रहा था इसका आशय है कि, वह ज्येष्ठा के सिर पर या नजीक के 'मूल' नक्षत्र में होगा। सूर्य स्वाती में था, जहाँ से शुक्र चार नक्षत्र दूरी पर था। सूर्य से इतना दूर होने से वह 'प्रज्वलित' (विशेष तेजस्वी) दीख रहा था। और उसका वृद्धिंगत प्रकाश दूरस्थ पूर्वा प्रोष्ठपदा को, एवं उत्तरा प्रोष्ठपदा को भी आलोकित कर रहा था; और वह मानो दोनों प्रोष्ठपदाओं पर मिलकर गंभीर दृष्टिक्षेप कर रहा था ('समुदीक्षते')। शुक्र प्रत्यक्ष वहां पहुंचा था ऐसा नहीं।

जो लेखक सूर्य को इस समय ज्येष्ठा में मानते हैं वे श्लोक १६ की ठीक संगति नहीं लगा सकते। उसमें बताया 'श्वेत ग्रह' कोई भी माना तो सूर्य के इतने निकट वह दृश्यमान नहीं होगा, 'प्रज्वलित' तो किसी भी हालत में नहीं। इतना ही नहीं, सूर्य ज्येष्ठा में हो तो स्वयं वह नक्षत्र भी दृश्यमान नहीं होगा, तेजस्वी' (जैसा कि श्लोक में बताया है) दीखना तो अलग ही रहा!

सूर्य से अपनी अधिकतम दूरी पर पहुंचने बाद शुक्र ने वक्र गति ली; और वापिस पीछे आकर कर्णवध के दिन सूर्य के निकट सान्निध्य में वह अदृश्य हो गया (प्रकरण १४)।

शनि :— इसका स्पष्ट उल्लेख श्लोक २-३२ एवं ३-२७ में है। श्लोक ३-२७ की चर्चा ऊपर गुरु के संबंध मे की है; उसमें शनि को गुरु के साथ एक वर्ष से विशाखा के

आसपास बताया है। शनि एक वर्ष से मंद चलते इस समय अनुराधा में होगा। वहाँ से श्लोक २-३२ में कहें अनुसार वह रोहिणी को पीड़ा दे रहा था। इसके पूर्व भी शनि द्वारा रोहिणी को पीड़ा पहुंचाने का (प्रकरण ११), तथा पूर्व पूर्णिमा को चन्द्र निस्तेज दीखने का, (भीष्म पर्व २-२३) उल्लेख आया है।

इसके अलावा श्लोक ३-१७ की प्रथम पंक्ति मे भी 'प्रज्वलित' शब्द शनि के लिये होगा ; क्योंकि वहां भी रोहिणी को पीड़ा पहुंचाने का उल्लेख है। ('प्रज्वलित' शब्द श्लोक ३-२७ में स्पष्टत: शनि के लिये आया है)। श्लोक १७ की तीसरी पंक्ति राहू के विषय में है ; किन्तु वह एक काल्पनिक ग्रह होकर, उसे 'प्रज्वलित' नहीं कहा जा सकता। अब प्रथम पंक्ति में 'ध्रुवम्' शब्द का मतलब ध्रुव तारा न होकर, उस शब्द से रोहिणी एवं तीन उत्तरा नक्षत्र का बोध होता है। प्रज्वलित शनि इनमें से किसी एक के बाई तरफ था ऐसा प्रतीत होता है। वह-नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनी या उत्तराषाढा होगा ; क्योंकि उत्तरा भाद्रपदा बहुत दूर थी , और रोहिणी को शनि पीड़ा पहुंचा रहा था ऐसा अलग से उल्लेख है। इसके अलावा 'शनि' का उल्लेख श्लोक ३-१४ में भी है। वहाँ कहे अनुसार शनि (सूर्यपुत्र) इस समय भग (पूर्वा फाल्गुनी) नक्षत्र को पीड़ा दे रहा था।

राहू :— श्लोक ३-११ में कहा है,'' राहू सूर्य के करीब आ रहा है ''। श्लोक २८ में कहा है, '' चन्द्र एवं सूर्य दोनों राहू द्वारा ग्रस्त हैं ,प्रत्यक्ष ग्रहण न होते हुए भी उनका राहू के समीप होना उनकी लोकक्षय सूचक प्रवृत्ति दर्शाता है ''। इस श्लोक का काफी भाग श्लोक ३२ में एवं ३३ की प्रथम पंक्ति में पुन: आया है ; इस सब का स्पष्टीकरण ऊपर सूर्य की चर्चा में किया है।

केतु :— श्लोक ३० का संबंध केतु से हो सकता है। उसकी प्रथम पंक्ति में कोई दुष्ट (ग्रह) कृत्तिका को क्रूर दृष्टिपातों से पीड़ा पहुंचा रहा है ऐसा कहा है। राहु तथा केतु भारतीय पौराणिक परंपरानुसार अति दुष्ट ग्रह माने गये हैं। वे हमेशा उलटे घूमते होकर एक दूसरे से निश्चित दूरी पर रहते हैं। वे नक्षत्रमंडल का एक चक्कर अठारह साल में पूर्ण करते हैं। इस समय हमने राहु का स्थान विशाखा में निश्चित किया होने से, केतु (करीब अर्ध नक्षत्र मंडल दूर) कृत्तिका में या उसके निकट ,होकर उसे पीड़ा दे रहा होगा।

धूमकेतु :— यह पुष्य में था। श्लोक १३ में कहा है ''भयानक धूमकेतु पुष्य नक्षत्र को व्याप्त कर रहा है ; यह महाग्रह दोनों सेनाओं की घोर हानि करेगा।'' श्लोक ३० की द्वितीय पंक्ति में कहा है , ''धूमकेतु से आनेवाली घोर आंधी चल रही है''। (इसके पूर्व भी धूमकेतु के उल्लेख प्रकरण १२में उद्धृत किये है)।

अंत में श्लोक ३-१४ पर विचार करें। कई अभ्यासक इसकी प्रथम पंक्ति का अर्थ करते हैं कि, ''मंगल (अंगारक) वक्र गति में होकर मघा में है, तथा गुरु श्रवण में है ''। किन्तु छ: दिन पूर्व के इनके स्थान देखते यह संभव नही था। यहां 'वक्र' का आशय 'वक्र गति' न होकर, वक्रदृष्टिपूर्ण , पीड़ादायक यह है, जैसा कुछ लेखकों ने कहा भी है (चिं.वि. वैद्य, पूर्व उल्लेखित, पृ.१२१-१२५)। इस समय मंगल की मघा पर तथा गुरु की श्रवण पर पीड़ादायक दृष्टि थी। इस श्लोक की द्वितीय पंक्ति में कहा भी है कि '' सूर्यपुत्र (शनि) भग (पूर्वा फाल्गुनी) पर आक्रमण कर उसे पीड़ा दे रहा है ''। ग्रहों द्वारा पीड़ा के ये उल्लेख तत्कालीन फलज्योतिष विषयक धारणाओं पर आधारित होने चाहिये ।

यह सारा स्पष्टीकरण ध्यान में लेकर ऊपर उद्धृत श्लोकों का अनुवाद प्रस्तुत है।

''महाराज (धृतराष्ट्र) यह शनि ग्रह (श्लोक ३-२७ के अनुसार अनुराधा में होकर) रोहिणी को पीडा दे रहा है ; तथा चन्द्र का विशिष्ट चिन्ह लुप्त हो गया है ; यह सब एक महासंकट उपस्थित होगा ऐसा सूचित कर रहा है। २-३२. सब ओर भयानक आंधी चल रही है, तथा (उससे) उडने वाली धूल नीचे नही बैठ रही है ; भूमि (मानो) बारबार कंपित हो रही है ; तथा राहू सूर्य के निकट जा रहा है। ३-११. (श्वेतग्रह) बुध चित्रा नक्षत्र पर आक्रमण करता हुवा स्वाती की दिशा में है, जो विशेषत: कुरु कुल का विनाश सूचित करता है। १२. भयानक धूमकेतू पुष्य नक्षत्र को व्याप्त कर रहा है ; यह महाग्रह दोनो सेना की घोर हानी का कारण होगा। १३. मंगल (श्लोक १८ के अनुसार अनुराधा में होकर) मघा नक्षत्र पर, तथा गुरु (श्लोक २७ के अनुसार अनुराधा में होकर)श्रवण नक्षत्र पर, (दूर सेही) वक्र (पीडा कारक) दृष्टि डाल रहे हैं; सूर्यपुत्र शनि भी (श्लोक २७ के अनुसार अनुराधा में होकर) भग यानी पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र पर आक्रमण कर (अपनी वक्र दृष्टि से) उसे पीडा दे रहा है। १४. शुक्र अपने प्रकाश से पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र को आवृत्त कर तथा उत्तरा भाद्रपदा को भी आलोकित कर, दोनोंपर दृष्टिक्षेप कर रहा है। १५. ज्वलंत अग्नि समान दीप्यमान वह श्वेतग्रह (शुक्र) ज्येष्ठा नक्षत्र , जिसकी देवता इन्द्र है, पर आक्रमण कर (उसमें) स्थित है। १६. प्रज्वलित (तीव्र दीप्यमान) क्रूर ग्रह शनि (श्लोक २७ के अनुसार अनुराधा में होकर) उत्तराफाल्गुनी की बायी दिशा में है, जिससे एक घोर संकट सूचित होता है ; वह रोहिणी नक्षत्र को पीडा पहुचा रहा है , तथा चित्रा एवं स्वाती के बीच स्थित क्रूर राहू ग्रह (चित्रास्थित) चन्द्र को एवं (स्वाती स्थित) सूर्य को पीडा दे रहा है। १७. अग्नि समान देदीप्यमान (लोहितांग) मंगल ग्रह वक्र गति त्यागकर पुन: सीधी गति से

श्रवण की दिशा मे जा रहा होकर, इस समय 'नक्षत्रीय प्रजापति' के आखरी अंश (अनुराधा) में स्थित है। १८. एकएक वर्ष विशाखा के आसपास रहकर गुरु एवं शनि (अनुराधा में) प्रज्वलित रूप में दृश्यमान है। २८. एकही तेरहवी तिथी को (आनेवाली इस अमावास्या पर) चन्द्र एवं सूर्य दोनो ही (विशेष निकट आये हुवे) राहू से ग्रस्त है, तथा प्रत्यक्ष ग्रहण न होते हुए भी राहू उनके इतने समीप होना उनकी लोकविनाशकारी प्रवृत्ती दर्शाता है। २८. महाराज (धृतराष्ट्र), केतू ग्रह अपने तीक्ष्ण पीडादायक स्पर्शो से कृत्तिका नक्षत्र को तीव्र पीडा दे रहा है ; धूमकेतू से निकलने वाली प्रचंड आंधी चल रही है। ३०. इसके पूर्व (वद्य पक्ष के) चौदहवे, पन्द्रहवे, तथा (एक तिथी वृद्धि के साथ) सोलहवे दिन आनेवाली अमावास्या मैने देखी है ;किन्तु तेरहवे दिन आनेवाली यह अमावास्या मैने पहिले कभी नही देखी थी। ३२. एकही मास में तेरहवी तिथीपर (स्वाती स्थित) सूर्य चन्द्र दोनोही, प्रत्यक्ष ग्रहण न होते भी, राहू से (विशेष समीप होकर) ग्रस्त होने से वे लोकक्षयकारी होगें ; इस वद्य चतुर्दशी को फिर तीव्र मांस वर्षा हुई। ३३. आवाज सहित बिजली के साथ इन्द्र के वज्र समान चमकने वाली उल्काएँ गिर रही है ; महाराज (धृतराष्ट्र), आज की रात बीतने पर आपको आपने (पांडवों पर) किये अन्याय का फल प्राप्त होने लगेगा। ३५.''

प्रकरण १४

युद्ध के आखिरी दिवस

कर्णवध दिवस की सुबह

प्रत्यक्ष लड़ाई के सत्रहवे दिन कर्णवध हुवा। उस दिन सुबह के वर्णन में महाकवि कहते हैं —

निःसरन्तो व्यदृश्यन्त सूर्यात् सप्त महाग्रहाः ॥ कर्णपर्व ३७- ४.

यहां सात महाग्रहों को 'सूर्यात् निःसरन्तो' यानी सूर्यबिंब से मानो बाहर आनेवाले बताया है। यहां 'व्यदृश्यन्त ' का अर्थ प्रायः 'विशेष दृश्यमान हुए ' (स्पष्ट दीखे) ऐसा किया जाता है। किन्तु सूर्यबिंब से मानो बाहर आ रहे हो इतना उसके समीप होते, कोई भी ग्रह दृश्यमान नहीं हो सकता ; विशेष दृश्यमान होना तो औरभी असंभव।

किन्तु यहां 'व्यदृश्यन्त' शब्द में श्लेष है। 'अदृश्यन्त' का 'दीखे' यह सरल अर्थ है। किन्तु 'वि' उपसर्ग का आशय एक अर्थ मे 'विशेष' 'अधिक 'ऐसा हो, तो भी दूसरे अर्थ में उसका आशय 'विरोध' या 'अभाव' ऐसा भी होता है (उदाहरणार्थ, 'विस्मरण')। अतः 'वि + अदृश्यन्त = व्यदृश्यन्त' का अर्थ 'दृश्यमान नहीं थे ' ऐसा भी हो सकता है। और उक्त पंक्ति में वह आशय है। येही सात ग्रह युद्धारंभ के पांच दिन पूर्व सूर्य से कुछ अंतर पर होकर तेजस्वी चमक रहे थे (प्रकरण १२)। चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि एवं धूमकेतु ये वे सात महाग्रह हैं।

युद्धारंभ पर सूर्य का स्थान हमने स्वाती में निश्चित किया है। बीच में (अवकाश दिन गिनकर) ३१ दिन बीते थे। अतः इस रोज सूर्य ज्येष्ठा में होगा (आगामी प्रकरण में दी तालिका देखिये)। अब वे सात ग्रह सूर्य के निकट थे और इस लिये दृश्यमान नही थे यह देखें।

(१) चन्द्र :— हमारी तिथिगणना के अनुसार कर्णवध के इस दिन पौष शुक्ल प्रतिपदा थी। यानी अमावास्या की रात्रि इसी समय समाप्त हुई थी ; सूर्यबिंब से चन्द्र अलग हो रहा था ('बाहर आ रहा था '); और कहने की आवश्यकता नहीं कि अदृश्य था। यह इसकी पुष्टि करता है कि, पूर्व की (अमावास्यान्त कार्तिक मास की) अमावास्या

पर युद्धारंभ होकर लड़ाई एक दिन छोड़कर हुई थी।

(२) मंगल :— युद्धारंभ के पूर्व दिन मंगल अपनी वक्र गति त्यागकर अनुराधा में था। वह करीब बीस दिन में नक्षत्र बदलता है। किन्तु वक्र से सीधी दिशा में आने पर उसकी गति मंद होकर बाद में बढ़ती है। अतः मंगल इस समय ज्येष्ठा में सूर्य के निकट (अतः अदृश्य) हो सकता था।

(३) बुध :— युद्धारंभ के पूर्व दिन इसको हमने चित्रा में माना है। यह औसतन करीब आठ दिन में नक्षत्र बदलता है। किन्तु कभी वह इससे काफी मंद तो कभी शीघ्र चलता है। फिर बुध सूर्य से २७ अंशों से अधिक दूर नहीं जाता। वह सीमा आने पर (कभी उससे भी कुछ पहले) वह अपनी दिशा पलट देता है। वक्र दिशा में उसकी गति मंद होती है। सीधी दिशा में मध्य मार्ग में उसकी गति काफी शीघ्र होती है। यह सब देखते, चित्रा से सीधा आगे बढ़ता हुवा बुध (बीच में सूर्य के पास से होकर) इस समय मूल नक्षत्र में या उसके करीब होगा। इस प्रकार वह सूर्य के निकट (पूर्व दिशा में) था; और इसीलिये उस दिन सुबह अदृश्य होकर भी सूर्यास्त के बाद (आगे बताये अनुसार) दीख सकता था।

(४) गुरु :— युद्धारंभ के पूर्व दिन गुरु का स्थान हमने अनुराधा के अंतिम चरण में निश्चित किया है। अब तक उस नक्षत्र को पार कर उसने ज्येष्ठा में प्रवेश किया होगा।

(५) शुक्र :— युद्धारंभ के पूर्व दिन शुक्र का स्थान हमने मूल नक्षत्र में निश्चित किया है। उसके बाद उसने अपनी गति वक्र की, जो मंद होती है। अतः बीच के दिनों मे वह ज्येष्ठा में उलटी तरफ से प्रवेश कर अब ज्येष्ठा में ही या उसकी पश्चिम सीमा पर होगा।

(६) शनि :— युद्धारंभ के पूर्व रोज शनि का स्थान हमने अनुराधा में निश्चित किया है। उसकी अति मंद गति देखते इस रोज यह वहीं कहीं होगा।

(७) धूमकेतु :— युद्धारंभ समय यह पुष्य में था। महाभारतकार ने जो कहा है वह देखते यह उस दिन सूर्य के करीब होगा।

इस तरह ये सब ग्रह कर्णवध के दिन सूर्योदय समय सूर्य के निकट हो सकते थे।

और यदि इसका चित्र खींचा, तो वे मानो सूर्यबिंब से कुछ इस ओर तो कुछ उस तरफ बाहर आ रहे है ऐसी कल्पना की जा सकेगी।

इसी दिन कर्णवध के बाद सूर्यास्त समय का वर्णन करते हुए महाभारतकार कहते है—

ग्रहश्च तिर्यग् ज्वलनार्कवर्णः
सोमस्य पुत्रोऽभ्युदियाय तिर्यक् ॥ कर्णपर्व ९४-४९
.... बृहस्पतिः सम्परिवार्य रोहिणीम्
बभूव चन्द्रार्कसमो विशाम्पते ॥ ५१

श्लोक ४९ का अर्थ है, "अग्नि एवं सूर्य के समान प्रतीत होनेवाला ग्रह बुध (सोमपुत्र) एक कोने में उलटा उदित हुवा"।

इस रोज बुध (जैसा कि ऊपर बताया है) सूर्य के कुछ पूर्व की ओर था, अतः सूर्यास्त के बाद पश्चिम आकाश के कोने में दीख सका। गुरु का उल्लेख श्लोक ५१ में है जो गूढ़ बन बैठा है। उसका अर्थ है "राजा (धृतराष्ट्र), गुरु ने रोहिणी को व्याप्त करने से वह दृश्य चन्द्रसूर्य के समान हुवा"। यहां रोहिणी का अर्थ ज्येष्ठा है; उसका यह भी एक अर्थ होता है। गुरु इस दिन ज्येष्ठा के प्रवेशद्वार मे माना जा सकता है यह ऊपर देखा ही है। किन्तु यहां चन्द्र सूर्य के उल्लेख का क्या आशय है ? इस पर अनेक तर्क किये गये हैं। मेरा अनुमान है कि, गुरु ज्येष्ठा में होकर सूर्य भी वहीं होने से उनकी युति (अमावास्या कालीन) चन्द्रसूर्य की युतिसमान हुई ऐसा यहां आशय होगा। और हमारी गणनानुसार इस दिन सुबह अमावास्या समाप्त भी हो रही थी। किन्तु इस लिये सूर्य इस दिन ज्येष्ठा में होना चाहिये, और वह हमने की कुल गणना से सुसंगत है।

शल्यवध दिन

इस दिन के सूर्योदय समय के वर्णन में कहा है —

पूर्वाण्हे चापि सम्प्राप्ते भास्करोदयनं प्रति ॥ शल्यपर्व, ११ -७
....भृगुसूनुधरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ
चरमं पाण्डुपुत्राणां पुरस्तात् सर्वभूभुजाम् ॥ १७

"पूर्वाण्हसमय प्राप्त होकर सूर्योदय समय आया ..... शुक्र (भृगुसूनु) एवं मंगल (धरापुत्र)

ये बुध (शशिज, चन्द्रपुत्र) ग्रह के साथ पांडवों के पीछे तथा सब (कौरव ?) राजाओं के सामने (आकाश में) स्थित थे'' । यहाँ अंतिम चरण कुछ संदिग्ध है *। शेष स्पष्ट है। आगे प्रकरण १७ में बताये अनुसार लड़ाई मे पांडवों का मुह पश्चिम की ओर तथा कौरवों का पूर्व दिशा में होता था। पूर्व की और पांडवों की पीठ थी।और इस श्लोक में कहा है कि, वे तीन ग्रह उनके पीछे को थे। इससे निष्पन्न होता है कि, सूर्योदयसमय उपरोक्त तीन ग्रह पूर्व दिशा मे सूर्य के आसपास थे। ऊपर कर्णवध के दिन सूर्य ज्येष्ठा में, मंगल भी ज्येष्ठा में, बुध (ज्येष्ठा के समीप) मूल नक्षत्र मे, एवं शुक्र ज्येष्ठा में (या उसके समीप) दर्शाये हैं। बीच में मात्र एक अवकाशदिन जाकर यह शल्यवध का दिन आया था। इस दिन वे तीन ग्रह उन्हीं स्थानों के पास मानना उचित होगा। उद्धृत श्लोक में वे प्रत्यक्ष दृश्यमान थे ऐसा नहीं कहा है, केवल पूर्वाकाश में उनका स्थान बताया है। शुक्र इस समय यदि सूर्य से आठ अंश से अधिक दूर पहुंचा हो तो वह दृश्यमान भी हुवा होगा।

अंतिम गदायुद्ध के दिन महाभारत मे कहे अनुसार चन्द्र श्रवण में था यह ऊपर सिद्ध किया है।

❑

* यहां 'सर्व ' के स्थान पर 'कुरु ' ऐसा पाठभेद भी है।

प्रकरण १५

उत्तरायण प्रारंभ

भीष्म निधन का समय

भीष्म निधन की तिथि पूर्व विवेचन में माघ पूर्णिमा निश्चित की है। महाकवि ने अनेक स्थलों पर भीष्मनिधन समय का उत्तरायण प्रारंभ से संबंध दर्शाया है (भीष्मपर्व अध्याय ११९,१२०, शांति पर्व अध्याय ४९,५१ आदि)। अन्त में जब भीष्म ने शरशय्या से दिया धर्मोपदेश समाप्त होकर युधिष्ठिर भीष्म के पास से वापिस हस्तिनापुर जाने लगे, तब भीष्म ने उनसे स्पष्ट कहा —

आगन्तव्यं च भवता समये मम पार्थिव
विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे ॥ अनुशासन पर्व, १६६-१४

''राजन् (युधिष्ठिर), (सूर्य दक्षिणायन से) निवृत्त होकर उत्तरायण में प्रवृत्त होने पर मेरा (प्राण त्याग का) समय प्राप्त होगा, तब आप (फिर मेरे पास) वापिस आइये'' । तदनुसार युधिष्ठिर अंत्यविधि का सारा सामान लेकर निर्धारित समय पर भीष्म के पास वापिस आया।

तिथि-नक्षत्र तालिका

अब हम पूर्व में प्रस्थापित युद्धकालीन दिवस एवं तिथियाँ, तथा महाभारत के ज्योतिषविषयक विधान , इनके आधार पर भीष्म निधन समय के उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य का स्थान निश्चित करें। तदनंतर इन सब प्रमाणों से कौनसा कालखंड दिग्दर्शित होता है , इसका अनुमान किया जा सकेगा।

चन्द्रसूर्य की गति के कुछ नियमों का उल्लेख पूर्व विवेचन में आया है। वह ध्यान में लेकर इस कालावधि में सूर्यचन्द्र के दैनंदिन स्थान आगे दी तालिका मे ब्यौरेवार बताये है। उसमें चन्द्र के नक्षत्रों में बीच बीच में होने वाले वृद्धिलोप स्थूल स्वरूप में दिखाये हैं। प्रत्यक्ष में वे कुछ आगे पीछे हो सकते हैं, किन्तु उससे आगे दिये प्रमुख निष्कर्षो में कुछ अंतर नही आयगा। मैनें उन वृद्धिलोपों के कारण भी दिये हैं। चन्द्र के कुछ नक्षत्र महाभारत के स्पष्ट वचनानुसार या संकेतानुसार निश्चित होकर उनकी चर्चा पूर्व प्रकरणों में की गई है (इन नक्षत्रों को तालिका में बडे तौर पर छापा है)।

तिथि	चन्द्र का नक्षत्र	सूर्य का नक्षत्र	विवरण
		-शुक्ल पक्ष, कार्तिक का	
चतुर्दशी	**रेवती**	(चित्रा)	श्रीकृष्ण का उपप्लव्य से प्रयाण। सूर्य (पहिले से ही) चित्रा में।
पूर्णिमा	आश्विनी	स्वाती	प्रवास चालू
		-कृष्ण पक्ष (तेरह दिनों का)	
(प्रतिपदा का लोप)			
द्वितीय	भरणी	स्वाती	प्रवास चालू
तृतीया	कृत्तिका	स्वाती	प्रवास चालू
चतुर्थी	रोहिणी	स्वाती	प्रवास चालू
पंचमी	मृग	स्वाती	सायंकाल श्रीकृष्ण वृकस्थल पहुंचे ; वहाँ रात्रि मुक्काम।
षष्ठी	आर्द्रा	स्वाती	श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर प्रवेश ; रात्रि में विदुर के घर मुक्काम।
(पुनर्वसुका लोप)			
सप्तमी	**पुष्य**	स्वाती	**असफल शांतिवार्ता** ; श्रीकृष्ण ने तुरन्त हस्तिनापुर छोड़ा ; जाते जाते सातवे दिन बाद की अमावास्या युद्धारंभार्थ घोषित ; कौरव सेना का हस्तिनापुर से प्रस्थान ; श्रीकृष्ण सायंकाल उपप्लव्य पहुंचे ; **बलराम यात्रा प्रारंभ** ; पांडव सेना का उपप्लव्य से प्रस्थान।
अष्टमी	आश्लेषा	स्वाती	दोनों सेना कुरुक्षेत्र पहुची।
नवमी	**मघा**	स्वाती	दोनों सेना के युद्धपूर्वाभ्यास।
दशमी	पूर्वा	स्वाती	,,
एकादशी	उत्तरा	स्वाती	,,

(द्वादशी का लोप)			
त्रयोदशी	**हस्त**	स्वाती	कृतवर्मा यादव सेना के साथ दुर्योधन से मिला
चतुर्दशी	**चित्रा**	स्वाती	व्यास-धृतराष्ट्र (युद्ध पूर्व) संवाद
अमावास्या	**चित्रा (वृद्धि)**	स्वाती	**गीतोपदेश; युद्धारंभ**। सूर्योदय समय चन्द्र चित्रा में ; कुछ समय बाद स्वाती में प्रवेश
		-शुक्ल पक्ष, मार्गशीर्ष का	
(स्वाती का लोप)			
प्रतिपदा	विशाखा	विशाखा	विश्राम दिवस।
द्वितीया	अनुराधा	विशाखा	(प्रत्यक्ष) लड़ाई का दूसरा दिवस।
तृतीया	ज्येष्ठा	विशाखा	विश्राम दिवस।
चतुर्थी	मूल	विशाखा	लड़ाई का तीसरा दिवस।
पंचमी	पूर्वाषाढा	विशाखा	विश्राम दिवस।
षष्ठी	उत्तराषाढा	विशाखा	लड़ाई का चौथा दिवस।
सप्तमी	श्रवण	विशाखा	विश्राम दिवस।
अष्टमी	धनिष्ठा	विशाखा	लड़ाई का पांचवा दिवस।
नवमी	शततारका	विशाखा	विश्राम दिवस।
दशमी	पू. भाद्रपदा	विशाखा	लड़ाई का छठा दिवस।
एकादशी	उ. भाद्रपदा	विशाखा	विश्राम दिवस।
द्वादशी	रेवती	विशाखा	लड़ाई का सातवा दिवस।
त्रयोदशी	अश्विनी	विशाखा	विश्राम दिवस।
चतुर्दशी	भरणी	विशाखा	लड़ाई का आठवा दिवस।
पूर्णिमा	कृत्तिका	अनुराधा	विश्राम दिवस।
		- कृष्ण पक्ष	
प्रतिपदा	रोहिणी	अनुराधा	लड़ाई का नवा दिवस।

द्वितीया	मृग	अनुराधा	विश्राम दिवस।
तृतीया	आर्द्रा	अनुराधा	लड़ाई का दसवा दिवस ; शाम को भीष्मपतन ; **भीष्म की शरशय्या पर प्रथम रात्रि।**
चतुर्थी	पुनर्वसु	अनुराधा	विश्राम दिवस ; **संजय का प्रथम युद्ध वृत्तांत (गीतोपदेश प्रकाशन सह)** ; द्रोण को सेनापतित्व का अभिषेक।
पंचमी	पुष्य	अनुराधा	लड़ाई का ग्यारहवा दिवस।
षष्ठी	आश्लेषा	अनुराधा	विश्राम दिवस।
सप्तमी	मघा	अनुराधा	लड़ाई का १२ वा दिवस।
अष्टमी	पूर्वा	अनुराधा	विश्राम दिवस।
नवमी	उत्तरा	अनुराधा	लड़ाई का १३ वा दिवस ; अभिमन्यु वध।
दशमी	हस्त	अनुराधा	विश्राम दिवस।
एकादशी	चित्रा	अनुराधा	लड़ाई का १४ वा दिवस ; जयद्रथ वध ; रात्रियुद्ध। उत्तर रात्रि में चन्द्रोदय;एवं लड़ाई रातभर चालू (इस एक दिन के बाद विश्राम दिन नही)।
द्वादशी	स्वाती	अनुराधा	लड़ाई का १५ वा दिवस ; द्रोणवध।
त्रयोदशी	विशाखा	अनुराधा	विश्राम दिवस ; कर्ण को अभिषेक।
चतुर्दशी	अनुराधा	ज्येष्ठा	लड़ाई का १६ वा दिवस।
अमावास्या	ज्येष्ठा	ज्येष्ठा	विश्राम दिवस।

-शुक्ल पक्ष, पौष का

प्रतिपदा	मूल	ज्येष्ठा	लड़ाई का १७ वा दिवस ; कर्णवध।
द्वितीया	पूर्वाषाढा	ज्येष्ठा	विश्राम दिवस ; शल्य को अभिषेक।
तृतीया	उत्तराषाढा	ज्येष्ठा	लड़ाई का १७ $\frac{१}{२}$ वा दिवस ; मध्यान्ह में शल्यवध, बाद में लड़ना स्थगित।

उत्तरायण प्रारंभ

चतुर्थी	**श्रवण**	ज्येष्ठा	**बलराम यात्रा की बयालीसवे दिन समाप्ति ;** आधा दिन भीम -दुर्योधन गदायुद्ध होकर लड़ाई का १८ वा दिवस पूर्ण ; मध्यरात्रि में अश्वत्थामा द्वारा निद्रिस्त पांडव सेना की कतल ; दुर्योधन मृत्यु।
पंचमी	**धनिष्ठा**	ज्येष्ठा	सामुदायिक दाहक्रिया ; **शौच पालन मास प्रारंभ।**
षष्ठी	शततारका	ज्येष्ठा	
सप्तमी	पू. भाद्रपदा	ज्येष्ठा	
अष्टमी	उ. भाद्रपदा	ज्येष्ठा	
नवमी	रेवती	ज्येष्ठा	
दशमी	अश्विनी	ज्येष्ठा	
एकादशी	भरणी	ज्येष्ठा	
द्वादशी	कृत्तिका	मूल	
त्रयोदशी	रोहिणी	मूल	
चतुर्दशी	मृग	मूल	
पूर्णिमा	आर्द्रा	मूल	

-कृष्ण पक्ष

प्रतिपदा	पुनर्वसु	मूल
द्वितीया	पुष्य	मूल
तृतीया	आश्लेषा	मूल
चतुर्थी	मघा	मूल
पंचमी	पूर्वा	मूल
षष्ठी	उत्तरा	मूल
सप्तमी	हस्त	मूल
अष्टमी	हस्त (वृद्धि)	मूल

नवमी	चित्रा	मूल	
दशमी	स्वाती	पूर्वाषाढा	
एकादशी	विशाखा	पूर्वाषाढा	
द्वादशी	अनुराधा	पूर्वाषाढा	
त्रयोदशी	ज्येष्ठा	पूर्वाषाढा	
चतुर्दशी	मूल	पूर्वाषाढा	
अमावास्या	पूर्वाषाढा	पूर्वाषाढा	

-शुक्ल पक्ष माघ का

प्रतिपदा	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा	
द्वितीया	श्रवण	पूर्वाषाढा	
तृतीया	धनिष्ठा	पूर्वाषाढा	
चतुर्थी	शततारका	पूर्वाषाढा	**शौचपालन मास समाप्त।**
पंचमी	पू. भाद्रपदा	पूर्वाषाढा	पांडवों का हस्तिनापुर प्रवेश।
षष्ठी	उ. भाद्रपदा	पूर्वाषाढा	} युधिष्ठिर को राज्याभिषेक आदि।
सप्तमी	रेवती	पूर्वाषाढा	}
अष्टमी	अश्विनी	उत्तराषाढा	}
नवमी	भरणी	उत्तराषाढा	}
दशमी	कृत्तिका	उत्तराषाढा	श्रीकृष्ण - पांडवों की भीष्म से भेट।
एकादशी	रोहिणी	उत्तराषाढा	**भीष्मोपदेश प्रारंभ।**
द्वादशी	मृग	उत्तराषाढा	उपदेश का दूसरा दिन।
त्रयोदशी	आर्द्रा	उत्तराषाढा	उपदेश का तीसरा दिन।
चतुर्दशी	पुनर्वसु	उत्तराषाढा	उपदेश का चौथा दिन।
पूर्णिमा	पुष्य	उत्तराषाढा	उपदेश का पांचवा दिन ; भीष्म की शरशय्या पर ५८ वी रात्रि ; उसकी समाप्ति वेला में **उत्तरायण प्रारंभ पर भीष्म निधन।**

इसमें दर्शाये वृद्धि लोपों का स्थूल स्पष्टीकरण प्रस्तुत है।

प्रथम कृष्ण पक्ष :— यह तेरह दिन का होने से उसमें दो तिथि लोप थे (प्रकरण ५)। पूर्व लेखन मे मैने इस कृष्ण पक्ष की (तथा कार्तिक शुक्ल पक्ष की) जो स्थूल कल्पना दी थी, उसमें जरासा परिवर्तन अधिक सुसंगत देखकर, तदनुसार यहां तिथियाँ एवं नक्षत्र दिये हैं। महाकवि ने तेरह दिन के इस कृष्ण पक्ष में सप्तमी को चन्द्र पुष्य में , तथा उसके आठवे दिन अमावास्या पर 'इन्द्र स्वामित्व के' (चित्रा) नक्षत्र में दर्शाया है (प्रकरण १३)। यह देखते इस पक्ष के उत्तरार्ध मे चन्द्र की एक नक्षत्र वृद्धि निश्चित है। चन्द्र की गति नित्य चंचल होकर, कुछ मात्रा में कम ज्यादा होती रहती है। इसके परिणाम स्वरूप तिथि नक्षत्रों में लोपवृद्धि होती है। कुछ विशेष परिस्थिति में तो तिथिलोप को लगकर ही नक्षत्रवृद्धि संभव है। किन्तु तिथि नक्षत्रों की लोपवृद्धि हेतु चन्द्र का नक्षत्र प्रवेश एवं तिथिका प्रारंभ सूर्योदय के निकट (पहिले या बाद में) होना आवश्यक है। और अंत में, महाभारत का इस संदर्भ में विवेचन करने में हम प्राचीन काल में भारतवर्ष में प्रचलित ज्योतिर्विद्या का विचार करते हैं यह भी ध्यान मे लेना आवश्यक है।

मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष :— यहां (चन्द्र का) एक नक्षत्र लोप है ; अन्यथा पूर्णिमा को चन्द्रमा भरणी में मानना पड़ेगा , किन्तु मार्गशीर्ष पूर्णिमा को चन्द्र मृग से इतना पीछे नहीं होगा। अधिक से अधिक वह कृत्तिका में हो सकेगा। किन्तु प्रस्तुत संदर्भ में वह कृत्तिका के आगे भी नहीं होगा ; क्योंकि उधर गदायुद्ध के रोज चन्द्र का श्रवण नक्षत्र निश्चित है। इस कालावधि में सूर्यचन्द्र की परस्पर स्थिति सुसंगत होने वह लोप मैंने स्वाती का माना है ।

अंतिम कृष्ण पक्ष :— इसमें एक नक्षत्र वृद्धि है, अन्यथा अमावास्या पर सूर्य के साथ चन्द्र की स्थिति सुसंगत नही होगी।

इस प्रकार हम एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। महाभारत के कालगणनात्मक एवं ज्योतिषात्मक उल्लेख सुसंगत एवं शास्त्रशुद्ध होकर बताते हैं कि, उसमें उल्लेखित उत्तरायण प्रारंभ के समय सूर्य उत्तराषाढा नक्षत्र में था। फिर , सूर्य एक नक्षत्र में तेरह - चौदह दिन रहता है, और भीष्मनिधन समय के उत्तरायण प्रारंभ तक उसने उत्तराषाढा में करीब आठ दिन बिताये थे। इसका आशय यह हुवा कि, उस समय सूर्य उत्तराषाढा में मध्य के किंचित आगे पहुचा था। इस निष्कर्ष के आधार पर अब हमें इस कालखंड का अनुमान करना है।

क्या महाभारत का उत्तरायण प्रारंभ श्रवण नक्षत्र के आरंभ पर होता था ?

किन्तु उसके पूर्व कुछ विद्वानों के इस प्रतिपादन पर विचार करें कि, महाभारत में उत्तरायण प्रारंभ श्रवण के आरंभ में बताया है ; जिसके लिये वे यह आधार देते हैं - आदिपर्व में अप्सरा मेनका इन्द्र से कहती है ,

चकारान्यं च लोकं वै क्रुद्धो नक्षत्रसंपदा
प्रतिश्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि चकार यः ॥ ७१ - ३४

" (ऋषि विश्वामित्र इतना शक्तिशाली है कि) उसने अलग सृष्टि निर्माण की ; तथा (ईश्वर निर्मित) नक्षत्र मंडल पर क्रुद्ध होकर श्रवण से प्रारंभ होनेवाला दूसरा अपना नक्षत्र मंडल स्थापित किया" । इसके अलावा एक अन्य श्लोक में महर्षियों से ब्रह्मा कहते हैं ,

श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतवः शिशिरादयः (आश्वमेधिक पर्व ४४-२)
"नक्षत्रगणना श्रवण से प्रारंभ होती है , तथा ऋतुगणना शिशिर से" ।

वैसे इन श्लोकों मे नक्षत्र मंडल का आरंभ बताया होकर उत्तरायण का उल्लेख नहीं। किन्तु उपरोक्त लेखक प्रतिपादन करते हैं कि, महाभारत में नक्षत्रों का आरंभ श्रवण से बताने का कारण यही होगा कि, उस समय उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य श्रवण के आरंभ में होता होगा। इस तर्क के लिये ये लेखक * ऐसा आधार देते हैं कि, (महाभारत से अधिक प्राचीन) लगध मुनि के वेदांगज्योतिष के समय नक्षत्रों की गणना धनिष्ठा से आरंभ होती थी , तथा उत्तरायण प्रारंभ भी सूर्य धनिष्ठा के आरंभ में होते समय होता था ; अतः जब बाद में नक्षत्रगणना में श्रवण को प्रथम स्थान दिया गया तब वह इसीलिये होगा कि, उत्तरायणप्रारंभ पर सूर्य का स्थान श्रवणारंभतक खसक आया होगा।

किन्तु यह एक अजीब तर्क है। वेदांगज्योतिष के पहिले वेद काल में नक्षत्रगणना कृत्तिका से की जाती थी। क्या वह इसलिये कि उस समय उत्तरायणप्रारंभ पर सूर्य कृत्तिका के आरंभ में होता था ? फिर श्रवण के स्थान पर बाद में अश्विनी से नक्षत्र गणना आरंभ की जाने लगी ; उसका उत्तरायण प्रारंभ से क्या संबंध ? हर ९५५ वर्षों बाद उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य का स्थान एक नक्षत्र पीछे जाता है , (अगला प्रकरण देखिये) । क्या ऐसे हर समय नक्षत्रों की गणना में भी परिवर्तन किया जाता है ? किन्तु वह बात भी अलग रखें ; मैत्री

---

* शं. बा. दीक्षित, " भारतीय ज्योतिषशास्त्र " (मराठी) पृ. ११०- १११ ; डॉ गोरखप्रसाद , "भारतीय ज्योतिष का इतिहास " पृ, ६८- ६९ ; आदि।

उपनिषद में उत्तरायण प्रारंभ धनिष्ठा में होने के उल्लेख के बावजूद, नक्षत्रगणना कृत्तिका से है।इसके अलावा , स्वयं महाभारत में ही धार्मिक विधियों के लिये नक्षत्रों का आरंभ कृत्तिका से किया है (अनुशासन पर्व अध्याय ६४,८९) । ऐसा प्रतीत होता है कि, उस जमाने में नक्षत्रों की भिन्न - भिन्न यादियाँ प्रचलित थी ; जिनमें एक धनिष्ठा से तो दूसरी (किसी भी संदर्भ में) श्रवण से प्रारंभ होती थी।

फिर नक्षत्रों की गणना श्रवण से होने लगी तब उत्तरायण श्रवण के आरंभ में होता था ऐसा माना , तो एक घोटाला होगा । महाभारत में विश्वामित्र - मेनका कथा पांडवों के भी पहिले की एक अति प्राचीन घटना के रूप में आई है ; और श्रवणारंभ पर उत्तरायण प्रारंभ होने का समय ईसा पूर्व करीब पांचवा शतक है, (यह अगले प्रकरण में दी तालिका मे बताया है)*। फिर क्या वह विश्वामित्र का काल मानकर, उसके कई शताब्दि बाद (ईसवी सदी मे) पांडव, श्रीकृष्ण एवं महाभारत युद्ध का काल माना जावे ? और यदि विश्वामित्र के समय उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य श्रवण के आरंभ में होगा , तो (अगले प्रकरण में स्पष्ट किये नियम के अनुसार) पाण्डवों के समय उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य श्रवण के बजाय पीछे खसकता हुवा उत्तराषाढा में गया होगा।

इसी प्रकार आश्वमेधिक पर्व के उपरोक्त श्लोक में भी ब्रह्मा का जिन प्राचीन ऋषियों से संवाद है, उनमें वशिष्ठ के अलावा विश्वामित्र भी है;अतः कुलमिलाकर बात वही रहती है।

वस्तुतः महाभारतकार ने श्रवण से प्रारंभ होने वाली नक्षत्रगणना का उल्लेख तत्कालीन प्रचलित एक यादी के रूप में किया प्रतीत होता है ; जिसका उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य के स्थान से संबंध नही। और महाभारत के कालगणनात्मक एवं ज्योतिषात्मक वचनों पर आधारित अपना निष्कर्ष यही है कि, भीष्मनिधन समय के उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य उत्तराषाढा में मध्य के किंचित् आगे था। इससे कौनसा कालखंड सूचित होता है ?

❑

---

* इस मुद्दे की चर्चा करने में तिलक को भी इस बात का भान था — देखिये 'गीता रहस्य ' (मराठी) पृ, ५५७ ; तथा दीक्षित का 'भारतीय ज्योतिषशास्त्र ' , पूर्व उल्लेखित पृ. १११.

प्रकरण १६

उस कालखंड का रहस्य

कुछ खगोलशास्त्र की जानकारी

सूर्य , तथा ग्रह आकाश में गोलाकार पश्चिम - पूर्व मार्ग से घूमते रहते हैं (याने पृथ्वी पर से हमें वैसे घूमते दीखते हैं।) भारतीय ज्योतिषशास्त्र में इस मार्ग को सत्ताईस नक्षत्रों मे (बारह राशिओं मे) विभाजित कर, उसे नक्षत्र मंडल (Zodiac) कहते हैं। ये नक्षत्र एक सीधी रेखा में न होकर दक्षिणोत्तर कुछ बिखरे हुए है , अत: नक्षत्र मंडल एक कुछ चौड़ा पट्टा होकर, उसमें सूर्य चन्द्रादि के अपने-अपने मार्ग है ; वे समानांतर न होकर एक दूसरे को तिरछे काटते हैं। इनमें सूर्य के मार्ग को क्रांतिवृत्त (Ecleptic) कहते हैं। विषुववृत्त आकाश के उत्तर एवं दक्षिण ऐसे सीधे दो विभाग करने वाली पूर्व - पश्चिम काल्पनिक गोलाकार मध्य रेषा है। इस आकाशीय विषुववृत्त को नीचे लाते उसने पृथ्वी को स्पर्श करने की कल्पना करने पर , वह पृथ्वी का विषुववृत्त (Equator) (भूमध्य रेखा) होकर, उससे पृथ्वी के उत्तर गोलार्ध एवं दक्षिण गोलार्ध ऐसे दो भाग होते हैं।

क्रांतिवृत्त आकाशस्थ विषुववृत्त को थोडा तिरछा काटते हुए जाता है, और इस प्रकार उसे दो बिंदुओं पर छेदता है। एक बिंदु पर वह विषुववृत्त के उत्तर की ओर से दक्षिण को प्रवेश करता है , तो दूसरे बिंदु पर वह विषुववृत्त के दक्षिण से वापिस उत्तर को जाता है। इन छेदन बिंदुओं को संपात (Equinox) कहते है। क्रांतिवृत्त पर घूमते हुए सूर्य इन बिंदुओं पर आता है तब वह ठीक विषुववृत्त पर होकर, उदय के समय पूर्व दिशा के ठीक मध्य पर,एवं अस्त के समय पश्चिम दिशा के मध्य केन्द्र पर,होता है।

सूर्य क्रांतिवृत्त में घूमता हुवा प्रतिवर्ष विषुववृत्त को छेदकर अधिकतम (करीब २३ $\frac{१}{२}$ अंश) दक्षिण की ओर खसकता है ; और वहाँ से फिर उत्तर की ओर मुडता है ; यह उत्तरायण प्रारंभ है। यह दिवस पाश्चिमात्य दिनगणनानुसार २१ (२२) दिसंबर होता है *। इस रोज सूर्यप्रकाशयुक्त दिन का समय सबसे छोटा और रात्रिकाल सर्वाधिक बडा होता है। तीन मैाह बाद यानी २१ मार्च को सूर्य विषुववृत्त के छेदन स्थान (संपात बिंदु) पर आता है ; यह वसंत संपात है ❑। इस रोज दिन रात समान होते हैं। इसके बाद सूर्य इसी तरह उत्तर

* Winter Solstice

❑ Vernal (Spring) Equinox

की अधिकतम दूरी पर पहुंचकर फिर दक्षिण की ओर मुड़ता है ; तब २१ जून का दिवस होता है*; यह दक्षिणायन आरंभ है। इस रोज दिन सर्वाधिक और रात्रि सबसे छोटी होती है। तदनंतर २१ सितंबर को सूर्य विषववृत्त के दूसरे संपात बिंदु पर आता है❑। इस रोज फिर दिन रात समान होते हैं। यहाँ से सूर्य और दक्षिण को खसकते जाता है।

उत्तरायण का प्रचलित अर्थ है, सूर्य उत्तर दिशा की ओर खसकता रहता है वह काल, फिर इस दरम्यान सूर्य विषुववृत्त के प्रत्यक्ष दक्षिण में हो या उत्तर में। किन्तु इसके अलावा उत्तरायण का दूसरा अर्थ है , सूर्य विषुववृत्त के उत्तर में ही होता है वह काल , फिर इस दरम्यान वह उत्तर की ओर खसकता हो या दक्षिण को। दीक्षित प्रथम अर्थ ज्योतिषगणित के अनुसार तथा दूसरा अर्थ वैदिक असा भेद करते हैं ◆। महाभारत में उत्तरायण प्रारंभ का प्रचलित अर्थ अभिप्रेत है।

संपात चलन

सूर्य का संपात समय का स्थान पूर्व से पश्चिम की और पीछे (यानी सूर्य एवं ग्रह उनके वार्षिक गति में नक्षत्र मंडल में घूमते हैं उसकी उलट दिशा में) खसकते रहता है। इस प्रकार खसकते वह स्थान २५७८० वर्षों मे संपूर्ण नक्षत्र मंडल का (उलटा) चक्कर करता है ; यानी औसतन ९५५ वर्षों मे एक नक्षत्र पीछे जाता है ✢। संपात समय का सूर्य का स्थान इस प्रकार खसकने से उत्तरायण प्रारंभ का भी उसका स्थान उसी दिशा में उतनाही पीछे खसकते रहता है। कई शताब्दि पूर्व उत्तरायण प्रारंभ समय सूर्य मकर राशि मे प्रवेश करता था ; किन्तु अब वैसा नही होता है। फिर भी सूर्य के मकरसंक्रमण को ही कुछ आज भी उत्तरायण प्रारंभ मानते है ; जो गलत है। पाश्चिमात्य (सौर) दिनगणनानुसार २१ (२२) दिसंबर यह उत्तरायणारंभ का दिन ऊपर कहा ही है।

वह शतक कौनसा था ?

वर्तमान पंचांगों में उत्तरायण प्रारंभ पर (२१-२२ दिसंबर को) सूर्य मूल नक्षत्र में , तथा उसका वहां प्रवेश १५ (१६) दिसंबर को बताया जाता है। इस प्रकार उत्तरायण

* Summer Solstice.

❑ Autumn Equinox.

◆ 'भारतीय ज्योतिषशास्त्र ', पूर्व उल्लेखित, पृ.३३ - ३४, तथा देखिये गोरखप्रसाद ,'भारतीय ज्योतिषका इतिहास ', पृ.१६.

✢ इसे Precession of the equinoxes का नियम कहते हैं। संपूर्ण नक्षत्र मंडल के ३६० अंश किये तो सूर्य का यह स्थान इस तरह ७२ वर्षों में एक अंश पीछे जाता है।

प्रारंभ के करीब सात दिन पूर्व सूर्य 'मूल' नक्षत्र में प्रवेश करता है, अर्थात उत्तरायणप्रारंभ पर उसने 'मूल' नक्षत्र करीब आधा पार किया होता है। यह ध्यान में लेकर महाभारत में वर्णित उत्तरायण प्रारंभ के शतक का स्थूल अंदाज किया जा सकेगा। इसमें यह आकृति सहायक होगी।

	मूल	पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	श्रवण	धनिष्ठा	
(पश्चिम)	७ : ६ $\frac{१}{२}$		८ : ५ $\frac{१}{२}$			(पूर्व)
	क	ख	ग घ			

← सूर्य के दैनंदिन भ्रमण की दिशा

→ सूर्य के वार्षिक भ्रमण की दिशा

← सूर्य के उत्तरायण प्रारंभ के स्थान परिवर्तन की दिशा

महाभारत में वर्णित उत्तरायण प्रारंभ के समय सूर्य उत्तराषाढा नक्षत्र में 'घ' बिंदु के पास था ; क्योकि तब वह उस नक्षत्र में आठ दिन रह चुका था, तथा और करीब साढे पाच दिन उसे वहां बिताने थे। इसके विपरीत आजकल वह उत्तरायण प्रारंभ पर 'मूल' नक्षत्र में 'क' स्थान पर होता है। सूर्य का वह स्थान 'घ' से पीछे 'क' तक खसकने में कितना काल लगा होगा ? इस दूरी के तीन भाग है — घग, गख, और खक। इनमें 'घग' विभाग उत्तराषाढा का ८/१३ $\frac{१}{२}$ अंश हैं। उत्तरायण प्रारंभ का सूर्य का स्थान एक नक्षत्र खसकने में ९५५ वर्ष लगते हैं ; इस हिसाब से 'घग' विभाग के ५६६ वर्ष होते हैं। 'गख' विभाग एक संपूर्ण नक्षत्र (पूर्वाषाढा) होने से उसके ९५५ वर्ष होते हैं। अंत में, 'खक' भाग ('मूल') नक्षत्र का ६ $\frac{१}{२}$ /१३ $\frac{१}{२}$ अंश है ; क्योंकि सूर्य 'क' बिंदु के पास होता हैं तब वह मूल नक्षत्र में सात दिन रहकर और ६ $\frac{१}{२}$ दिन उसे वहाँ रहना था ; अत: उस विभाग के लिये ४६० वर्ष होते हैं। कुल जोड़ १९८१ वर्ष होती है। इस प्रकार सूर्य का उत्तरायण प्रारंभ पर स्थान 'घ' से 'क' तक पीछे जाने में करीब १९८१ (१९८०) वर्ष लगे होंगे।

मैने वर्तमान समय में 'मूल' नक्षत्र में सूर्य का प्रवेश १५ दिसंबर को मानकर उसका उत्तरायण प्रारंभ पर स्थान 'क' बिंदु पर बनाया है ; किन्तु वह कुछ वर्ष पूर्व से हो सकता है। किसी नक्षत्र में सूर्य का प्रवेश करीब ७१ वर्षों में एक दिन बदलते रहता है (२५७८० ÷ ३६५)। फिलहाल कुछ पुराने पंचागं देखते मैं सूर्य का 'मूल' नक्षत्र में तारीख १५ दिसंबर को प्रवेश स्थूल रूप से ई. स. १९५० तक पीछे ले जाता हूँ। सारांश,

सूर्य का उत्तरायण प्रारंभ पर स्थान 'मूल' नक्षत्र मे 'क' बिंदु के पास करीब ई. स. १९५० मे मानकर, वह स्थान उत्तराषाढा में 'घ' के पास १९८० वर्ष पूर्व यानी करीब ईसा पूर्व ३० में होगा। इतने भूतकाल संबंधी अनुमान में कुछ वर्षो या दशकों का अंतर स्वाभाविक्ही आ सकेगा। स्थूल निष्कर्ष यह है कि, महाभारत में वर्णित उत्तरायण प्रारंभ ईसा पूर्व प्रथम शतक का दीखता है ! महाभारत की दृष्टि से यह निष्कर्ष अतिशय महत्त्व का होकर हम उसकी और पुष्टि देखें।

करीब ई. स. १९५० के उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य ने मूल नक्षत्र का ७/१३ $\frac{१}{२}$ भाग पार किया था, इस आधार पर हमने शेष भाग के लिये ४६० वर्ष गिने हैं। इसका मतलब यह हुवा कि, ई. स. (१९५० - ४६०=) १४९० के करीब सूर्य उत्तरायण प्रारंभ पर मूल नक्षत्र में अन्त में था। इस समय में से हरबार ९५५ वर्ष घटाने से हम उत्तरायण प्रारंभ के सूर्य के स्थानों के इन कालखंडों पर आते हैं। धनिष्ठा - ईसापूर्व (B.C.) २३३० से ईसा पूर्व १३७५ ; श्रवण - ईसा पूर्व १३७५ से ईसा पूर्व ४२० ; उत्तराषाढा - ईसापूर्व (B.C.) ४२० से ई. स.(A.D.) ५३५ ; पूर्वाषाढा - ई. स. ५३५ से १४९० ; मूल - ई. स. १४९० से २४४५।

अब पाश्चिमात्य विद्वान कोहल (Kohl) के अनुसार, ईसा पूर्व २२४१ के करीब उत्तरायण प्रारंभ (Winter solstice) के समय सूर्य धनिष्ठा (Dolphin) में होता था * ; यह हमारी इस तालिका से सुसंगत है। इसके अलावा दीक्षित अधिक ब्यौरेवार ❑ लिखते हैं कि, ईसा पूर्व १४०० के करीब उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य धनिष्ठा के आरंभ में, तथा ईसा पूर्व ४५० के करीब श्रवण के आरंभ में, होता था। यह भी हमारी गणना के अनुसार ही है। यह तो दोहराने की आवश्यकता ही नहीं कि, उत्तरायण प्रारंभ का सूर्य का स्थान उलटा पीछे खसकता होने से, ऊपर हर नक्षत्र के सामने प्रथम बतायी वर्ष संख्या उस नक्षत्र के समाप्ति स्थान से तथा दूसरी प्रारंभ स्थान से संबद्ध है।

किन्तु इसी की एक भिन्न स्वतंत्र पुष्टि भी देखिये। प्राचीन ग्रीक ज्योतिषज्ञ हिप्पार्कस ने लिख रखा है कि, उनके समय (यानी ईसा पूर्व १२५ वर्ष के करीब) वसंत संपात पर सूर्य Aries (Ram = मेष राशि) में होता था ◆। मेष राशि का प्रारंभ अश्विनी नक्षत्र से

* देखिये "The Chronolgy of the Reign of Asoka Moriya " by P.H.L. Eggermont (PP. 151 - 152)

❑ पू. उ. (मराठी) पृ, १११.

◆ Planets, Stars and Galaxies by A.E.Fanning,P. 61; Columbia Encyclopedia में भी हिप्पार्कस का समय ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दि बताया है। Eggermont (ऊपर उल्लेखित) वह काल ई. स. पूर्व चौथी शताब्दि कैसा बताते हैं यह स्पष्ट नही।

होता है, तथा वसंत संपात उत्तरायण प्रारंभ से तीन (सौर) माह बाद आता है। अब हमारी गणनानुसार ईसा पूर्व १२५ के करीब उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य उत्तराषाढा में, उसका $\frac{२}{३}$ भाग पार किये हुवे था। क्योंकि ईसा पूर्व ४२० में वह उत्तरायण प्रारंभ पर उत्तराषाढा के समाप्ति स्थान पर था ; और (४२०- १२५ =) २९५ वर्षों में उसका स्थान (९५५ वर्ष में एक नक्षत्र इस हिसाब से) उत्तराषाढा में करब $\frac{१}{३}$ भाग पीछे हट गया था। तीन अंग्रेजी माह में सूर्य तीन राशि यानी पौने सात नक्षत्र आगे बढ़ता है। अत: उस वर्ष उत्तरायण प्रारंभ के बाद तीन माह बीतने पर वह उत्तराषाढा का शेष $\frac{१}{३}$ हिस्सा, और उसके अलावा श्रवण से रेवती ये छ: नक्षत्र लांघकर ठीक अश्विनी में (अर्थाता हिप्पार्कस ने कहे अनुसार मेष राशि में) होगा।

इस प्रकार हमने की गणना विश्व के दूसरे खंड में एक श्रेष्ठ ज्योतिषशास्त्रज्ञ ने किये निरीक्षण से सुसंगत है।

वराहमिहिर का वचन

यहाँ प्राचीन भारत के वराहमिहिर के कुछ वचनों पर भी विचार करें। 'बृहत्संहिता' के तीसरे अध्याय में वे कहते है —

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥ ३-१
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत् । २

"एक समय सूर्य का दक्षिण अयन (भ्रमण) आश्लेषा के उत्तरार्ध से तथा उत्तर अयन धनिष्ठा के प्रारभ में शुरू होता था ; प्राचीन ग्रंथों में ऐसा कहा होने से वह सत्य होना चाहिये —१. (किन्तु) वर्तमान में सूर्य का एक (दक्षिण की ओर) अयन कर्कटक के प्रारंभ से तथा दूसरा (उत्तर) अयन मृग यानी मकर राशि के प्रारंभ से शुरू होता है —२" *।

प्राचीन काल में एक समय उत्तरायण प्रारंभ धनिष्ठा में होता था यह हमने ऊपर देखा है। किन्तु वराहमिहिर के काल में वह मकर राशि के प्रारंभ में होता था ऐसा यहाँ बताया है। मकर राशि उत्तराषाढा के द्वितीय चरण से आरंभ होती है। बृहत्संहिता की रचना ई. स. ५६० के करीब हुई होगी ऐसा विद्वानों का अंदाज है। हमारी गणना से उस

* देखिये English Translation by V.Subramanya Sastri, Bangalore, 1947

समय सूर्य उत्तरायण प्रारंभ पर पूर्वाषाढा के अंत में या उत्तराषाढा के आरंभ में होगा। इस प्रकार हमारी गणना और वराहमिहिर के वचन में मात्र पाव $\frac{१}{४}$ नक्षत्र का अन्तर आता है। किन्तु वराहमिहिर का काल भी अनुमान का विषय है। इसके अलावा, हमारी गणना नक्षत्रों से है ; उधर वराहमिहिर ने प्राचीन काल के संबंध मे नक्षत्रों का उल्लेख किया है, फिर भी अपने समय की स्थिति राशियों में बताई है। उनके स्वयं के काल के संबंध में उन्होंने उल्लेख की मकर राशि का आरंभ उत्तराषाढा के द्वितीय चरण से होता है, और नक्षत्रों के ऐसे चरण काल्पनिक हैं। फिर आकाश में सब नक्षत्रों का विस्तार एक समान नहीं है, जब कि हमने प्रति नक्षत्र ९५५ वर्ष औसतन लिये हैं।

कुल मिलाकर निष्कर्ष यह कि, महाभारत में वर्णित उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य उत्तराषाढा के मध्य के करीब था, जिससे ईसा पूर्व प्रथम शतक सूचित होता है। किन्तु यह कालखंड सिकंदर के भारत पर आक्रमण से करीब तीन शतक बाद का है, और इतने इधर पांडव और श्रीकृष्ण हुवे ऐसा किसी का भी कहना नही है। फिर महाभारत मे दिये ज्योतिषात्मक संकेत यह काल कैसा दर्शाते है ?

वह काल महाभारत की रचना का

इसमें रहस्य यह है कि, ये ज्योतिषात्मक वचन स्वयं महाकवि का काल दर्शाते हैं। स्पष्ट शब्दों में निष्कर्ष यह कि, महाभारत की रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दि में या उसके करीब हुई थी ; और यद्यपि उसके रचयिता नें अपना नाम तथा निवास व्यक्त नही किया है, उसने किये ज्योतिषात्मक उल्लेख स्वयं उसका काल दर्शाते हैं। और वह ग्रहस्थिति महाकवि के प्रत्यक्ष जानकारी की थी इसीलिये वह पूर्णतया सुसंगत है। किन्तु उसमें भी उसने कूट रचना की होने से, कईयों को वह विसंगत एवं असंभव प्रतीत होती है। परन्तु इसीके साथ यह भी कि, जिन्होंने वह ग्रहस्थिति सुसंगत मानकर उसमें महाभारत युद्ध का वर्ष देखने का प्रयास किया उनकी भी दिशाभूल हुई।

महाभारत में महाकवि ने युद्धकाल के संबंध मे इतनाहि कहा है कि, युद्ध द्वापर एवं कलियुग के संधिकाल में हुवा। और यद्यपि कलियुग का आरंभ ईसापूर्व ३१०२ में मानने की एक परंपरा भारत में प्रचलित है, वह काल प्रथम किसने तथा किस आधार पर प्रतिपादन किया, और क्या महाभारत के रचियता को वह मान्य था, इस बारे में पर्याप्त प्रमाण नही। महाभारत के वचनों के आधार से युद्धवर्ष निकालने का प्रयास सफल नही

होगा। जो ऐसा प्रयास करते है वे महाभारत की तिथियाँ, दिनगणना, नक्षत्र इनके बारे में गलत धारणा गृहीत धरते हैं। इसका एक विशेष उदाहरण देखिये। श्री तारकेश्वर भट्टाचार्य महाभारत के ज्योतिषात्मक वचनों से युद्धकाल ईसा पूर्व पन्द्रहवी शताब्दी सिद्ध करना चाहते है। * इस युद्धकाल से मैं सहमत हूँ, किन्तु इसके लिये मेरे प्रमाण अन्य होकर उनका महाभारत के ज्योतिषात्मक वचनों से संबंध नही। किन्तु भट्टाचार्य (उस युद्धकाल का अनुमान करने हेतु) युद्धारंभ की अमावास्या पर सूर्य ज्येष्ठा में मानते है ; और उसका यह समर्थन देते हैं कि, श्रीकृष्ण ने जिस रोज हस्तिनापुर में कर्ण के पास 'सप्तमात् दिवसात्' आनेवाली अमावास्या युद्धारंभार्थ घोषित की थी उस दिन चन्द्र मघा मे था ; जब कि महाभारत के अनुसार वह पुष्य में था, और मघा नक्षत्र के दिन तो दोनों सेना कुरुक्षेत्र पहुंच भी गई थी (देखिये प्रकरण १२)। उधर युद्धारंभ से भीष्मनिधन समय यानी उत्तरायण प्रारंभ तक वे (७६ के बजाया) ६७ दिन ही गिनते हैं ; और, लड़ाई के चौदहवे दिन उत्तर रात्रि के चन्द्रोदय का वे स्पष्टीकरण नही दे सकते हैं, तथा बलराम की तीर्थयात्रा के आरंभ समय चन्द्र स्पष्टतया पुष्य मे बताया होने पर भी वे श्रवण में मानते है। यदि महाभारत में दिग्दर्शित तिथियाँ, दिन गणना, नक्षत्र आदि वास्तव आशय के अनुसार सुसंगत लिये, तो उससे करीब ईसा पूर्व प्रथम शतक के अलावा अन्य काल का अनुमान नही हो सकेगा।

इससे अनेक प्रश्नों का समाधान होता है

महाभारत की रचना का यह ईसा पूर्व प्रथम शताब्दि का काल ध्यान में लेने से उसमें यवनों (ग्रीकों) का, शकों (Scythians) का, तथा पल्लवों (Parthenians) का उल्लेख कैसा आया है यह स्पष्ट हो जाता है। भारत के इन विदेशी आक्रमकों को दुर्योधन की और से लडते दिखाया होकर युद्ध में उनका पराजय चित्रित किया है। चिं. वि. वैद्य लिखते हैं कि, "यवनों का यानी ग्रीकों का" भारतीयों से प्रथम सम्पर्क सिकंदर के समय आकर ई. स. की प्रथम सदी तक रहा ❑। एक अंग्रेज विद्वान भी महाभारत में ग्रीक एवं रोमन लोगों का उल्लेख देखते हैं ◆। महाभारत में कुछ ग्रीकमूलक शब्द भी पाये जाते

* "The Date of the Bharata War (From Astronomical Data only" Journal of G.Jha Research Institute, Allahabad ,Vol VIII,Nov. 1950, Part I.

❑ "Mahabharata a Criticism," p. 11 ; किन्तु यहाँ 'यवन' आदि शब्दों का ग्रीक आदि लोगों से संबंध न लगाते उन्हें कोई भारत निवासी जमात माना गया, तो भी मेरे प्रस्तुत विवेचन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

◆ H.G. Rawlinson, "Intercourse between India and the Western World" p. 172

हैं। (आदिपर्व के अध्याय ६१ एवं १४७ में) लाक्षा गृह से पांडवों के पलायन के संबंध में 'सुरुंग' (सुरंग) शब्द आया है ; जिसका संबंध ग्रीक शब्द Syrinx (भूमिगत गुप्त मार्ग) से लगाया गया है *। 'त्रिकोण' शब्द के बारे में भी ऐसा ही तर्क किया गया होकर 'यवन' शब्द Ionians से बना बताया गया है ❑। 'बर्बरान्' शब्द भी इसी प्रकार का है। ◆

मगध के सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आकर रहे ग्रीक (यूनानी) राजदूत मेगॅस्थनीस के भारतवर्ष विषयक वृत्तांत में यहां की कुछ पौराणिक कथाओं का उल्लेख होने पर भी, महाभारत समान अति लोकप्रिय रचना का उल्लेख क्यों नहीं, इसका भी खुलासा अब हो जाता है। महाभारत की रचना ही बाद मे हुई हो, तो मेगॅस्थनीस ने उसका उल्लेख न करना स्वाभाविक ही है।

कहा जाता है कि महाभारत का सर्वप्रथम उल्लेख ई.स. की प्रथम सदी के अंत में ग्रीक प्रवासी पंडित Dion Chrysostom के वचनों में आता है (देखिये "Columbia Encyclopedia")। अलेक्झांड्रिया शहर के बाजारों में वह कुछ भारतीय व्यापारियों से मिला था (Rawlinson, उक्त Pages १४०-१४१)। किन्तु उसने इतनाही कहा है कि, भारतनिवासी लोक (ग्रीक महाकवि) होमर का काव्य गाते रहते हैं; वेबर तथा कुछ अन्य विद्वान इसी में महाभारत का उल्लेख देखते हैं। किन्तु जॅकोबी की राय में वह होमर का ही भारतीय भाषांतर होगा ✢। कुछ भी हो, वह उल्लेख बहुत ही संदिग्ध है। उसे अलग रखा, तो महाभारत का सर्वप्रथम स्पष्ट उल्लेख गुप्त सम्राटों के समय के एक ताम्रपट में उपलब्ध होता है। उसका समय ई.स. ४४५ आंका गया होकर, उसमें 'शतसाहस्त्र्याम् संहितायां' ('एक लक्ष श्लोकों की संहिता में') ऐसे शब्द हैं। ▲

महाभारत में मात्र नक्षत्रों का उल्लेख है ; बारह राशि तथा सात वारों का नहीं। ये दोनों बातें भारतवर्ष में बाद में प्रचलित हुई। भारतीय राशियों के नाम युरोपीय नामों से पूर्णत: मिलते जुलते हैं।

* Hopkins, "The Great Epic of India," p. 372

❑ उक्त p. 393

◆ H.Rawlinson, उक्त

✢ देखिये Winternitz,"A History of Indian Literature," English Translation, Second edition, part II, p. 408.

▲ देखिय "Inscriptionum Indicarum" , Vol. III, p. 134 ; Indian Antiquary , XVII p. 215, XIX pp. 227 ff; दीक्षित, पृ. १०८.

फिर ,इस महाकाव्य में श्रीकृष्ण का वर्णन उसमें कथन किये घटनाक्रम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले एक मानवी व्यक्ति इतने ही स्वरूप का न होकर, विश्व का निर्माता, रक्षक एवं संहारकर्ता के रूप में भी किया गया है। समाज की आम धारणा में कोई व्यक्तित्व ऐसे विश्वरूपात्मक ईश्वरी स्तर पर पहुंचने में दीर्घ कालावधि आवश्यक है। योगी अरविंद लिखते हैं ''महाभारत में श्रीकृष्ण को एक ऐतिहासिक व्यक्ति तथा अवतार इन दोनों स्वरूपों में चित्रित किया है ; अत: 'भारत 'के पुरातन कथानक , काव्य या परंपरा को वर्तमान स्वरूप प्राप्त होने तक — यानी ईसा पूर्व पांचवी सदी से प्रथम सदी के दरम्यान — श्रीकृष्ण की भक्ति एवं अवतारिता अच्छी प्रकार प्रस्थापित हो गई होगी'' *। वह किसी समकालीन ने किया वर्णन नही हो सकता।

कुछ विद्वान महाभारत में बौद्ध एवं जैन धर्मों के स्पष्ट या अस्पष्ट उल्लेख देखते है ❑।। इसकी भी संगति महाभारत के यहां बताये रचना काल से लग सकती है। इसी प्रकार, इस महाकाव्य में एक अतीव कर्मठ एवं आत्मविभाजन कारी समाज पद्धति के विरुद्ध उदार सामाजिक व्यवस्था का पुरस्कार क्यों दीखता है, यह भी इस रचना काल के आधार पर समझमें आ सकता है। महाभारत में ,तथा उसमें मध्यवर्ति स्थान प्राप्त गीतोपदेश में, हमें चातुर्वर्ण्य विषयक उदार दृष्टिकोण, तथाकथित उच्च वर्णीयों की अहंकारी वृत्ति का निषेध, तथा सामाजिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में व्यापक समानता का संदेश प्राप्त होता है ◆।

ऐसी कुछ बातों का ख्याल कर कुछ विद्वानों ने वर्तमान महाभारत का रचनाकाल ईसापूर्व (या ईसोत्तर) कुछ सदियों का अनुमानित किया था। किन्तु उन्होंने ज्योतिष विषयक प्रमाणों का आधार नही लिया था। तथा वह अनुमान मूल महाभारत में बाद में किये तथाकथित विस्तार की कल्पना से संबद्ध था।

---

* "Essays on the Gita," First series, Essay II, (हिन्दी भाषांतर मेरा)

❑ C.V. Vaidya , "Mahabharata - a criticism" p. 11; तिलक, 'गीतारहस्य '(मराठी) , पृ. ५५६,५७३ ; तथा P.C. Sengupta, उक्त p. 1.

◆ महाभारत एवं गीता का यह उदार दृष्टिकोण मैंने "Ethics of the Gita" एवं ''गीतातत्त्वमीमांसा'' (हिन्दी) में दर्शाया है। द्वारकादास हर्ष के अनुसार , महाभारत ''उत्तर वैदिक कालीन प्रारम्भिक ब्राह्मण कट्टरता के विरुद्ध मानव- धर्म का क्रान्तिकारी जयघोष है, परम्परा की वह कट्टरता जो बहु - संख्यक शूद्रों और स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार प्रदान नही करती। उन लाखों - करोडों नरनारियों के लिए , जो अनुदारवादी वेदपंथियों की अवज्ञा के शिकार थे , महाभारत नया वेद बनकर आया। '' ('महाभारत का अर्थ' पृ. १२)

वर्तमान महाभारत किसने रचा ?

अब यह स्पष्ट होगा कि, वर्तमान महाभारत कौरव पांडवों के पितामह एवं समकालीन महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास की रचना नहीं है। उनका उल्लेख इसमें तृतीय पुरुष में आया है, यद्यपि वे स्वयं इस सारे घटनाक्रम में एक प्रमुख पात्र हैं। कहीं-कहीं तो उन्हें 'भगवान व्यास ' भी कहा है। इसके अलावा ,महाभारत में कई स्थानोंपर सत्यवती, कुंती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि स्त्रियों के जिस प्रकार वर्णन आये हैं, वैसे कोई भी पितामह, चाहे जितना बडा कवि क्यों न हो, अपनी ही छोटी बडी कुलस्त्रियों का नही करेगा। और यहां यह भी उल्लेखनीय है कि, तैत्तिरीय आरण्यक में व्यास एवं वैशंपायन का उल्लेख है , किन्तु उसमें महाभारत का निर्देश नही।

इस महाकाव्य के रचयिता ने इसके प्रमुख प्रसंग कुछ पुरातन रचना, दंतकथा, आदि से लिये होंगे। छांदोग्य उपनिषद के समान कुछ प्राचीन ग्रंथों मे श्रीकृष्ण का उल्लेख आता है। प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में 'महाभारत' का उल्लेख नही है, किन्तु कौरव-पांडव कथा का संदिग्ध और कहीं-कहीं विपर्यस्त उल्लेख दीखता है ।पाणिनि के व्याकरण में 'महाभारत' शब्द आया है, किन्तु वह महाभारत काव्य के लिये ही है ऐसा नही, ऐसा चि.वि. वैद्य (Weber का आधार लेकर) कहते हैं *। सांख्यायन श्रौत सूत्र में (४-१६) कुरुक्षेत्र पर हुए युद्ध का उल्लेख होकर उसमें कौरवों का पराजय बताया है। उपलब्ध प्राचीन भारतीय साहित्य में वह उस घटना का प्रथम उल्लेख माना जाता है । यह संभव है कि, कौरव -पांडव कथा की महर्षि व्यास के नाम पर कोई छोटी सी गद्य या पद्य रचना विशेष रूप से प्रचलित हो। वर्तमान महाभारत मे अति प्राचीन गद्यांश बीच-बीच में पाया जाता है ; वह व्यास की मूल रचना से उद्धृत किया हो सकता है ; तथा हो सकता है कि, उस रचना में वनवासारंभ तिथि, युद्धारंभ तिथि आदि कुछ मूलभूत तिथियों का उल्लेख हो। किन्तु एक लक्ष श्लोकों का यह प्रचंड महाकाव्य (यत्रतत्र कुछेक प्रक्षिप्त श्लोक छोड़कर) कुलमिलाकर कुरुक्षेत्र युद्ध के कई सदियों बाद किसी महापंडित ने की रचना प्रतीत होती है। और उस पुरातन घटना को एक ब्यौरेवार ऐतिहासिक कथा का रूप देने में , इस महाकवि को कई शताब्दी पूर्व की प्रत्यक्ष आकाशस्थ ग्रहस्थिति समग्र ज्ञात होना असंभव होने से, उसने स्वयं की जानकारी की ग्रहस्थिति जोड दी होगी।

---

* "Mahabharata - a Crticism", p. 5. ; "Cambridge a History of India", Vol I , Pages 252 - 253 में भी ऐसाही विचार व्यक्त है।

निरयन कालगणना

ऊपर मैंने वर्तमान समय में सूर्य का मूल नक्षत्र में प्रवेश १५ सितंबर को बताया है। किन्तु (तिलक ने प्रतिपादित) निरयन पद्धति के पंचांग में वह चार दिन पूर्व बताया जाता है। इसका हमारे निष्कर्ष पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

उसका अर्थ होगा कि, उत्तरायण प्रारंभ तक सूर्य ने मूल नक्षत्र में बिताये दिन चार अधिक गिनने होंगे, और वह उस नक्षत्र मे तबतक थोडा अधिक आगे बढा होगा ; अर्थात उत्तरायण प्रारंभ का उसका स्थान उतना कम पीछे खसका होगा। अत: वह स्थान मूल नक्षत्र में पीछे खसकने के अब ४६० के बजाय १७७(१७५) वर्ष ही गिनने होंगे ; और कुल वर्ष संख्या २८५ कम होकर महाभारत में वर्णित उत्तरायण प्रारंभ का काल ई.स. की तृतीय शताब्दि के मध्य के करीब आयगा। इस गणनानुसार उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य के स्थान के काल खंड ये होंगे। धनिष्ठा — ईसा पूर्व २०४५ से ईसा पूर्व १०९० ; श्रवण— ईसा पूर्व १०९० से ईसा पूर्व १३५ ; उत्तराषाढा — ईसा पूर्व १३५ से ई.स. ८२० ; पूर्वाषाढा — ई.स. ८२० से १७७५ ; मूल — ई.स. १७७५ से २७३० तक।

यह गणना भी हिप्पार्कस के विधानों से सुसंगत है। क्योंकि, इस गणना के अनुसार करीब ई.स. १२५ में उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य उत्तराषाढा की सीमा पर (श्रवण की दिशा में) होगा, तथा बाद के तीन माह में (वसंत संपात तक) वह ($१३\frac{१}{२}$ दिनों में एक नक्षत्र की गणना से) रेवती पार कर अश्विनी के उत्तरार्ध में होगा। फिर इस गणना का वराहमिहिर के वचन से अधिक अच्छा मेल बैठता है। इसके अनुसार ईसा पूर्व १३५ से ई.स. १०५ तक उत्तरायण प्रारंभ का सूर्य उत्तराषाढा के चतुर्थ चरण में, बाद में ई,स, ३४४ तक तृतीय चरण में, तथा ई.स. ५८३ तक द्वितीय चरण में (अर्थात् वराहमिहिर ने कहे अनुसार मकर राशि के प्रारंभ में) होगा।

यह गणना Kohl एवं दीक्षित के विधानों से सुसंगत नहीं। किन्तु खांस आपत्ति यह है कि, स्वयं तिलक ने उत्तरायण प्रारंभ श्रवण के आरंभ में होने का काल ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दि बताया है ('गीता रहस्य', सराठी, पृ. ५५७)। वही Kohl एवं दीक्षित का भी कथन होकर वह उपरोक्त दूसरी तालिका से जमता नहीं। फिर महाभारत की रचना ई.स. की तीसरी सदी इतनी अर्वाचीन मानना कहां तक युक्तिसंगत होगा इस पर भी विचार करना होगा।

माघ पूर्णिमा और उत्तरायण प्रारंभ

उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य उत्तराषाढा में था इससे जिस प्रकार कालखंड का अंदाज किया जा सकता है, क्या वैसे ही उस समय माघ पूर्णिमा थी इससे भी कुछ काल निर्णय हो सकता है ?

उत्तरायण प्रारंभ की तिथियों का विशिष्ट ऐतिहासिक कालखंड से वैसा संबंध नही। उत्तरायण प्रारंभ की तिथि इस साल एक तो अगले साल दूसरी हो सकती है। प्रदीर्घ कालांतर से उत्तरायण प्रारंभ की तिथियाँ भी पीछे खसकती है, किन्तु ऐसा ठीक क्रमश: नहीं होता; और किसी तिथि से उत्तरायण प्रारंभ पूर्णत: हट जाने का कालावधि बहुत बड़ा होता है। इस अनुसार, उत्तरायण प्रारंभ पर (वर्तमान समय में होता है वैसा) सूर्य 'मूल' नक्षत्र में होना माघ पूर्णिमा को संभव नही। क्योंकि सूर्य 'मूल' नक्षत्र में होते हुए, माघ पूर्णिमा पर चन्द्र उससे आधा नक्षत्र मंडल अंतर पर नहीं हो सकता। उस पूर्णिमा पर चन्द्र मघा में, या पीछे आश्लेषा या पुष्य में (अन्यथा आगे फाल्गुनी नक्षत्रों में) हो सकता है। अत: इस तिथि को सूर्य आधा नक्षत्र मंडल दूर यानी उत्तराषाढा , श्रवण, धनिष्ठा एवं शततारका (या आगे भाद्रपदा में) हो सकता है। इस प्रकार ,माघ पूर्णिमा पर उत्तरायण प्रारंभ का संभव स्थूल मान से ईसा पूर्व ३२८५ (२३३० + ९५५) से ई.स. ५३५ तक हो सकता है। और चन्द्र फाल्गुनी नक्षत्र में मानकर सूर्य भाद्रपदा नक्षत्र में माना, तो यह काल और भी प्राचीन हो सकता है। सारांश ,माघ पूर्णिमा पर उत्तरायण प्रारंभ महाभारत के रचनाकाल में, तथा उसके पूर्व महाभारत युद्धकाल में भी संभव था।

एक विशेष प्रश्न का उत्तर

यहां एक और स्पष्टीकरण इष्ट होगा। महाभारत कार ने कौरव पांडव युद्ध के वर्णन मे स्वयं के समय की ग्रहस्थिति बताना कहां तक उचित था ? सूर्य , चन्द्र , मंगल, गुरु आदि के स्थान कुछ वर्षो बाद फिर वही आते रहते है। अत: महाकवि ने स्वयं के समय की ग्रहस्थिति युद्धवर्णन में जोडने में असंभवता नही थी। और माघ पूर्णिमा को उत्तरायणारंभ महाभारत की रचनाकाल में एवं उसके पूर्व प्रत्यक्ष युद्धकाल में भी संभव था यह हमने देखा है। किन्तु उत्तरायण प्रारंभ पर सूर्य का उत्तराषाढा के मध्य में स्थान (अयनचलन के नियमानुसार) २६५०० वर्षो बाद पुन: आता है, और इसलिये वह महाभारत युद्धकाल में संभव नही था। इस पर उत्तर यह कि, अयनचलन का वह नियम भारतवर्ष में वराहमिहिर

के समय तक भी ज्ञात नही था * ; फिर महाभारत के रचनाकाल मे वह ज्ञात नही था यह तो कहने की भी आवश्यकता नही। अत: उत्तरायण प्रारंभ समय सूर्य के उत्तराषाढा मे उस स्थान को केन्द्र बिंदु बनाकर अपना कालगणनात्मक एवं ज्योतिषात्मक कूटजाल बुनने में महाकवि को अनुचित प्रतीत नही हुवा। बल्कि उससे आज हमें उस महापंडित का, तथा इस अद्वितीय महाकाव्य की रचना का, काल उपलब्ध हो सकता है ! अन्यथा भी, दीक्षित , तिलक आदि जो महाभारत का उत्तरायण प्रारंभ श्रवण नक्षत्र के आरंभ में मानना चाहते हैं, उन्हें भी वह स्थिति महाभारत युद्धकाल में संभव नही थी यह मान्य करना ही पडता है। क्योंकि उत्तरायण के प्रारंभ पर सूर्य श्रवणांरभ में होने का कालखंड ईसापूर्व चौथी - पांचवी सदी में आता है , और महाभारत युद्ध इतना अर्वाचीन मानना असंभव है।

एक लक्ष श्लोक एक ही महाकवि के

एक लक्ष श्लोकों के प्रचंड महाभारत का मूल कर्ता कोई भी हो, किन्तु यह संपूर्ण महाकाव्य एक ही कर्ता की रचना है, यह इसके श्लोकों से ही स्पष्ट है। परंतु इसके कूटस्थलों से भ्रमित होकर अनेक सोचते हैं कि, यह महाकाव्य तीन पंडितों की अलग-अलग रचनाओं की खिचडी है।

इस संबंध में बहुत चलित धारणा यह है कि, वर्तमान महाभारत व्यास, वैशंपायन और सौति इन तीनों की रचना मिलकर बना हुवा है। ''हिंदी विश्वकोश'' (खंड ९) में यह धारणा इस प्रकार व्यक्त की गई है। ''महाभारत .... की मूल रचना कृष्ण द्वैपायन व्यास ने जय नाम से चौबीस सहस्त्र श्लोकों में की थी ...... कुछ श्लोक अपनी ओर से मिलाकर व्यासशिष्य वैशंपायन ने जनमेजय के सर्पसत्र मे 'भारत' नाम से जय काव्य को लोक विश्रुत किया और अनेक उपाख्यान जोड़कर सौति उग्रश्रवा ने भारत को महाभारत का वर्तमान तथा अंतिम स्वरुप दिया। ...... वस्तुत : व्यास , वैशंपायन और सौति इसके तीन रचयिता होने पर भी व्यास के मूल प्रयोजन , सिद्धान्त और वर्णन शैली में स्वारस्य बने रहने के कारण व्यास ही को महाभारतकार मानने की परंपरा अयथार्थ नही है।''

श्री चिं. वि. वैद्य भी यही व्यक्त करते हैं। 'यद्यपि यह सर्वरचना व्यास की ही है यह धारणा सर्वत्र प्रचलित है, फिर भी उसका आशय लक्षणा स्वरूप ही लेना चाहिये,

* देखिये चिं. वि. वैद्य (पूर्व उल्लेखित) पृ.१२१ ; तथा गोरखप्रसाद ,पूर्व उल्लेखित ,पृ. ११०

जिससे संगति ठीक बैठती है। वैशंपायन या सौति इन्होंने जो वर्णन किया या उसमें वृद्धि की, वह व्यास की ही प्रेरणा से एवं उन्हीं के मत का आधार लेकर, ऐसा मानकर एक लक्ष श्लोकों का कर्तृत्व व्यास महर्षि को दिया जा सकता है। वस्तुत: महाभारत के रचयिता व्यास , वैशंपायन एवं सौति ये तीन थे यही मान्य करना पडता है। ('महाभारताचा उपसंहार', मराठी, पृ. ५, हिंदी भाषांतर मेरा)

इन तीनों मे से व्यास पाण्डवों के शुरू से अंततक समकालीन थे। वैशंपायन भी पाण्डवों के कुछ समय तक समकालीन थे ऐसा महाभारत में आये कुछ उल्लेखों से दीखता है। सौती के विषय में कुछ संदिग्धता है। महाभारत के आदिपर्व में शुरू में ही सौति का एक वचन है (अध्याय १ श्लोक ९,१०,११) , जिसका आशय श्री वैद्य ऐसा लेते हैं कि, सौति ने महाभारत कथा 'सर्पसत्र के समय स्वयं वैशंपायन के मुंह से श्रवण की थी'। ऐसा हो, तो सौति को वैशंपायन का समकालीन मानना पडेगा। किन्तु वैद्य यह भी लिखते हैं , 'यह सौति वैशंपायन का समकालीन नही था ऐसा इस ग्रंथ के कालनिर्णय से निश्चित होता है'; और इसलिये आदिपर्व के आरंभ में आया सौति का वचन 'लक्षणा या अतिशयोक्ति रूप' होकर 'सौति एवं वैशंपायन में हजारो , या कम से कम तो सैकडो वर्षो का अंतर होना चाहिये' (उक्त पृ.९-१०) ।अब इस धारणा का परीक्षण करें।

महाभारत में सर्वत्र कथाकथन , प्रसंग वर्णन, संवाद- उपसंवाद , व्यक्ति चित्रण , आदि में जो एक सुसंगत शैली है उसे देखते , यह संपूर्ण महाकाव्य एक ही कर्ता की रचना होनी चाहिये । अन्यथा , उसमें ऐसी एकरूपता नही होती। फिर एकबार व्यास एवं वैशंपायन की शैली मे ऐसा साम्य संभव भी माना , तो 'हजारों या कम से कम तो सैकडों' वर्षो बाद लिखने वाले सौती की एवं व्यास वैशंपायन की शैली में ऐसी एकरूपता सभंव नही थी। क्या संस्कृत भाषा का स्वरूप भी इतने प्रदीर्घ काल में वही रहा ?

इसके अलावा, वेदविस्तार कर्ता के रूप मे भारतवर्ष में प्रसिद्ध एवं परम आदरणीय महर्षि व्यास की रचना में प्रथम वैशंपायन कुछ जोड दे, और फिर सौति नामका कोई पुराणकथाकार उसमें अपनी विस्तृत रचना जोड दे, और इस सुसंस्कृत विशाल देश के सारे विद्वान, ग्रंथालय, विद्यालय, आश्रम, मंदिर, आदि उसे मान्यता देकर महाभारत की पोथियों मे पुनर्लेखन करते रहे, यह सारी कल्पनाही विचित्र एवं असंभव है। इसके विपरीत महाभारत में ही कहा है कि, व्यास जी के आदेश से एवं उनके समक्ष वैशंपायन ने व्यास की ही रचना जनमेजय को कथन की (आदिपर्व अध्याय ६० एवं ६२, शांतिपर्व अध्याय ३४३); तथा जो वैशंपायन ने जनमेजय को श्रवण कराया वही सौती ने शौनक को कथन

किया (आदिपर्व अध्याय १)। सच तो यह है कि, महाभारत के गहन कूटों का स्पष्टीकरण न कर सकनेसे अभ्यासकों को इस महाकाव्य मे परस्पर विसंगति प्रतीत होकर, इसमें तीन भिन्न रचनाओं का मिश्रण होने का भ्रम होता रहा। अब उन कूटस्थलों का सुसंगत समाधान हो जाने से , महाभारत के तीन रचनाकार मानने की आवश्यकता नही । उसके ऐसे भिन्न कालीन कर्ता होते, तो उसमें ये गहन कूट इस प्रकार नही डाले जाते ; और डाले भी जाते तो दीर्घकाल गूढ नही रहते।

किन्तु, उपलब्ध महाभारत एक ही महाकवि की रचना मानी, तो भी वह रचयिता सौति उग्रश्रवा क्यों न कहा जावे ? इसका उत्तर यह कि, उस सौति ने शौनक के पास जाकर समग्र महाभारत कथन किया, यह इसमें स्वयं सौति ने लिखा न होकर, अन्य कोई कहता है ! इसका मतलब हुआ कि, यह लिखनेवाला , एवं उस संदर्भ मे संपूर्ण सौति - शौनक संवाद श्लोकबद्ध करने वाला , वह कोई अन्य ही लेखक होना चाहिये । एक श्लोक मे (आदि पर्व १-७) सौति को 'कमलपत्राक्ष' कहा है ; क्या स्वयं सौति ऐसा लिखता ?

इस प्रकार वर्तमान महाभारत महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास, वैशंपायन एवं सौति इनमें से किसी का न होकर, उसकी रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दि के करीब (विक्रम संवत आरंभ होने के कालखंड मे) किसी महापंडित ने की हुई होनी चाहिये । उसने अतीव बुद्धिमत्ता से इसमें कौरव - पांडव कथा के संदर्भ मे अनेकानेक विषयों पर उपकथाओं का जाल बुनकर, कुल रचना को प्रथम वैशंपायन - जनमेजय संवाद का, और अंत में उसे भी सौति- शौनक संवाद का, आवरण दिया, और तत्कालीन भारतीय संस्कृती का यह महाकोश निर्माण किया। इसी के साथ उसने इसमें गहन कूट भी कर रखे, जो मूलत: संपूर्ण सुसंगत इस महाकाव्य में विसंगति के आभास निर्माण कर विद्वानों को भ्रमित करते आये हैं ! और इस महाकाव्य में सर्वोच्च कलश के रूप में गीतासंवाद भी समाविष्ट कर, उस महाभारत कार ने अपनी यह महान रचना पूर्ण निष्काम एवं निरहंकार वृत्ति से कौरवपांडव इतिहास के आद्य कथाकार माने गये महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास के चरणों में समर्पित कर दी ! किन्तु यह प्रसिद्ध ही है कि, केवल महाभारत का ही नही अपितु प्राचीन भारतीय अन्य भी ऐसी कुछ रचनाओं का कर्तृत्व परंपरा से उन महर्षि व्यास को दिया जाता है।

अब इस सारे संदर्भ में महाभारत के कूटस्थलों से भ्रमित एक पाश्चिमात्य विद्वान ने की महाभारत कार महाकवि के बारे में यह आलोचना देखिये। " In truth he who

would believe with the orthodox Hindus and the above mentioned Western scholars, that our Mahabharata, in its present form, is the work of one single man, would be forced to the conclusion that this man was, at one and the same time, a great poet and a wretched scribbler, a sage and an idiot, a talented artist and a ridiculous pedant."* । इसी पुस्तक में यह टिप्पणी भी दी है, "Oldenberg (Das Mahabharata, p. 32) calls it a 'scientific monstrocity' to suppose that the Mahabharata was a unified composition."

वर्तमान महाभारत अनेक कवियों की रचनाओं का मिलाजुला मिश्रण है इस प्रतिपादन का एक और प्रयास, उसमें श्लोक पंक्तियों की भिन्न भिन्न अक्षर संख्या एवं उन अक्षरों के लघु - दीर्घ रूप के आधार पर, "The Mahabharata - Its Genesis and Growth (A statistical study)" by M.Y.Yardi इस पुस्तक में किया गया है। इसमें अनुमान किया है कि, मूल महाभारत का प्रथम कर्ता वैशंपायन होकर, बाद मे उसमें सूत, उसका पुत्र सौति , हरिवंश कर्ता एवं पर्वसंग्रहकार ये चार अपनी अपनी रचना जोडते गये। इस तर्क को मेरे अभी तक के विवेचन में पर्याप्त उत्तर प्राप्त हो सकेगा। फिर, क्या किसी एक महाकवि को भिन्न-भिन्न संदर्भ में कुछ भिन्न-भिन्न प्रकार की श्लोक रचना करना असंभव है ? स्वयं ये लेखक ही अपने Introduction में मान्य करते हैं कि, यह असंभव नही .

महाभारत के श्लोकों का प्रमाण

यह महाकाव्य इसके रचयिता ने शुरू से ही एक लक्ष श्लोकों मे किया होकर उसे भारत एवं महाभारत ये दोनो नाम थे । इस विषय मे महाभारत के ही श्लोकों का प्रमाण प्रस्तुत है । बाद में इसमें दी उपकथाएँ अलग रखकर विद्यार्थियों की सहूलियन के लिये इसका लघु संस्करण तैयार किया गया। ऐसा नही कि, प्रथम लघु रचना कर बाद में किसी ने उसका एक लक्ष श्लोकों में विस्तार किया। इस महाकाव्य मे वर्णित प्रमुख विषय निर्दिष्ट कर आदि पर्व के आरंभ मे सौती का यह वचन आता है —

* "A History of Indian Literature" by M. Winternitz , Vol I Part II, Epics and Puranas , pp. 404 - 405.

इदं शतसहस्त्रं तु श्लोकानां पुण्यकर्मणाम् ॥ आदिपर्व १-१०१
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्
चर्तुविंशतिसाहस्त्री चक्रे भारतसंहिताम् ॥ १०२
उपाख्यानैर्विना तावत् भारतं प्राच्यते बुधैः
ततोप्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः ॥ १०३
अनुक्रमिणकाध्यायं वृत्तान्तं सर्वपर्वणाम्
इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम् ॥ १०४
ततोऽ न्येभ्यो ऽ नुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ विभुः । १०५
.... अस्मिन्स्तु मानुषे लोके वैशंपायन उक्तवान् ॥ १०८
शिष्यो व्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदां वरः
एकं शतसहस्त्रं तु मयोक्तं वै निबोधत ॥ १०९

''पुण्यकर्मा व्यक्तियों के (चरित्र वर्णन करने वाले) इन एक लक्ष श्लोकों को (उनमें दिये) उपाख्यानों सहित श्रेष्ठ 'आद्य भारत' कहते हैं ।बाद में उपाख्यानों को छोड़कर (उसके रचयिता ने) चौबीस हजार श्लोकों की भारतसंहिता तयार की, जिसे विद्वान (आद्य भारत से अलग दर्शाने हेतु) 'भारत' कहते है ; और तदनंतर (उसके रचयिता) ऋषि ने पुनः (और) संक्षेप कर सब पर्वों का सारांश देनेवाला डेढ़ सौ श्लोकों का एक अनुक्रमणिकाध्याय तैयार किया। महर्षि द्वैपायन ने यह महाकाव्य प्रथम अपने पुत्र शुक को पढ़ाया ; और बाद में भगवान व्यास ने अन्य सुयोग्य शिष्यों से इसका उपदेश दिया। .... इस मनुष्य लोक में व्यास के शिष्य ,संपूर्ण वेदवेत्ताओं में अग्रणी, धर्मात्मा वैशंपायन ने इसका (राजा जनमेजय को कथन द्वारा) प्रचार किया। वही एक लक्ष श्लोकों की रचना मैं आपको कहता हूँ , सुनिये।''

भांडारकर शोध संस्था ने इसमें जहां-जहां 'शतसहस्त्र' का उल्लेख आया है, वे पंक्तियाँ हटा दी। शुरू की दो पंक्तियाँ हटाने से भ्रम निर्माण होता है कि, इस काव्य की प्रथम रचना 'उपाख्यानैर्विना' चौबीस हजार श्लोकों की ही थी , तथा बाद में उसे बढाकर एक लक्ष श्लोकों की की गई। किन्तु वास्तविकता यह है कि, एक लक्ष श्लोकों का 'आद्य भारत' था , जिसका संक्षेप कर चौबीस सहस्त्र श्लोकों का संक्षिप्त संस्करण अध्ययन की सुविधा के लिये किया गया। आदिपर्व में ही 'व्यास' रचित एक लक्ष श्लोकों की रचना

का आगे और भी उल्लेख होकर, वे श्लोक भांडारकर संस्था नें मान्य किये हैं। वैशंपायन ने कौरव - पांडव कथा का प्रथम अति संक्षिप्त सारांश कथन करने बाद जनमेजय ने कहा कि, मैं 'महाभारत आख्यान' संपूर्ण श्रवण करना चाहता हूँ (६२- १,२)। इसपर वैशंपायन ने कहा —

महर्षेः सर्व लोकेषु पूजितस्य महात्मनः
प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यामिततेजसः ॥ आदिपर्व ६२-१३
इदं शतसहस्त्रं हि श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा ॥ १४
... जयो नामेतिहासोऽ यं श्रोतव्यो विजिगीषुणा ॥ २०

'' सब लोकों में पूज्य, महात्मा , असीम तेजस्वी, महर्षि व्यास का संपूर्ण प्रतिपादन मैं अब कहूंगा — १३. अति प्रभावी, सत्यवतीपुत्र व्यास ने पुण्यकर्मा व्यक्तियों की यह कथा एक लक्ष श्लोकों में कही है — १४ .... यह 'जय' नाम का इतिहास विजयेच्छु पुरुष द्वारा अवश्य श्रवणीय है ''। इसमें एक लक्ष श्लोकों का कर्तृत्व महर्षि 'व्यास' को दिया होकर, इसी रचना को वैशंपायन 'जय' तथा जनमेजय 'महाभारत' कहते है। ऐसा नही कि, वैशंपायन के बाद इस रचना को वर्तमान 'महाभारत' स्वरूप प्राप्त हुवा।

इसी अध्याय में वैशंपायन और कहते है —

त्रिभिर्वर्षेः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनि :
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम् ॥ ६२-५२

'' कृष्णद्वैपायन मुनि ने प्रतिदिन (प्रातःकाल) उठकर (यह) अद्भुत महाभारत आख्यान की तीन वर्षों में रचना की ''। तीन वर्ष यानी १०९५ दिन, और उनमें कुछ कम कर एक हजार कार्य दिवस गिने तो भी, प्रति दिन औसतन सौ श्लोक सरल अनुष्टुप छंद में, (और उसमे भी कई उपकथा पुराणादि अन्य ग्रंथों से उद्धृत कर) रचना एक प्रतिभासंपन्न महाकवि के लिये कौन सी कठिन बात थी ? और यदि उस महाकवि की मूल रचना मात्र आठ हजार आठ सौ श्लोकों की ही होती, तो वह तीन वर्षों में पूर्ण की यह कहने में क्या विशेषता थी ?

आदिपर्व में शौनक सौति को कहते हैं —

महाभारतमाख्यानं पाण्डवानां यशस्करम्
जनमेजयेन पृष्ठः सन् कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ आदिपर्व ५९ -६
श्रावयामास विधिवत् तदा कर्मान्तरे तु सः
तामहं विधिवत् पुण्याम् श्रोतुमिच्छामि वै कथाम् ॥ ७

"पांडवों का यश वर्णन करनेवाला महाभारत आख्यान जनमेजय के प्रश्न करने पर कृष्णद्वैपायन जी ने (सर्पयज्ञ में) धार्मिक कर्मों के बीच विश्राम समय में (वैशंपायन द्वारा) उसे क्रमवार सुनाया, वह पुण्यमयी कथा मैं क्रमशः श्रवण करना चाहता हूं" । इस पर सौति ने उत्तर दिया —

हन्त ते कथयिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम्
कृष्णद्वैपायनमतं महाभारतमादितः ॥ ५९-९

" अच्छा , कृष्णद्वैपायन रचित महाभारत नामक श्रेष्ठ महान आख्यान मैं अब आपको प्रारंभ से सुनाता हूं " । यहाँ शौनक तथा सौति दोनों व्यासोक्त रचना को ही 'महाभारत' कहते हैं । इसी प्रकार व्यासजी ने अपने पास से श्रवण की कौरव पांडव कथा जनमेजय को कथन करने का आदेश वैशंपायन को दिया (आदिपर्व ६० - २२) , तब वैशंपायन ने अपने कथन का प्रारंभ करते हुए कहा —

महर्षेर्विश्रुतस्येह सर्वलोकेषु धीमतः
प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यास्य महात्मनः ॥ ६१-२

"सब लोकों में विख्यात इन महात्मा परम बुद्धिमान महर्षि व्यास की रचना मैं अब पूर्णतः सुनाता हूं " । यहां "अस्य महात्मनः व्यासस्य" ये शब्द दर्शाते है कि, स्वयं व्यास वहां उपस्थित थे । क्या उनके समक्ष वैशंपायन उनकी मूल रचना में अपनी और से हजारों श्लोक जोड़ देने की अनधिकार चेष्टा करता ?

इस मूल रचना को कभी भारत तो कभी महाभारत कहते थे । उपरोक्त श्लोकों के बाद वैशंपायन ने कहा —

श्रोतुं पात्रं च राजंस्त्वं प्राप्येमां भारतीं कथाम्
गुरोर्वक्त्रपरिस्पन्दो मनः प्रोत्साहतीव मे ॥ ६१ -३

"राजन् (जनमेजय) , यह भारती कथा श्रवण करने आप सर्वथा पात्र हैं तथा मुझे भी यह ज्ञात है, गुरुमुखकमल से निकले आदेश से प्रेरित होकर मुझे वह आपको सुनाने में बड़ी

प्रसन्नता हो रही है" । वैशंपायन अध्याय ५२ श्लोक ३१,३२ में इस महाकाव्य को 'भारत' संबोधित कर, श्लोक ३८,३९ में उसको 'महाभारत' कहते है —

....ज्ञानादज्ञानतो वापि प्रकरोति नरश्च यत् ॥ आदिपर्व ६२-३८
तन्महाभारताख्यानं श्रुत्वैव प्रविलीयते
भारतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते ॥ ३९

" मानव जाने - अनजाने जो (दुष्कर्म) करता है वह (सब) महाभारत आख्यान के श्रवण से पूर्णतः विलीन हो जाता है ; इसमें भरतवंशीयों का महान चरित्र वर्णन किया है अतः इसे महाभारत कहते है — ३८,३९ " । सारांश , इस प्रचंड महाकाव्य को प्रथम से ही भारत एवं महाभारत ये दोनों नाम थे ।

उधर शांतिपर्व में भी अध्याय ३४० में वैशंपायन अपने गुरुदेव "कृष्णद्वैपायनो व्यासो वेदव्यासो महानृषि :" का सादर उल्लेख कर, उनके पाच शिष्यों का उल्लेख करते हैं। उन शिष्यों में स्वयं का एवं व्यास पुत्र शुक का भी समावेश कर वैशंपायन कहते हैं कि, व्यासजी ने इन अपने शिष्यों को —

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ॥ शांतिपर्व ३४० -२१

"चारों वेद एवं पांचवा (वेद माना गया) महाभारत पढाया " । यहां व्यास ने 'महाभारत' पढाने का कहा है । किन्तु यही पुनः कहने में वैशंपायन 'भारत ' शब्द प्रयुक्त करते हैं (३४९ - १० से १३) ।. इसके अलावा , वैशंपायन ने 'नारायण कथा' कहने बाद जनमेजय ने कहा —

....इदं शतसहस्राद्धि भारताख्यानविस्तरात् ॥ शांतिपर्व ३४३-११
आमन्थ्य मतिमन्थेन ज्ञानोदधिमनुत्तमम् १२

" एक लक्ष श्लोकों के विस्तार से युक्त भारताख्यान में से (कही) यह (नारायण कथा) श्रेष्ठ ज्ञानसागर का बुद्धि रूप मथनी से मंथन कर निकाले अमृत के समान है " ।

इस सब से स्पष्ट है कि, इस प्रचंड महाकाव्य की मूल रचना ही एक लक्ष श्लोकों की होकर , जो भारत वही महाभारत । फिर इसका रचयिता पांडवों के पितामह एवं समकालीन महर्षि व्यास मानो, या ऊपर प्रतिपादन किये अनुसार, स्वयं की यह अनुपम कृति उन व्यास को अर्पण करनेवाला ईसा पूर्व करीब प्रथम शतक का कोई अद्वितीय प्रतिभासंपन्न महापंडित माना जावे । ❑

भाग ४

अन्य कूट

प्रकरण १७

कुरुक्षेत्र युद्ध में किस पक्ष का मुंह किस दिशा में था ?

प्रादेशिक जानकारी

कुरुक्षेत्र पर हुए युद्ध में किस पक्ष का मुंह किस दिशा में था इस विषय में कुछ लेखकों की धारणा है कि, पांडव पक्ष का मुंह पूर्व तरफ तथा कौरवों का पश्चिम तरफ होता था *। किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत थी।

कुरुक्षेत्र का विशाल मैदान हस्तिनापुर के पश्चिम में यमुना के बाद था। वनवास प्रारंभ करते समय पांडवों ने हस्तिनापुर के पश्चिम को जाने बाद कुरुक्षेत्र में प्रवेश किया था (वनपर्व अध्याय ५)। कुरुक्षेत्र की चतु:सीमा यह थी —

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
रामन्हदानां च मचक्रुकस्य च
एतत् कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
प्रजापत्तेरुत्तरवेदिरुच्यते ॥ शल्यपर्व ५३ -२४

"तरन्तुक, अरन्तुक, रामन्हद (परशुराम के पांच कुण्ड) तथा मचक्रुक इनके बीच का प्रदेश कुरुक्षेत्र या समन्तपंचक है, इसीको प्रजापति की उत्तरवेदि कहते है।" यही श्लोक वनपर्व में भी (८३ - २०८) आया होकर, वहां अरन्तुक सरस्वती के किनारे पर बताया है (८३ - ५२)। मतलब यह हुवा कि पश्चिम में कुरुक्षेत्र सरस्वती नदी तक फैला हुवा था।

समन्तपंचक यह कुरुक्षेत्र का एक भाग न होकर, उसीका दूसरा नाम था। कुरुक्षेत्र स्वयं कोई एक विशिष्ट तीर्थस्थान न होकर अनेक पावन तीर्थस्थलों से भरा प्रदेश था। उसी के एक कोने में परशुराम के पांच कुण्ड थे। 'पंचक' शब्द के कारण इन पांच कुण्डों

* उदाहरणार्थ देखिए डॉ दफ्तरी, पू. उ. page 21

को ही कुछ लेखक समंतपंचक बताते हैं, जो गलत है। इन कुण्डों के पास 'यक्षिणी' तीर्थ था, जिसे कुरुक्षेत्र का प्रवेशद्वार कहते थे। (वनपर्व ८३ - २४, एवं शल्यपर्व ५२ -२६)।

कुरुक्षेत्र के पश्चिम में (तथा कुछ जगह उत्तर में) सरस्वती नदी थी। सरस्वती के पूर्व में दृषद्वती थी; और उसके भी पूर्व में यमुना एवं यमुना के पूर्व में गंगा। पश्चिम में सरस्वती के किनारे से लगकर कुरुक्षेत्र पूर्व को दृषद्वती लांघकर कई कोस फैला हुवा था। किन्तु उसकी पूर्व सीमा यमुना तक न होकर कुछ पहिलेही समाप्त होती थी ऐसा दीखता है।

उत्तर को हिमालय में सरस्वती के उगम स्थान ('प्लक्षप्रस्त्रवण' तीर्थ) से यमुना भी काफी समीप थी ऐसा शल्यपर्व में आये बलराम यात्रा के वर्णन से दीखता है। किन्तु हिमालय से नीचे उतरने पर सरस्वती पश्चिम वाहिनी होकर प्रभास में समुद्र से मिल गई; तो यमुना पूर्व वाहिनी होकर प्रयाग में गंगा से मिल गई। इस प्रकार हिमालय से नीचे आने बाद सरस्वती और यमुना में अंतर बढ़ता गया। उनके बीच के मैदानी प्रदेश में कुरुक्षेत्र था।

कौरवों का मुंह पूर्व को और पांडवों का पश्चिम की ओर था

अब युद्ध समय कुरुक्षेत्र पर किस पक्ष का मुंह किस दिशा में था यह देखें। युद्धारंभ के रोज प्रात:काल कौरव सेना शिबिरों से लड़ाई की तैयारी से बाहर निकली, और —

ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबला:
कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवातिष्ठन्त दंशिता: ॥ उद्योगपर्व १९५-११

"वहाँ पहुंचने पर महाप्रतापी एवं शस्त्रों से सुसज्ज कौरव कुरुक्षेत्र के पश्चिम भाग में यथोचित रीति से खड़े हुए"। इससे स्पष्ट है कि, रणभूमि पर कौरवों का मुंह पूर्व दिशा की ओर (तथा पांडवों का पश्चिम की ओर) होता था।

इसके पुष्टिकारक संकेत भी हैं। प्रत्यक्ष लड़ाई के चौदहवे रोज के वर्णन में संजय कहता है —

अपराण्हे महाराज संग्राम: समुहानभूत्
पर्जन्यसमनिर्घोष: पुनर्द्रोणस्य सोमकै: ॥ द्रोणपर्व, १२५-१

"महाराज (धृतराष्ट्र), अपराण्ह समय में सोमकों के साथ (सेनापति) द्रोण का पुन: भीषण संग्राम हुवा, जिससे वर्षा समान गंभीर कोलाहल होने लगा"। और इस समय

प्रताप्यमान: सूर्येण हन्यमानाश्च सायकै:
अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा संत्रस्तचेतस: ॥ १२५-५१

''(द्रोण के) बाणों से व्यथित तथा सूर्य किरणों से तप्त होकर पांचाल सेना उस समय त्रस्तचित एवं व्याकुल होने लगी''। 'अपराण्ह' समय में पांडव सेना को सूर्य की तेज धूप त्रस्त कर रही थी ; यह दर्शाता है कि लड़ते समय उनका मुंह पश्चिम की ओर होता था। यहां सूर्य किरणों का उल्लेख सामने से आनेवाले शत्रू के बाणों के साथ किया है। कौरवों के बाण पांडव सैनिकों पर बराबर लगते थे, किन्तु पांडव योद्धा सामने से आंखों पर गिरनेवाली धूप के कारण अपने बाण ठीक निशाने पर लगाने में कठिनाई अनुभव कर रहे थे।

इसके विपरीत कर्णवध के दिन के वर्णन में संजय करीब करीब वैसाही शब्द प्रयोग कर कहता है —

प्रताप्यमानं सूर्येण भीमेन च महात्मना
तव सैन्यं संचुकोच चर्माग्रावाहितं तथा ॥ कर्णपर्व ५१-५१

''शूर भीम के प्रहारों से, तथा साथ में सूर्य किरणों से तप्त (त्रस्त) आपकी (कौरव) सेना आग पर रखे चर्म के समान सिकुड़ने लगी''। यहां महत्त्व की बात यह कि, यह वर्णन मध्यान्ह के पूर्व का है। क्योंकि , इसके बाद भीम द्वारा पांच सौ रथ और तीन हजार घुड़सवारों का सफाया ,फिर उसका कर्ण से भीषण संग्राम , आदि घटनाएं हुई ; और उसके पश्चात् (श्लोक ६७ में) मध्यान्ह का यह उल्लेख आता है, ''मध्यान्हे तपतो राजन् भास्करस्य महाप्रभाः'', तथा (श्लोक ७१ में) पुनः ''ततः प्रववृते युद्धं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे'' ऐसा कहा है। स्पष्टतः श्लोक ५१ में दिया वर्णन मध्यान्ह पूर्व का होकर , चूंकि उस समय कौरव सेना सूर्य की धूप से विशेष त्रस्त हो रही थी , उसका मुंह पूर्व दिशा की और था।

इसी दिन कर्णवध के बाद सायंकाल कौरव सेना भयभीत होकर अपने शिबिरों की और भागने लगी। वह कहने में संजय पूर्ण सुसंगत तरीके से कहता है —

वधेन कर्णस्य तु दुःखितास्ते
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणाः
द्रुतं प्रयाताः शिबिराणि राजन्
दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः ॥ कर्णपर्व, ९४-२८

''राजन् (धृतराष्ट्र) , कर्णवध से दुःखी वे (कौरव सैनिक) 'हा कर्ण,हा कर्ण,' ऐसा आक्रोश करते हुए, तथा लाल सूर्य बिंब की ओर देखते हुए, शिबिरों के तरफ भागने लगे''। सायंकाल रणभूमि से वापिस शिबिरों की ओर भागने में कौरव सेना को अस्तंगत सूर्य सामने दिख रहा था ; अर्थात् उस समय उसका मुंह पश्चिम की ओर था, जब कि लड़ते समय पूर्व को होता था।

इसी दिन पूर्वरात्रि में प्रमुख कौरव योद्धा गंभीर मंत्रणा हेतु रणभूमि से कुछ दूर उत्तर को हिमालय के पठार पर जाकर सरस्वती के तट पर गये (शल्यपर्व ५ - ५०,५१ प्रकरण ११ में उद्धृत)। कौरव सेना ने यदि कुरुक्षेत्र का पूर्व विभाग व्याप्त किया होता , तो इस समय वे शत्रू की दिशा में सरस्वती पर (जो कुरुक्षेत्र के पश्चिम में थी) न जाते, यमुना पर (जो कुरुक्षेत्र के पूर्व में है) जाकर विश्राम करते। किन्तु वे कुरुक्षेत्र के पश्चिम हिस्से में होने से, सीधे सरस्वती के हिमालयीन प्रवाह पर पहुच सके। इस प्रकार स्पष्ट है कि, लड़ते समय उनका मुंह पूर्वतरफ होता था।

इसके अलावा,अर्जुन ने किये जयद्रथवध के रहस्य पूर्ण प्रसंग से भी यही दिग्दर्शित होता है ; उसकी चर्चा अगले प्रकरण में की है।

महाकवि का मार्मिक कूट

इस विषय में भ्रम के मूल में प्रायः भीष्मपर्व के ये श्लोक होते है —

पश्चान्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः
स्थिताः पार्थाः प्राङःमुखा योत्स्यमानाः ॥ भीष्मपर्व, २०-५
महारथौघविपुलः समुद्र इव घोषवान्
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि ॥ २०-१९

''(उस समय कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर) युद्ध की तैयारी सह धार्तराष्ट्र कौरव पश्चिम की ओर मुंह किये हुवे तथा पांडव पूर्वाभिमुख स्थित थे — ५. भीष्म ने रणभूमि पर खड़ा किया कौरव सेना का पश्चिमाभिमुख व्यूह महारथियों की अनेक पंक्तियों से संपन्न होकर समुद्र के समान नाद कर रहा था — १९''। किन्तु ,यह वर्णन मघानक्षत्र दिन के दूसरे दिवस का है ; और प्रकरण १२ में बताये अनुसार वह प्रत्यक्ष युद्ध का न होकर, युद्धारंभ पूर्व दोनो पक्षों नें रणभूमि पर किये पूर्वाभ्यासों का है।इसी अध्याय में महाकवि कहते हैं -

दुर्योधनो हस्तिनं पद्मवर्णं
सुवर्णकक्षं जालवन्तं प्रभिन्नम्
समास्थितो मध्यगतः कुरूणां
संस्तूयमानो वन्दिभिर्मागधैश्च ॥ २०-७

''दुर्योधन कौरव सेना के मध्य स्वर्णमय हौदा तथा जाली से सुसज्ज एक कमलवर्ण मदस्रावी हाथी पर विराजमान था ; बन्दी , मागध आदि उसका स्तुतिगान कर रहे थे''। प्रत्यक्ष लड़ाई में भाटों के ये स्तुतिगान कैसे संभव थे ? किन्तु,यह युद्धपूर्वाभ्यास था।

इसी प्रकार लड़ाई के आठवे विश्राम दिवस पर रात्रि में दुर्योधन एक बडा जुलूस लेकर भीष्म के शिबिर पर गया (देखिये प्रकरण ९), वह वर्णन करने में भी महाभारतकार लिखते हैं, ''संस्तूयमान: सूतैश्च मागधैश्च महायशा: '' (भीष्मपर्व ९७ - ३०)। स्पष्ट ही ऐसा स्तुतिगान प्रत्यक्ष लड़ाई में संभव नही था।

इस प्रकार भीष्मपर्व अध्याय २० में दिया वह वर्णन हर पक्ष ने कुरुक्षेत्र के अपने हिस्से में किये पूर्वाभ्यासों का है ; यह ध्यान में लेनेपर कूटसम्राट महाकवि की एक विशेष सूक्ष्मता स्पष्ट होगी। प्रत्यक्ष युद्धारंभ के पूर्व शस्त्रों से सज्ज उभय सेना आमने सामने खड़ी करने बजाय, सुरक्षितता की दृष्टि से उनके पूर्वाभ्यास एक दूसरे की ओर पीठ कर करना उचित था ! इस दृष्टि से अध्याय २० में वर्णित कौरव व्यूह का मुंह अपने ही शिबिरों की ओर यानी पश्चिम को, तथा पांडवों का पूर्व को था , ऐसा महाभारतकार ने कहा वह ठीक ही है। *

एक संदिग्ध श्लोक का स्पष्टीकरण

फिर भी कुछ अन्य श्लोकों पर भी यहाँ विचार इष्ट होगा। भीष्मपर्व के प्रथम अध्याय में प्रत्यक्ष युद्धारंभ दिवस के पूर्व की स्थिति वर्णन करते हुए वैशंपायन कहते हैं ,

ते ऽ वतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवा: सहसोमका:
कौरवा: समवर्तन्त जिगीषन्तो महाबला: ॥ भीष्मपर्व १-३
वेदाध्ययनसंपन्ना: सर्वे युद्धाभिनन्दिन:
आशंसन्तो जयं युद्धे बलेनाभिमुखा रणे ॥ ४
अभियाय च दुर्धर्षां धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्
प्राङ्मुखा: पश्चिमे भागे न्यवशन्त ससैनिका: ॥ ५
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं शिबिराणि सहस्रश:
कारयामास विधिवत् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिर : ॥ ६

'' सोमकों सहित पांडव ,और उसी प्रकार कौरव, महाशक्तिसंपन्न एवं विजयेच्छू होकर, कुरुक्षेत्र पहुंचने पर (अपने अपने विभागों में) उचित प्रकार से निवास करने लगे — ३. वे सब वेदों के ज्ञाता तथा युद्धार्थ उत्साहित थे ; पूरी शक्ति के साथ रणभूमि पर शत्रूओं की

---

* अत: श्लोक २०-१९ में 'युधि' का आशय 'युद्ध में ' न होकर 'रणभूमि पर' इतनाही है। इसी अध्याय के श्लोक १५ में संशप्तक वीर 'अर्जुन ' से युद्ध करने निकले ऐसा उल्लेख है, वह भी पूर्वाभ्यास समझना उचित है। उस समय उनका अर्जुन ने किस प्रकार प्रतिकार किया इस बारे में वहां एक अक्षर भी नहीं ! संशप्तकों का अर्जुन से वास्तविक सामना प्रत्यक्ष लड़ाई के बारहवे एवं तेरहवे रोज हुवा (द्रोणपर्व १७-११ से १६)।

ओर अभिमुख होकर युद्ध में विजय प्राप्त करने के इच्छुक थे — ४. दुर्योधन की शक्तिशाली सेना के पास वे (?) (कुरुक्षेत्र के) पेश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख (अपने) सैनिकों सहित रहने लगे — ५. कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने समंपंचक के बाहर हजारों शिबिर यथोचित प्रकार से खड़े किये — ६'' ।

यहां पांचवा श्लोक विवाद्य बना है। कुछ भाषांतरकार उसका संबंध पाण्डवों से लगाकर कहते हैं कि, कुरुक्षेत्र पर पांडव सेना पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख ठहरी थी। किन्तु उस श्लोक में कहीं भी पांडव शब्द नहीं है।

छठे श्लोक में युधिष्ठिर का उल्लेख होकर कहा है कि , उसने समंतपंचक (कुरुक्षेत्र) के बाहर अपने शिबिर खड़े किये। यही बताता है कि , पांडव कुरुक्षेत्र के पूर्वार्ध में ठहरे थे। क्योंकि कुरुक्षेत्र की पश्चिम सीमा सरस्वती नदी तक थी। अत: उस ओर कुरुक्षेत्र के बाहर शिबिर खडे करना, इसका मतलब बीच में विशाल सरस्वती नदी लांघकार उसके पश्चिम तट पर शिबिर खडे करना, यह होता। किन्तु रणक्षेत्र का अपना विभाग और शिबिर इनके दरम्यान ऐसी नदी रखना संभव नही था। अत: उस ओर के शिबिर सरस्वती के पूर्व में कुरुक्षेत्र के भीतर ही खड़े किये गये होंगे। इसके विपरीत कुरुक्षेत्र की पूर्व सीमा यमुना तक न होते कुछ इधर तक ही थी ऐसा दीखता है। अत: कुरुक्षेत्र का पूर्वार्ध व्यापनेवाला पक्ष अपनी पिछाड़ी की ओर, किन्तु कुरुक्षेत्र की सीमा के बाहर, अपने शिबिर लगा सकता था ; ओर यही युधिष्ठिर ने किया।

इस संदर्भ में श्लोक ५ का संबंध कौरव पक्ष से होकर आशय यह दीखता है कि, उस पक्ष के सहायक राजाओं ने दुर्योधन की सेना के पास ही अपने सैनिकों सहित मुक्काम किया।

श्लोक ३ एवं ४ में दोनों सेनाओं का एकत्र उल्लेख कर, श्लोक ५ एवं ६ में उनके शिबिरों का अलग - अलग उल्लेख दीखता है। श्लोक ६ में 'शिबिराणि ' शब्द ही है , तथा श्लोक ५ में भी 'न्यविशन्त' शब्द उसी आशय का है। लड़ने में हर पक्ष का मुंह किस दिशा में होता था इस बारे में ऊपर जो स्पष्ट संदर्भ एवं संकेत बताये हैं , उनसे सुसंगत प्रकार से श्लोक ५ का अर्थ करना आवश्यक है *!

---

* श्लोक ५ की प्रथम पंक्ति के लिये ''आहवाय दुराधर्षा धार्तराष्ट्रस्य पार्थिवा:'' ऐसा अन्य पाठ भी है ; देखिये भांडारकर संस्था द्वारा प्रकाशित भीष्मपर्व। ❑

प्रकरण १८

जयद्रथ वध में श्रीकृष्ण माया का रहस्य

श्रीकृष्णार्जुन पर व्यर्थ कलंक

जयद्रथवध का प्रसंग महाभारत युद्ध की एक विशेष सूक्ष्म घटना है। लड़ाई के चौदहवे रोज अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति हेतु अर्जुन सूर्यास्त के पूर्व जयद्रथवध करने का पूरा प्रयास कर रहा था ,तब अंतिम क्षणों में श्रीकृष्ण ने अपने माया प्रभाव से कृत्रिम सूर्यास्त का दृश्य निर्माण किया। उस विषय में ऐसी विपरीत धारणा प्रचलित हो गई है कि, जयद्रथ उस मायावी अंधकार से भ्रमित होकर रणभूमि पर सानंद नि:शस्त्र विचरण करने लगा, तब अर्जुन ने उसका शिरच्छेद किया।

हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्त अपने 'जयद्रथवध' काव्य में कहते हैं कि, श्रीकृष्ण ने मायावी सूर्यास्त दिखाने पर जयद्रथ सहित सब कौरव वीर हर्ष से नाचने लगे, और 'आत्मदाह के शुभ कार्य में अब विलंब क्यों ? 'ऐसा व्यंग कर जयद्रथ अर्जुन की मजाक उडाने लगा ; इसी क्षण श्रीकृष्ण ने माया वापिस ली और आकाश में फिर सूर्य दिखने लगा। इस पर विस्मयचकित होकर कौरव फिर लड़ना चालू करने का प्रयास करने लगे इतनेमें अर्जुन ने जयद्रथ का वध कर दिया।

अन्य भी कई लेखक ऐसी ही धारणा व्यक्त करते हैं। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य लिखते हैं कि, श्रीकृष्ण ने उस समय अपनी माया से सूर्य को ढांकने पर, "Jayadrath turned to the western horizon and thought within himself, 'I am saved ! ' for he did not see the sun then and thought the time - limit of danger from Arjuna was over . At that moment , however, Krishna said to Arjuna : 'Dhananjaya, the Sindhu raja is looking at the horizon. I have caused this darkness. The sun is still up and has not set. Do your work. This is the moment for it, for Jayadrath is off his guard'. A shaft flew from the Gandiva, and, like a vulture swooping down on a chichen, carried away Jayadrath's head ....." *

किन्तु क्या अर्जुन द्वारा असल में जयद्रथ वध इस तरह धोखे से किया गया ? महाभारतकार ने मार्मिक शब्दों में वर्णित यह घटना क्या वस्तुत: इस स्वरूप की है ?

* "Mahabharata" by C. Rajagopalachari, PP 278 - 79

स्वयं कौरवों ने वैसा आरोप नहीं किया

यहां प्रथम ही एक विशेष बात पर ध्यान देना इष्ट है। महाभारत में जयद्रथ वध के संबंध में स्वयं कौरव पक्ष ने किये उल्लेख हैं। किन्तु उनमें जयद्रथ को धोखा दिया जानेका आरोप नही है। जयद्रथ वध होते ही दुर्योधन के मन में ये दुखी विचार आये। संजय कहता है —

अमन्यतार्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते ॥ द्रोणपर्व १५० - ४
न द्रोणो न च राधेयो नाश्वत्थामा कृपो न च
क्रुद्धाय समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ॥ ५
निर्जित्य हि रणे पार्थ: सर्वान् मम महारथान्
अवधीत् सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत् ॥ ६

''माननीय नरेश , वह (दुर्योधन) सोचने लगा कि, 'संसार में अर्जुन के समान अन्य योद्धा ने होकर , क्रुद्ध अर्जुन के सामने रणभूमि पर न द्रोण ,न कर्ण न अश्वत्थामा,और न हि कृपाचार्य खड़े रह सकते हैं ; मेरे सभी महारथियों को पराभूत कर अर्जुन ने रणभूमि पर जयद्रथ का वध किया, किन्तु कोई भी उसका प्रतीकार न कर सका '''। इसमें श्रीकृष्ण एवं अर्जुन द्वारा जयद्रथ के साथ धोखेबाजी करनेका कुछ भी आरोप न होकर , दुर्योधन अर्जुन के शौर्य के सामने अपनी हार मान रहा है। इसी उदास मनोवृत्ति से दुर्योधन नें (सेनापति) द्रोण से कटु शब्दों में कहा —

अपरश्चापि दुर्धर्ष: शिष्यस्ते सव्यसाचिना
अक्षौहिणी: सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथ: ॥ १५० - १४

''सव्यसाची अर्जुन ने मेरी सात अक्षौहिणी सेना का नाश कर आपके दूसरे पराक्रमी शिष्य राजा जयद्रथ का भी वध कर डाला''। इस समय दुर्योधन ने द्रोण की ईमानदारी पर भी संशय व्यक्त किया। उसपर द्रोण नें उत्तर दिया —

यत्ता: सर्वे पराभूता: पर्यवारयताऽर्जुनम्
सिंधुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हत: ॥ १५१ - २१
तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि
अशक्त: सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥ २७

''सिन्धुराज जयद्रथ को मुख्य आश्रयबिंदु मानकर पूरी तैयारी के साथ अर्जुन का प्रतीकार करते हुवे उसे घेरनेवाले तुम सब पराभूत हो गये ; तुम्हारे सबके बीच वह कैसा मारा गया ? — २१ . दुर्योधन (भरतकुलज), जयद्रथ की रक्षा करनें में तुम स्वयं ही असमर्थ होकर, मुझे क्यों कटु शब्दों से ताड़न कर रहे हो, जब कि मैं स्वयं ही शोकाकुल हो रहा हूँ ? — २७''। यहां द्रोणाचार्य भी जयद्रथवध में श्रीकृष्णार्जुन ने कपट किया ऐसा नहीं कहते है। इसी समय दुर्योधन इस विषय में कर्ण से भी बोला, तब कर्ण ने उत्तर दिया —

यतो नो युद्धमानानां परं शक्त्या सुयोधन ॥ १५२ - २३
सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम् । २४

''दुर्योधन , सारी शक्ति लगाकर हम युद्ध कर रहे हैं फिर भी जयद्रथ लड़ाई में मारा गया; ऐसी परिस्थिति में दैव ही बलवान माना जाता है''। स्वयं संजय ने भी धृतराष्ट्र से कहा —

अक्षौहिणीर्दशैका च विनिर्जित्य शितै: शरै:
अर्जुनेन हतो राजन् महावीर्यो जयद्रथ: ॥ कर्णपर्व ५-१२

'' राजन् ,(कौरवों का) ग्यारह अक्षौहिणी सैन्य तीक्ष्ण बाणों से पराभूत कर अर्जुन ने महाशूर जयद्रथ का वध किया''।

इसके अलावा,गदायुद्ध में मरणासन्न हुए दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को दी गालियों में भी जयद्रथ को कपट द्वारा मारने का आरोप नही है -

कंसदासस्य दायाद न ते लज्जास्त्यनेन वै ॥ शल्यपर्व, ६१- २७
अधर्मेण गदायुद्धे यदह: विनिपातित:
ऊरूभिन्धाति भीमस्य स्मृतिं मिथ्या प्रयच्छता ॥ २८
किं न विज्ञातमेतन्मे यदर्जुनमवोचथा:
घातयित्वा महीपालानृजुयुद्धान् सहस्रश: ॥ २९
जिह्मैरुपायैर्बहुभिर्न ते लज्जा न ते घृणा । ३०

''अरे कंसदास के बेटे , मैं गदायुद्ध में अधर्मपूर्वक मार गिराया गया इस बात पर तुझे लज्जा कैसी नहीं आती ? कपट से मेरी जांघ तोड़ने का भीम को स्मरण देते हुए तेने अर्जुन से जो बात कही वह क्या मुझे ज्ञात नही ? सरलता से युद्ध करनेवाले (मेरे पक्ष के) सहस्त्रों राजाओं को कई कपटी युक्तियों से मारकर भी तुझे लज्जा एवं घृणा का अनुभव कैसा नहीं हो रहा है ? '' फिर इसका एक एक प्रमुख उदाहरण देते हुए दुर्योधन श्रीकृष्ण से कहता है कि , 'शिखंडी को आगे कर भीष्म का वध करवाने में ,अश्वत्थामा नाम का

हाथी मारकर द्रोण का वध करवाने में , खास अर्जुन के वध के लिये कर्ण ने रखी 'शक्ति' घटोत्कच पर फिकवाने में, भूरिश्रवा का वध करवाने में , कर्ण ने बाण पर रखे नागश्रेष्ठ अश्वसेन से अर्जुन को बचाने में , तथा कर्ण के रथ का पहिया भूमि में फस गया था उस अवस्था में उसका वध कराने में, तेरीही दुष्ट प्रेरणा थी ' (श्लोक ३० से ३७) । और इन आरोपों को संक्षेप में दोहराते दुर्योधन फिर कहता है —

यदि मां चापि कर्णं च भीष्मद्रौणौ च संयुतौ ॥ ३७
ऋजुता प्रतियुद्धयेथा न ते स्याद् विजयो ध्रुवम्
त्वया पुनरनार्येण जिह्ममार्गेण पार्थिवा: ॥ ३८
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो वयं चान्ये च घातिता : ॥ ३९

''यदि मेरे साथ , कर्ण के साथ , तथा भीष्मद्रोण के साथ तुम सरलता से युद्ध करते तो तुम्हारा कभी भी जय न होता। किन्तु तेरे समान नीच पुरुष ने स्वधर्मपूर्वक युद्ध करने वाले हमारा तथा (मेरे पक्ष के) अन्य भी राजाओं का कपट मार्ग से नाश कराया''। मरणोन्मुख अवस्था में भी दुर्योधन श्रीकृष्णपर खास जयद्रथवध में कपट करने का कोई आरोप नहीं लगा रहा है।

फिर भी महाभारत के कुछ पोथीयों में उपरोक्त श्लोकों के बाद दुर्योधन के नाम पर एक और श्लोक दिया जाता है —

त्वया मायाविना कृष्ण मायामर्कप्रमोषिणीम्
कृत्वा हत: सिन्धुपति: किं तन्न विदितं मम ॥

''कृष्ण, झूठी माया करनेवाले तेने सूर्य को ढकनेवाली माया कर जयद्रथ को मरवाया , क्या मैं यह नहीं जानता ? '' यदि यह श्लोक मूल महाभारत का होता तो ऊपर उल्लेखित श्लोक ३० से ३७ में कर्णवध के उल्लेख के पूर्व यथाक्रम आता। तथा दुर्योधन के मन में वस्तुत: यह शल्य होता तो श्लोक ३७ की द्वितीय पंक्ति में अपने आरोप संक्षेप में फिर दुहराने मे कर्ण,भीष्म,द्रोण तथा स्वयं दुर्योधन इनके साथ जयद्रथ का भी नाम वह लेता। किन्तु यह बात अलग रखी तो भी , कमसे कम जयद्रथ वध के तुरन्त बाद अपना क्षोभ व्यक्त करनेमें दुर्योधन उस कपट का उल्लेख अवश्य करता। किन्तु , जैसा कि ऊपर उद्धृत किया है , इसके विपरीत उसने जयद्रथ वध का सारा श्रेय उस समय अर्जुन के शौर्य को दिया *।

* किन्तु इसपर भी उक्त श्लोक स्वीकारना हो,तो उसमें श्रीकृष्ण की माया से स्वयं जयद्रथ भ्रमित होकर मारा गया ऐसा नही कहा होकर , उस माया से जयद्रथ के संरक्षक भ्रमित होकर (उन्होंने उसका पूरा संरक्षण न करने से) वह अर्जुन द्वारा मारा गया ऐसा आशय देखा जा सकता है ; जो आगे बताये अनुसार महाभारत मे दिये इस प्रसंग के कुल वर्णन से सुसंगत है।

गदायुद्ध में मरणोन्मुख हुए दुर्योधन को देखकर अश्वत्थामा ने शेष पांडव पक्ष की रात में कतल करने का ठहराकर, उसने अपने इरादेके समर्थन मे कृपाचार्य से पांडवों की घोर निंदा की (सौप्तिक पर्व अध्याय ५ श्लोक १८ से २६)। उसमें भी श्रीकृष्ण एवं अर्जुन ने जयद्रथ को असावध अवस्था में कपट द्वारा मारनेका उल्लेख नही। अंत में युद्ध समाप्ति बाद गांधारी ने प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण के समक्ष दारुण विलाप किया, उसमें अपना जामात जयद्रथ छलकपट से मारा जानेका आरोप न होकर, उलटे वह कहती है —

> **पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञां चाभिरक्षिता**
> **पाकशासनिना संख्ये वार्धक्षत्रिर्निपातितः ॥ स्त्रीपर्व, २२-७**
> **एकादशचमूर्भित्वा रक्ष्यमाणं महात्मना**
> **सत्यं चिकीर्षता पश्य हतमेनं जयद्रथम् ॥ ८**

''पुत्रशोक से क्षुब्ध एवं अपनी प्रतिज्ञा का पालन करनेवाले अर्जुन ने लड़ाई में जयद्रथ का वध किया — ७; (उसके) रक्षणार्थ सिद्ध ग्यारह सेनाविभाग पराभूत कर (प्रतिज्ञा के विषय में) अपनी सत्यता सिद्ध करना चाहनेवाले महात्मा अर्जुन ने मारा हुवा यह जयद्रथ देखो — ८''।

यदि जयद्रथ को कपट से मारनेका आरोप कौरव भी नही करते हैं, तो फिर क्या वस्तुतः श्रीकृष्ण ने वह मायावी सूर्यास्त का दृश्य निर्माण ही नही किया था, और उस संबंध के सारे श्लोक प्रक्षिप्त कहे जावे ? भांडारकर संस्था ऐसा मानती है। किन्तु आगे स्पष्ट किये अनुसार श्रीकृष्ण ने उस प्रसंग मे मायावी सूर्यास्त निर्माण करने की घटना कुल कथा प्रवाह से सुसंगत होकर, वे श्लोक प्रक्षिप्त नही है। बात इतनीहि कि, उस घटना का स्वरूप बडा सूक्ष्म था, और इस लिये कौरवपक्ष भी उस संबंध मे कपट किया जानेका आरोप नही कर सका।

महाभारत में दिया वर्णन

अर्जुन की आत्मदाह युक्त घोर प्रतिज्ञा के कारण लड़ाई का वह दिन उभय पक्षों के लिये अति महत्त्वपूर्ण हो गया था। विशाल शकट व्यूह के द्वार पर स्वयं सेनापति द्रोण पूरी तयारी से खडे होकर किसी को भी अंदर प्रवेश नही कर दे रहे थे। किन्तु फिर भी श्रीकृष्ण सारथ्य करने वाले अर्जुन के रथ ने व्यूह में प्रवेश कर लिया (इसी के लिये बाद में दुर्योधन ने द्रोण को दोष दिया)। व्यूह के भीतर छः कोस अंदर कई महारथियों से घिरा हुवा जयद्रथ सुरक्षित खडा था। जबरदस्त प्रतिकार को परास्त करता हुंवा अर्जुन का रथ धीरे - धीरे आगे बढ़ रहा था। इस अवस्था में मध्यान्ह समय बीतकर (द्रोणपर्व ९५ - ४), अपराण्ह प्राप्त हो गया (१२५ - १) ; और फिर भी अर्जुन जयद्रथ से कुछ दूर ही था।

किन्तु शेष सब विरोध नष्ट कर अर्जुन इतना आगे बढ़ गया कि, जयद्रथ उसकी दृष्टि में आ गया (१४६ - ४७,४८)। फिर भी दुर्योधन सहित छः महारथी अपनी सेना सहित दुर्योधन को घेरकर उस की रक्षार्थ खड़े थे। इसके बाद का उस सायं समय का महाकवि नें दिया वर्णन रोमांचकारी है।

> **एतास्मिनेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे**
> **अब्रवीत् पांडवं राजन् त्वरमाणो जनार्दनः ॥ द्रोणपर्व १४६-६१**
> **एष मध्ये कृतः षडभिः पार्थ वीरैर्महारथैः**
> **जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥ ६२**
> **एताननिर्जित्य रणे षड्रथान् पुरुषर्षभ**
> **न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन ॥ ६३**
> **योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्यावरणं प्रति**
> **अस्तंगत इति व्यक्तं द्रक्षत्येकः स सिन्धुराट् ॥ ६४**
> **हर्षेण जीविताकांक्षी विनाशार्थं तव प्रभो**
> **न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथंचन ॥ ६५**
> **तत्र छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयास्य कुरुसत्तम**
> **व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६६**
> **एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत**
> **ततोऽसृजत् तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति ॥ ६७**
> **योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरि :**
> **सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६८**
> **त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप**
> **ते प्रहृष्टा रणे राजन् नापश्यन् सैनिका रविम् ॥ ६९**
> **उन्नाम्य वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः**
> **वीक्षमाणे ततस्तस्मिन् सिन्धुराजे दिवाकरम् ॥ ७०**
> **पुनरेवाब्रवीत् कृष्णो धनंजयमिदं वचः**
> **पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम् ॥ ७१**
> **भयं ही विप्रमुच्यैतत् त्वत्तो भरतसत्तम**
> **अयं कालो महाबाहो वधायास्य दुरात्मनः ॥ ७२**

छिन्धि मूर्धानमस्याशु कुरु साफल्यमात्मनः
इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ७३
न्यवधीत् तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसंनिभैः । ७४
तथैव च महाबाहुस्त्वदीयान् पाण्डुनन्दन :
गाढं विद्ध्वा शरै : राजन् जयद्रथमुपाद्रवत् ॥७६
तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिवानलम्
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ७७
ततः सर्वे महाराज तव योधा जयैषिणः
शिषिचुः शरधाराभिः पाकशासनिमाहवे ॥ ७८
ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः
व्यसृजत् पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥ ८०
एवं तव बलं राजन् द्रावयित्वा धनंजय :
न्यवधीत् सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥ ९४
द्रौणिं कृपं कर्णशल्यौ वृषसेनं सुयोधनम्
छादयायास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥ ९५
एवं तान् व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महारथान्
उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसंनिभम् ॥ १००
अब्रवीच्च पुनस्तत्र त्वरमाणो जनार्दनः
धनंजय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ॥ १०४

"राजन् (धृतराष्ट्र), इस समय सूर्य शीघ्रता से (पश्चिम क्षितिज की ओर) ढल रहा था तब श्रीकृष्ण ने तुरन्त अर्जुन से कहा — ६१. महाबाहु (अर्जुन), छः महारथी वीरों ने अपने बीच कर रखा यह कायर जयद्रथ अपनी जान बचाने की इच्छा से खड़ा है — ६२. पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन , चूंकि युद्ध में इन छः रथीयों को जीते बगैर, तथा (उस हेतु) कुछ युक्ति किये बिना, जयद्रथ का वध करना संभव नहीं — ६३, अतः मैं अब सूर्य को ढांकने हेतु 'योग' करता हूँ ,उससे सूर्य का अस्त हो गया ऐसा प्रतीत होगा, किन्तु अकेले उस जयद्रथ को (सूर्य) दीखता रहेगा — ६४. वीर अर्जुन, (उसका परिणाम यह होगा कि, अन्य सभी से जयद्रथ अलग दीखकर) अपना प्राण बचाने का इच्छुक, तथा तेरे (स्वंय अग्नि प्रवेश द्वारा) विनाश की कल्पना से हर्षोत्फुल्ल, वह दुराचारी स्वयं को किसी भी प्रकार (अन्य योद्धाओं की भीड़ के बीच) छिपा नहीं सकेगा — ६५. कुरुश्रेष्ठ अर्जुन , इस स्थिति में

ठीक उसके मर्मस्थान पर तू प्रहार कर ; सूर्य (वास्तव में) अस्त हो गया ऐसा मानकर उदासीन मत होना — ६६. इस पर अर्जुन ने श्रीकृष्ण को उत्तर दिया, 'ठीक, ऐसा ही होगा (करूंगा)'। तदनंतर योगी, योगसम्पन्न, योगीश्वर श्रीहरि कृष्ण ने सूर्य को ढंकने हेतु (मायावी) अंधकार निर्माण किया। राजन् (धृतराष्ट्र), श्रीकृष्ण ने अंधकार फैलाते ही सूर्य अस्त हो गया ऐसा समझकर, अर्जुन के (अग्नि प्रवेश द्वारा) आत्मनाश की कल्पना से आपके (कौरव) योद्धा हर्षित हो गये ; उन्हें सूर्य नही दिखा, और वे रणभूमि पर बड़े हर्षित हो गये — ६७,६८,६९. उसी समय वह सिंधुपति राजा जयद्रथ मुंह (गर्दन) बारबार पीछे को ऊपर नमाकर सूर्य पर दृष्टि डाल रहा था ; उस स्थिति में श्रीकृष्ण पुनः अर्जुन से बोले, 'भरतश्रेष्ठ, (अपने संरक्षकों पर भरंवसा कर) तेरा भय छोड़कर सूर्य की ओर दृष्टिक्षेप कर रहे इस वीर जयद्रथको देख ; महाबाहू, इस दुरात्मा के वध हेतु यही समय है, ७०,७१,७२. तुरन्त इसका शिरच्छेद कर और स्वयं को (प्रतिज्ञा पूर्ति से)सफल कर ले'; श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर प्रतापी अर्जुन ने आपके (कौरव) सेना का सूर्य एवं अग्नि समान तेजस्वी बाणों से संहार प्रारंभ किया — ७३,७४ . राजन् ,इस प्रकार आपके (कौरव) योद्धाओं को बाणों से तीव्र घायल कर महाबाहू अर्जुन ने जयद्रथ पर आक्रमण किया — ७६. (भयानक ज्वालाओं से सब ओर) बार - बार चाटनेवाले (सर्वभक्षक) अग्नि समान प्रतीत हो रहे उस अर्जुन को बिलकुल समीप आया देख जयद्रथ के संरक्षक बड़े असमंजस में पड गये — ७७. महाराज (धृतराष्ट्र), (फिरभी) उस समय रणभूमि पर आपके सब विजयेच्छू वीर अर्जुन पर बाण वृष्टि करने लगे — ७८. तब पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ने आपकी (कौरवों की) सेना के संहारार्थ बाणों का गहन जाल बिछा दिया — ८०. राजन् ,इस प्रकार आपकी सेना को भगाकर अर्जुन ने जयद्रथ के खास संरक्षकों पर तीव्र बाणों से प्रहार प्रारंभ किया — ९४. अर्जुन ने अश्वत्थामा, कृप, कर्ण,शल्य, वृषसेन तथा दुर्योधन को तीव्र बाणजाल से आच्छादित कर दिया — ९५. इस प्रकार आपके उन महारथियों को व्याकुल कर अर्जुन ने (अंत में) एक अग्नि समान तेजस्वी भयावह बाण निकाला — १००. उस क्षण श्रीकृष्ण ने फिर त्वरा से कहा , अर्जुन, पापी जयद्रथ का मस्तक काट — १०४"।

जयद्रथ को अंत तक सूर्य दीखता रहा

इस विस्तृत वर्णन में श्लोक ६४ विशेष महत्त्व का होकर उसका बडा विपर्यस्त अर्थ किया जाता है। उसके वास्तविक आशय के अनुसार श्रीकृष्ण की माया का स्वरूप ऐसा सूक्ष्म था कि, केवल अकेले जयद्रथ को सूर्य दीखता रहे, किन्तु (अर्जुन सहित) शेष

सबको सूर्यास्त प्रतीत हो। फिर भी अनेकानेक अनुवादों मे इसका बिलकुल विपरीत अर्थ दिया जाता है कि, अकेले जयद्रथको (या कुल अनुवादकों के अनुसार, जयद्रथ को भी) सूर्यास्त प्रतीत होनेवाला था। उदाहरण के लिये गीता प्रेस (गोरखपुर) ने दिया इस श्लोक का अनुवाद देखिये, ''अत: मैं यहाँ सूर्यदेव को ढकने के लिये कोई युक्ति करूँगा, जिससे अकेला सिधुराज ही सूर्य को स्पष्ट रूप से अस्त हुवा देखेगा''।

वस्तुत: उस श्लोक में ''अस्तंगत इति व्यक्तं'' (सूर्य अस्त हुवा दिखेगा) इस चरण से ''द्रक्षत्येक: स सिन्धुराट्'' यह अलग वाक्य है। किन्तु उपरोक्त अनुवादक उन दोनों को मिलाकर एक संयुक्त वाक्य मानते है ; और इसलिये जयद्रथ अकेला सूर्य का अस्त हुवा है ऐसा देखता रहेगा इस प्रकार अर्थ करते हैं। इनमें कुछ भाषांतरकार 'एक:' का अर्थ 'अकेला' ऐसा करते हैं ; किन्तु महाभारत में दिया वर्णन आगे जाकर स्पष्ट कहता है कि, सब कौरव सेना नें सूर्यास्त हुआ देखा। अत: अन्य भाषांतरकार ''अस्तंगन इति व्यक्तं'' इसका जयद्रथ से संबंध लगाने का आग्रह कायम रखकर, ''एक:'' का अर्थ खीचातान करके 'निश्चय पूर्वक' ऐसा करते है।

यदि श्रीकृष्ण की योजना अकेले जयद्रथ को सूर्यास्त प्रतीत करानेकी होती, तो अर्जुन को सूर्य दीखता रहता, और श्लोक ६६ में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सचेत करने का कोई कारण नहीं था कि, स्वयं तू सूर्यास्त के भ्रम में मत रहना। किन्तु जयद्रथ छोडकर अन्य सब को सूर्यास्त प्रतीत होनेवाला था इसलिये वह सूचना देनी पडी। फिर, यदि अकेले जयद्रथ को सूर्यास्त प्रतीत होता,तो उसके महारथी संरक्षकों को सूर्य दिखता रहकर वे पूरे जोर से लड़ते रहते ; और उस स्थिति में अर्जुन द्वारा जयद्रथ वध संभव नही था ऐसा स्वयं श्रीकृष्ण का कहना था ; और इस प्रकार मायावी सूर्यास्त निर्माण करने का सारा उद्देशही विफल हो जाता। किन्तु श्लोक ६८ (उत्तरार्ध) एवम् ६९ (पूवार्ध) से स्पष्ट है कि, जयद्रथ के सब रक्षकों को सूर्यास्त का आभास होकर वे अर्जुन नाश की कल्पना से अत्यंत हर्षित हो गये।

स्वयं जयद्रथ को आकाश में सूर्य आखिर तक दीख रहा था यह महाकवि ने श्लोक ७० एवं ७१ में नि:संदिग्ध कहा है। वहां कहे अनुसार सूर्यास्त के अंतिम क्षण की अति उत्सुकता से प्रतीक्षा करता हुवा जयद्रथ उस समय गर्दन पीछे मुडकर एवं मस्तक ऊंचा कर, हर क्षण अस्ताचल की ओर खसकनेवाले सूर्यबिंब की ओर देख रहा था। इस संदर्भ मे श्लोक ७२ का अर्थ जयद्रथ को सूर्यास्त प्रतीत होकर वह निर्भय हो गया था ऐसा

न होकर, कई महारथियों से स्वयं को सुरक्षित मानकर वह डूबते हुए सूर्य की ओर अधीरता से किन्तु निर्भय होकर देख रहा था ऐसा है। और खास बात यह थी कि, उसको सूर्य दीख रहा था इसकी कल्पना उसके रक्षकों को नही थी, और उन्हें सूर्यास्त प्रतीत हो रहा था इसकी कल्पना जयद्रथ को नही थी !

श्रीकृष्ण माया का रहस्य

श्रीकृष्ण के इस 'योगिक' चमत्कार में वास्तविक उद्देश क्या था ? मैं 'कल', और उसमें भी सूर्यास्तपूर्व ,जयद्रथवध करूंगा, अन्यथा अग्नि प्रवेश करूंगा, ऐसी अर्जुन ने प्रतिज्ञा की, तब इस प्रतिज्ञा की दुष्करता पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को चेतावनी दी। उसपर अर्जुन ने आत्मविश्वास व्यक्त किया ; किन्तु उसीके साथ एक बात के लिये चिंता व्यक्त करते हुए उसने श्रीकृष्ण से कहा —

मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्तराष्ट्रैः किलाच्युत
पृष्टतः सैन्धवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः ॥ द्रोणपर्व ८० - १२
ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः
कथं शक्येन संद्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः ॥ १४

''श्रीकृष्ण, मेरी प्रतिज्ञा विफल हो इस हेतु कौरवों के सब महारथी निश्चयही जयद्रथ को अपने पीछे कर सुरक्षित रखेंगे — १२. कृष्ण , उन सब महारथियों से रणभूमि पर घिरे हुए दुरात्मा जयद्रथ को मैं कैसा ठीक देख सकूंगा ? १४''*। इसी का इलाज श्रीकृष्ण ने मायावी सूर्यास्त द्वारा किया। पूर्व प्रकरण में देखे अनुसार रणभूमि पर पाण्डवों का मुंह पश्चिम को तथा कौरवों का पूर्व की ओर होता था। इस कारण कौरवों को सायंकालीन सूर्य पीठपीछे था , और सूर्यास्त कब होता है यह देखने उन्हें बारबार गर्दन पीछे मोड़कर देखना पड़ता था। अत: जब जयद्रथ के संरक्षकों को (मायावी) सूर्यास्त प्रतीत हुवा, तब जयद्रथ छोड़ अन्य सब कौरव योद्धाओंने पीछे मुड़कर देखना बंद कर दिया। किन्तु अकेला जयद्रथ फिरभी गर्दन ऊँची उठाकर पीछे देखता रहा ! यही महाकवि ने श्लोक ७० में जयद्रथ का नाम लेकर ''उन्नाम्य वक्त्राणि तदा'' इन शब्दों से बराबर वर्णन किया है ! इस प्रकार उसे घेरनेवाले सब वीरों से वह स्पष्टत: अलग दीखने लगा, और उसका मस्तक अर्जुन के बाण का सीधा निशाना बन सका !

* इनमें श्लोक १४ भांडारकर संस्था अधिकृत नहीं मानती। क्यों ?

इस प्रकार श्रीकृष्ण की उस माया ने स्वयं जयद्रथ को सूर्यास्त के विषय में भ्रम में नही डाला। इसके अलावा, उसके संरक्षकों ने जब सूर्यास्त के (मायावी) दृश्य के बाद भी अर्जुन को पूरे जोरशोर से लड़ते देखा, तो वे भी जैसा तैसा प्रतिकार करते ही रहे (श्लोक ७८)। किन्तु अब अर्जुन का अग्नि प्रवेश नक्की है इस तामसी अत्यानंद में मग्न होकर उनके प्रतिकार में पहिले जैसा तीव्र आवेश नही रहा ; और इसी का लाभ लेकर अर्जुन ने जयद्रथ के संरक्षकों को पराभूत कर उसका वध किया।

एक प्रचलित धारणा के अनुसार जयद्रथ मायावी सूर्यास्त से धोखे में आकर रणभूमि पर निश्चिंत घूमने लगा, तब श्रीकृष्ण ने एकदम अपनी माया वापस ली, और जयद्रथ को वास्तव स्थिति का भान होने पूर्व ही अर्जुन ने उसका शिरच्छेद किया। किन्तु महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण ने अपनी माया जयद्रथवध के पश्चात् हटाई (देखिये अध्याय १४६ श्लोक १३२, १३३ आगे उद्धृत)। इसका मतलब यह होगा कि, यदि स्वयं जयद्रथ भी उस मायावी सूर्यास्त से भ्रमित हो गया हो, तो वह पूरी तरह उस भ्रमावस्था में होते ही अर्जुन ने उसका वध किया। किन्तु यह सब महाभारत के सूक्ष्म कथन का विपर्यास है। जयद्रथ को कभी भी सूर्यास्त के विषय में भ्रम नही हुआ।

अर्जुन की दो भिन्न प्रतिज्ञा

यहां एक प्रश्न उठाया जा सकता है। माना कि इस प्रसंग में स्वयं जयद्रथ को धोखा नहीं दिया गया, फिर भी क्या उसके संरक्षकों को मायावी सूर्यास्त द्वारा भ्रमित नही किया गया ? किन्तु स्वयं वे संरक्षक इस बारे में कुछ भी तक्रार नही करते यह हमने ऊपर देखा है। उनके इस मौन का कारण क्या होगा ?

इस संबंध में प्राय: उपेक्षित महत्त्व का तथ्य यह है कि, जयद्रथवध के लिये अर्जुन की दो भिन्न प्रतिज्ञा थी। मैं 'कल सूर्यास्त पूर्व' जयद्रथ वध करूंगा अन्यथा अग्निप्रवेश करूंगा, यह उसकी वस्तुत: दूसरी प्रतिज्ञा थी। इसके अलावा उसकी प्रथम प्रतिज्ञा इतनीही थी कि, मैं 'कल' रणभूमिपर जयद्रथ वध करूंगा, अन्यथा मुझे मरणोत्तर भीषण दुर्गति प्राप्त हो। यह प्रथम प्रतिज्ञा अध्याय ७३ में श्लोक २० से ४६ की प्रथम पंक्ति तक विस्तार से बताई होकर, इसमें सूर्यास्त का कोई बंधन नहीं था। केवल 'श्व:' (श्वो) याने 'कल' (अर्थात् प्रत्यक्ष लड़ाई के अगले दिन) इतनाही बारबार कहा है।

ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभात् ददाति न
तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥ द्रोणपर्व ७३ -४४

धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्तिता:
ये चानूकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥ ४५
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् । ४६

''मैंने 'श्वो' ('कल' यानी लड़ाई के आनेवाले रोज) जयद्रथ का वध न किया, तो उपाध्याय को (कुछ दान करने का) मान्य करने पश्चात् बाद में लोभ से इन्कार करनेवालों की गति मुझे प्राप्त हो — ४४''। (अंतिम तीन पंक्तियों की चर्चा प्रकरण ९ में की है)। इसके बाद अर्जुन की द्वितीय प्रतिज्ञा प्रारंभ होती है।

इमां चाप्यपरां भूय: प्रतिज्ञां मे निबोधत ॥ ४६
यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति
इहैव सम्प्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ४७

''इसके अलावा पुन: मेरी यह दूसरी प्रतिज्ञा भी सुनो ;यदि इस पापी जयद्रथ का(मेरे द्वारा) वध होने के पूर्व ही सूर्यास्त हो जावे, तो मैं यहीं पर प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करूंगा''। यहां महाकवि ने स्पष्टतया 'अपरां प्रतिज्ञा' (दूसरी प्रतिज्ञा) कहा है ;तथा इसी में सर्वप्रथम सूर्यास्त का उल्लेख है।

दो प्रतिज्ञाओं से होने वाली सूक्ष्मता

हर दिन लड़ाई सूर्यास्त पर ही स्थगित होना चाहिये ऐसा नियम नही था यह हमने ऊपर देखा है। अर्जुन की प्रथम प्रतिज्ञा यह थी कि, मैं 'कल' लड़ाई स्थगित होने पूर्व जयद्रथ वध करूंगा (उसमें सूर्यास्त की सीमा नही थी) , अन्यथा मुझे मरणोत्तर घोर दुर्गति प्राप्त होगी। लड़ाई के हर दिन दोनों पक्ष युद्ध विराम हेतु सहमत होने तक लड़ना चालू रहता था। कोई भी एक पक्ष लड़ना चालू रखना चाहे तो दूसरे पक्ष ने लड़ाई के लिये खड़ा रहना आवश्यक था। उदाहरणार्थ , जयद्रथवध के ही इस दिन (प्रकरण ७ में 'अवकाश दिनों में एक अपवाद' शीर्षक के अधीन बताये अनुसार) सूर्यास्त के बाद अंधेरी रात में भी लड़ाई चालू रही ; और मध्यरात्रि के समय पांडवों के स्थगन प्रस्ताव को कौरव सेनापति द्रोण ने संमति देने पर लड़ाई चन्द्रोदय तक स्थगित हुई ; किन्तु पांडवों का वह प्रस्ताव मान्य करने के लिये दुर्योधन ने द्रोण को बहुत दोष दिया (१८५-१,२,३)। इससे दीखता है कि, यदि उस समय द्रोण संमति न देते तो पांडवों को उस मध्यरात्रि में भी लड़ाई चालू रखना अनिवार्य था।

अत: अपनी प्रथम प्रतिज्ञा पूर्ण कर मरणोत्तर दुर्गति टालने लड़ाई सूर्यास्त बाद भी चालू रखने का अर्जुन को हक था। दोनो पक्ष यह जानते थे। अब अर्जुन की उन दो प्रतिज्ञाओं का कुल परिणाम यह था। उस दिन सूर्यास्त पूर्व जयद्रथवध करने से अर्जुन की दोनों प्रतिज्ञा पूर्ण होकर, जीवित अवस्था में अग्नि प्रवेश और मरणोत्तर दुर्गति इन दोनों से वह बचता। और यदि उस रोज किन्तु सूर्यास्त बाद वह जयद्रथवध करता, तो (द्वितीय प्रतिज्ञा विफल होने से) उस दिन की लड़ाई स्थगित होने बाद उसे आत्मदाह करना पडता, किन्तु (प्रथम प्रतिज्ञा पूर्ण होने से) मरणोत्तर दुर्गति से वह बच जाता। और अंत में, यदि सूर्यास्त के बाद भी वह जयद्रथवध न करता, तो उसे उस दिन की लड़ाई समाप्त होनेबाद अग्नि प्रवेश करना पडने के अलावा मरणोत्तर दुर्गति भी प्राप्त होती।

दुर्योधन का प्रमुख उद्दिष्ट

इस प्रकार उस दिन सूर्यास्त के बाद भी लड़ाई उभय संमति से स्थगित होने तक जयद्रथ के जान को अर्जुन से धोखा था; और तबतक उसे पूर्ण संरक्षण देने का कौरवों का वचन एवं कर्तव्य था। किन्तु दुर्योधन का सारा प्रयास इसीपर केन्द्रित था कि, किसी भी प्रकार जयद्रथ को सूर्यास्त तक बचाया जावे, ताकि (उस दिन लड़ाई स्थगित होते ही) अर्जुन को स्वयंही अग्नि प्रवेश करना पडेगा, जो पांडव पक्ष पर वज्राघात हो जाता। इस दृष्टि से जैसा सूर्यास्त समय निकट आने लगा, दुर्योधन ने कर्ण से कहा —

अल्पावशेषो दिवसो नृवीर
विघातयस्वाद्य रिपुं शरौघै:
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर
ध्रुवो हि न: कर्ण जयो भविष्यति ॥ द्रोण पर्व, १४५-१३
सैन्धवे रक्षमाणे तु सूर्यस्यास्तमनं प्रति
मिथ्याप्रतिज्ञ: कौन्तेय प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ १४
अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद
जीवितुं नोत्सहेरन् वै भ्रातरोऽस्य सहानुगा: ॥ १५
कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुन :
अनस्तंगत आदित्ये हन्यात् सैन्धवकं नृपम् ॥ १६

"नरवीर कर्ण, अब थोड़ासाही दिन शेष है; तुम शत्रु * का अपनी बाणवर्षा से पूरा पराभव करो; नरश्रेष्ठ, (इस प्रकार) दिन समाप्त होने पर अपना विजय नि:संदेह होगा — १३. सूर्यास्त तक जयद्रथ का रक्षण किया गया तो अर्जुन की प्रतिज्ञा मिथ्या होकर उसको अग्निप्रवेश करना होगा — १४. माननीय कर्ण, पृथ्वी से अर्जुन नष्ट होते ही उसके भाई एवं अनुगामी एक मुहूर्त भी जीवित रहने की इच्छा नहीं करेंगे — १५. कर्ण, तेरे समान अजिंक्य वीर जीवित रहते अर्जुन सूर्यास्त के पूर्व जयद्रथ का वध कैसे कर सकेगा? — १६."।

दुर्योधन अर्जुन की प्रतिज्ञा के दोनों अंश जानता नही था ऐसा नही। अन्यथा सूर्यास्त का (मायावी) दृश्य देखने बाद भी अर्जुन को लड़ते देखने पर वह तथा उसके अनुयायी तत्काल अर्जुन के अग्नि प्रवेश का आग्रह करते, और उसी समय स्वयं आकाश में सूर्य देखने वाले जयद्रथ के ध्यान में वह परिस्थिति आकर वह उन्हें सावध करता! किन्तु यद्यपि इस प्रसंग पर लिखने वाले कई लेखक कवि आदि कहते हैं कि (मायावी) सूर्यास्त देखतेही कौरव लड़ना छोडकर अर्जुन के अग्निप्रवेश का आग्रह करने लगे, महाभारत में वैसा कुछ भी नही। इसके विपरीत (उस) सूर्यास्त बाद भी अर्जुन को लड़ते देख, वे भी कुछ ढिलाई से किन्तु प्रतिकार करते रहे, यह ऊपर उद्धृत श्लोकों से स्पष्ट होगा।

कौरव योद्धा कर्तव्यच्युत हुए

अब आज की लड़ाई कभी भी स्थगित होने पर अर्जुन का अग्निप्रवेश निश्चित है इस कल्पना से कौरव योद्धाओं को अपार हर्ष हुवा। एकबार जयद्रथ को सूर्यास्त तक बचाया कि उसके बाद शेष लड़ाई की दुर्योधन को विशेष चिंता नहीं थी। उसे विश्वास था कि, अर्जुन का अग्निप्रवेश निश्चित हो जाने बाद पांडव अत्यंत उदास होकर, लड़ाई कुछ समय और चालू रही तो भी कौरवों का नि:संदेह विजय होगा। इस दृष्टि से दुर्योधन आदि का सारा ध्यान सूर्यास्त पर (१५४ — ४५,५६,५७), तथा अपनीहि प्रतिज्ञा में फंसकर अर्जुन स्वयं के ही हाथों मरे इस पर केन्द्रित था। अत: जयद्रथ के महारथी संरक्षकों को (मायावी) सूर्यास्त दिखतेही अपना परम लक्ष्य साध्य हुवा लगा; और उस अत्यानंद में यद्यपि उसके बाद वे अर्जुन से लड़ते रहे, उनके प्रतिकार की तीव्रता कम हो गई। सूर्यास्त के बाद भी उस रोज लड़ाई स्थगित होने तक जयद्रथ का पूरा संरक्षण करना उनका कर्तव्य था; किन्तु अब आज की लड़ाई स्थगित होने पर अर्जुन का अग्निप्रवेश निश्चित है इस

* यहां 'शत्रु' में अर्जुन के अलावा उनकी सहायतार्थ आ पहुंचे सात्यकि एवं भीम भी है। अर्जुन का (उसके संभावित अग्नि प्रवेश सहित) विशेष उल्लेख अगले श्लोक में आया है।

तामसी विचार से वे अतने हर्षमग्न हो गये कि, अर्जुन का प्रतिकार करनें में उनकी एकनिष्ठता कम हो गई ; और इसका लाभ उठाकर अर्जुन ने वीरतापूर्वक उन सब महारथियों को पराभूत कर जयद्रथ पर अंतिम धावा बोल दिया।

इस परिस्थिति में जब कौरवों ने अर्जुन के बाण से जयद्रथ का सिर कटा देखा, तब स्वाभाविकही उन्हें बहुत दुख हुवा। किन्तु जब तुरन्त बाद श्रीकृष्ण ने अपनी माया समेट ली, और सभी ने अस्त की ओर जानेवाला सूर्य फिर आकाश में देखा , तब तो जयद्रथ भी मारा गया और उधर अर्जुन नाश भी नही हुआ, यह देख कर कौरवों के दुख को सीमा नही रही !

ततो विनिहते राजन् सिन्धुराजे किरीटिना
तमस्तद् वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥ द्रोणपर्व, १४६- १३२
पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥ १३३
हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप
दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाभवञ्जये ॥ १३५

''भरतश्रेष्ठ (धृतराष्ट्र) ,अर्जुन द्वारा जयद्रथ का वध होने पर श्रीकृष्ण ने वह (मायावी) अंधकार हटा लिया — १३२. राजन् ,इस प्रकार आपके पुत्र एवं उनके साथियों को बाद में मालुम हुवा कि, वह श्रीकृष्ण निर्मित माया थी — १३३. नरेश,जयद्रथ मारा गया देख आपके पुत्र दुःख से आंसू बहाने लगे, और (अर्जुन का अग्नि प्रवेश भी टल जाने से) अपने विजय के बारे में निराश हो गये — १३५ ''। किन्तु अर्जुन के अग्निप्रवेश की कल्पना से उत्पन्न तामसी अत्यानंद के कारण उनके स्वयं के कर्तव्यपालन में आई शिथिलता जयद्रथ वध में कारणीभूत होनेसे, वे बाद में उस बारे में श्रीकृष्ण एवं अर्जुन को दोष नहीं दे सके।

श्रीकृष्ण माया की घटना प्रक्षिप्त नहीं

मायावी सूर्यास्त का वृत्तांत महाभारत में दिये जयद्रथवध के प्रसंग से पूर्ण सुसंगत होकर मूल महाभारत का ही अंश है। अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार कौरवों को पहुंचते ही,तत्काल 'अगले' दिन की लड़ाई मे रणक्षेत्र पर जयद्रथ की संपूर्ण सुरक्षा की योजना बनाई गई। उसकी जानकारी गुप्तचरों द्वारा प्राप्त होते ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को चेतावनी दी कि, जयद्रथ को बचाने रणक्षेत्र के अंतिम स्थानपर भी छः अतिमहारथी खडे रहने वाले हैं ,

और कुछ विशेष 'युक्ति' किये बिना अर्जुन उन सबको पराभूत नही कर सकेगा (७५ — २८,२९,३०)। स्वयं श्रीकृष्ण चिंतित होकर दारुक से बोले —

सो ऽ हं श्वस्तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतो ऽ र्जुनः ॥ ७९ -२५
अप्राप्ते ऽ स्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम्.... ॥ २६

''अतः मै 'कल' ऐसा करूंगा जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन सूर्यास्त पूर्व जयद्रथ का वध करेगा ''। इसी के अनुसार श्रीकृष्ण ने अंतिम क्षणपर सूर्यास्त का मायावी दृश्य निर्माण किया, जिससे जयद्रथ के संरक्षक अपने तामसी आनंद में मग्न होकर कर्तव्य भ्रष्ट हुवे। जो इस मायावी सूर्यास्त को प्रक्षिप्त मानते हैं वे भी श्रीकृष्ण के ये (एवं आगे उल्लेखित और) वचन प्रक्षिप्त नही मानते। किन्तु क्या उस मायावी सूर्यास्त बिना वे सब वचन निरर्थक नहीं हो जावेंगे ?

इसके अलावा , श्रीकृष्ण ने जयद्रथ के छः महारथी संरक्षकों के बारे में अर्जुन को पहिलेही शिबिर में जो चेतावनी दी थी , वही (और करीब उन्हीं शब्दों में) उन्होंने बाद में रणभूमि पर मायावी सूर्यास्त निर्माण करते समय पुनश्च दी (श्लोक १४६ - ६२,६३ ऊपर उद्धृत)। फिर पहिले के श्लोक मूल महाभारत के मानना किन्तु बादके अमान्य करना, कहां तक सुसंगत होगा ? और जैसा कि ऊपर बताया है, स्वयं अर्जुन ने श्रीकृष्ण से चिता व्यक्त की थी कि, जयद्रथ को घेर रखने वाले संरक्षकों की भीड़ में उसे अंतिम क्षण में किस प्रकार ठीक निशाना बना सकूंगा ? इसी का समुचित इलाज श्रीकृष्ण ने मायावी सूर्यास्त द्वारा कर दिया।

मायावी सूर्यास्त के वर्णन को प्रक्षिप्त मानने में भांडारकर संस्था अध्याय १४६ में (ऊपर उद्धृत) श्लोक ६२ से १०४ की प्रथम पंक्ति तक पूरा कथन निकाल देती है ; और इस प्रकार श्लोक ६१ में श्रीकृष्ण का अर्जुन से भाषण प्रारंभ होने का जो उल्लेख है, उसकी सीधी संगनि श्लोक १०४ के द्वितीय पंक्ति में प्रारंभ होनेवाले श्रीकृष्ण के भाषण से लगाती है। किन्तु वस्तुतः श्रीकृष्ण के अर्जुन से ये दो भिन्न भाषण थे। उन दोनों को एकही भाषण मानकर बीच के सारे श्लोक प्रक्षिप्त मानने में कई ऐसे भी श्लोक हटाये जाते हैं, जिनका मायावी सूर्यास्त से सम्बन्ध नहीं। जैसे, श्लोक १०१,१०२,१०३ में अर्जुन ने जयद्रथवधार्थ अंतिम दिव्यास्त्रमंत्रित बाण छोड़ा उसका वर्णन है। भांडारकर संस्था उन्हें भी प्रक्षिप्त मानती है ; यद्यपि इसके बाद उसी बाण का श्लोक १२०,१२१ में आया वर्णन स्वीकार करती है। किन्तु वे पहिले के और बाद के श्लोक परस्पर पूर्ण सुसंगत हैं। इतनाहि नही,

अपितु बाद के श्लोकों में वह अंतिम बाण अर्जुन ने धनुष पर कैसा और कब चढ़ाया इसी का मार्मिक वर्णन है। फिर , मात्र इसलिये कि वे पहिले के श्लोक मायावी सूर्यास्त के वर्णन के साथ आते हैं, और उस सूर्यास्त दृश्य को (उसका वास्तविक स्वरूप एवं रहस्य ध्यान में न आने से) किसी प्रकार अमान्य करना है, उन श्लोकों को महाभारत से हटाना कैसा उचित होगा ?

मायावी सूर्यास्त की वह घटना नकारने वाले कुछ लेखक कहते हैं कि, उस समय आकाश में बादलों से सूर्य ढक कर क्षणभर सूर्यास्त का भास हुआ होगा। किन्तु वह दिन वर्षाऋतु का न होकर मार्गशीर्ष मास के वद्य पक्ष का था। और उस दिन आकाश मे ढग — और वे भी सूर्य को पूर्ण आवृत्त कर सूर्यास्त का आभास निर्माण करने इतने घने एवं विशाल — होनेका कुछभी संकेत महाभारत मे नही। बल्कि, इसके विपरीत उस दिन अपराण्ह प्रहर मे सूर्य की धूप तेज गिर रही थी ऐसा महाभारत में उल्लेख है ! (द्रोणपर्व १२५ - ५१, प्रकरण १७ में उद्धृत) .

श्रीकृष्ण की वह माया नकारने वाले कुछ अन्य कहते हैं कि, उस समय खग्रास सूर्यग्रहण लगा होगा। किन्तु यदि ऐसा होता, तो पंचांगों द्वारा सभी को उसकी पूर्वजानकारी होती, और किसी को भी सूर्यास्त के विषय मे भ्रम होनेका कारण नही था। इसके अलावा , सूर्यग्रहण अमावास्या को ही होता है, और क्या उस दिन अमावास्या थी ?

वास्तविकता यह है कि, स्वयं महाभारतकार महाकवि नें जयद्रथवध के उस प्रसंग में श्रीकृष्ण ने प्रदर्शित की अद्भुत माया का सूक्ष्म मार्मिक वर्णन दिया है, जिसका मूल उद्देश एवं रहस्यमय स्वरूप ठीक ध्यान में लेना आवश्यक है। ❑

प्रकरण १९

और एक संख्यावाचक कूट

अर्जुन के पास गांडीव धनुष्य होनेका समय

कौरवों ने विराटनगर पर किये आक्रमण के प्रसंग पर अज्ञातवास समाप्त कर अर्जुन प्रकट हुवा, उस समय विराटपुत्र उत्तर से संभाषण में महाकवि ने अर्जुन के मुंह मे एक संख्यात्मक कूट रखा है। प्रकरण ४ में कहे अनुसार , उस दिन सूर्योदय के समय उस आक्रमण का समाचार नगर में पहुंचने पर राजकुमार उत्तर बृहन्नला रूपी अर्जुन को अपना सारथी कर कौरवों से लड़ने निकला। किन्तु प्रत्यक्ष कौरव सेना देखने पर वह डरकर पीछे भागने लगा। अर्जुन ने उसे पकड़ रखा, और कहा कि स्वयं मैं कौरवों से लड़ूंगा तू मेरा सारथ्य कर। फिर अर्जुन ने उत्तर के द्वारा वे शस्त्र बाहर निकाले , जो पांडवों ने अज्ञातवास प्रारंभ करते समय नगर के बाहर एक वृक्ष पर छिपा रखे थे। और (अभी तक स्वयं का वास्तविक परिचय न देते) अर्जुन उन शस्त्रों की जानकारी उत्तर को देने लगा। अपने सुविख्यात गांडीव धनुष के बारे में अर्जुन ने कहा कि, यह विख्यात अति बलशाली धनुष प्राचीन काल में ब्रह्मा ने एक हजार वर्ष , प्रजापति ने ५०३ वर्ष, इन्द्र ने ८५ वर्ष, राजा सोम ने ५०० वर्ष, तथा वरुण ने एक सौ वर्ष धारण किया था (विराट पर्व , ४३ - १,५,६); और इतना कहकर अर्जुन ने आगे कहा —

पार्थः पंच च षष्टिं च वर्षाणि श्वेतवाहनः ॥ ४३-६

''तथा जिसके रथ के घोड़े सफेद होते हैं वह अर्जुन (इसे) 'पंच च षष्टिं च' वर्ष धारण करते आया है'' ।

यहां 'पंच च षष्टिं च' शब्दों ने अभ्यासकों के लिये समस्या खड़ी कर दी है। उसका हमेशा का अर्थ 'पांच अधिक साठ अर्थात पैंसठ ' होता है। किन्तु महाभारत में अर्जुन को गांडीव धनुष प्राप्त होने का जो समय दिया है, वहाँ से यहां तक पैंसठ वर्ष होना असंभव है। अर्जुन ने अग्निदेव की सूचनानुसार खांडव वन जलाया (और वह स्थान मनुष्य वसती के लिये सुलभ किया), उस समय अग्नि ने गांडीव धनुष वरुण से लाकर अर्जुन को दिया था (आदि पर्व अध्याय २२४)। तत्पश्चात् मयासुर ने पांडवों के लिये विशाल सभागृह निर्माण किया ; और भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव ने

चारों दिशाओं मे भारतभर महान विजय प्राप्त किये। तदनंतर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। वह दो वर्ष चलता है*। उस यज्ञसमाप्ति से कुछ ही माह बाद द्यूत होकर पांडवों का वनवास -अज्ञातवास प्रारंभ हुवा, जिसका तेरहवा वर्ष अब समाप्त हुआ था। इस प्रकार देखते अर्जुन को वह धनुष प्राप्त होकर इस समय तक पैंसठ वर्ष बीतना असंभव था।

इस असंभव की और भी एक पुष्टि है। कुरुक्षेत्र पर हुए युद्ध मे अभिमन्यु मारा गया तब वह सोलह वर्ष का था ऐसा आदिपर्व के निम्न श्लोकों में दर्शाया है। असुरों के नाशार्थ इन्द्र का अंश पृथ्वी पर पांडुपुत्र अर्जुन के रूप में जन्म लेगा ऐसा चन्द्र (सोम) ने देवों को बताकर आगे कहा कि, मेरा पुत्र वर्चा अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के रूप में जन्म लेगा।

तस्यायं भविता पुत्रो बालो भुवि महारथः
ततः षोडश वर्षाणि स्थास्यत्यमरसत्तमाः॥ आदिपर्व, ६७- ११७
अस्य षोडशवर्षस्य स संग्रामो भविष्यति
यत्रांशाः वः करिष्यन्ति कर्म वीरनिषूदनम्॥ ११८

"श्रेष्ठ देवगण, यह (मेरा प्रिय पुत्र वर्चा) उसका (अर्जुन का) पुत्र होकर पृथ्वी पर जन्म लेगा तथा बालवय में ही महारथी माना जावेगा; तदनंतर (वहां) यह सोलह वर्ष रहेगा — ११७. इसके सोलहवे वर्ष में वह (कौरव - पांडव) युद्ध होगा, जिसमें आपके अंशों से उत्पन्न योद्धा शत्रुवीरों का विनाश करनेवाले कर्म करेंगे — ११८"। चन्द्र ने और कहा, उस युद्ध में एक दिन यह (अभिमन्यु) चक्रव्यूह में प्रवेश कर महापराक्रम करने बाद मारा जायगा। महाभारत के अनुसार अर्जुन का द्वारका में सुभद्रा से विवाह होकर, वह सुभद्रा के साथ इन्द्रप्रस्थ वापिस आनेबाद अभिमन्यु का जन्म हुआ; एवं उसके पश्चात खांडव वन दहन हुआ। तदनंतर, ऊपर कहे अनुसार, राजसूय यज्ञ, द्यूत एवं अंत में पांडवों का तेरह वर्ष वनवास - अज्ञातवास हुआ। तथा वह समाप्त होते ही गोग्रहण युद्ध हुआ (जिसके आरंभ में अर्जुन ने गांडीव धनुष्य धारण करने का तब तक का समय उसने उत्तर को बताया था)। तथा इसके करीब सात माह बाद कुरुक्षेत्र युद्ध में अभिमन्यु का वध हुआ। इस प्रकार भी खांडव दाह के प्रसंग पर अर्जुन को गांडीव धनुष्य प्राप्त हुवा था वहां से गोग्रहण युद्ध तक करीब पन्द्रह वर्ष गिने तो, अभिमन्यु की कुल आयु आदिपर्व के ऊपर उद्धृत श्लोकों में बताये अनुसार सोलह वर्ष हो सकती है। वह काल पैंसठ वर्षों तक बढाना संभव नही। फिर महाभारतकार विराटपर्व के श्लोक ४३ - ६ में अर्जुन के द्वारा वह समय "पंच च षष्टिं च वर्षाणि" कैसा बताते हैं?

* देखिये Dr. Kane पू.उ. vol II 1214 - 23, तथा III, p. 962; एवं शतपथ ब्राह्मण, पंचम काण्ड.

विविध तर्क

भाष्यकार नीलकंठ यहां 'वर्ष' का अर्थ 'वर्षा' (पर्जन्यवृष्टि) कर, ऐसी दो वर्षा मिलकर एक पूर्ण संवत्सर वर्ष गिनना चाहते हैं। इस हिसाब से पैंसठ 'वर्षाणि' यानी ३२ $\frac{1}{2}$ वर्ष होते हैं। किन्तु उक्त कालावधि में ३२$\frac{1}{2}$ वर्ष भी कहां होते हैं?

डॉ. दप्तरी यहाँ अलग ही स्पष्टीकरण देते हैं। "Therefore we have to take it that the period sixtyfive Varshas is counted from the burning of the forest to the end of Arjuna's life . Arjuna lived twentytwo years after the war as the eclipses prove and we can suppose that $21\frac{1}{2}$ years passed between the burning of the forest and war. In making the number 65 the latter period appears to heve been doubled before it is added to the former [22 + (2x21 $\frac{1}{2}$) = 65]. This mistake might have happened in this way. The latter period may have been stated somewhere as 43 and being misunderstood as meaning 43 years it was added to 22 years of the former period . This is the explanation of 65 and no better explanation suggests itself " (पूर्व उल्लेखित, PP.92-93). डॉ.दप्तरी की राय में अर्जुन के वचन में कुछ संख्या विषयक गलती होगी! वह बताने हेतु वे कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद अर्जुन बाईस वर्ष जीवित रहा ऐसा मानते हैं, जब कि महाभारत के अनुसार वह काल छत्तीस वर्ष था (स्त्रीपर्व, २५ - ४४, ४५; मौसल पर्व १ - २)। किन्तु इसके अलावा, खांडव दहन से महायुद्ध तक के वर्ष दुगने कर वे उन तथाकथित बाईस वर्षों मे मिलाकर, कुल जोड़ यहां अर्जुन के वचन में किसने क्यों रखी होगी? फिर राजकुमार उत्तर को गांडीव धनुष का परिचय देने में अर्जुन अपने निधन तक का काल किस लिये गिनेगा? क्या उसे अपना निधन समय पहिले से ज्ञातभी था? कुछ अन्य लेखक इस समय अर्जुन की उमर ६५ वर्ष होगी ऐसा भी तर्क करते हैं। किन्तु वैसा माना, तो भी गांडीव धनुष अर्जुन के पास जन्म से नहीं था; जब कि उक्त श्लोक में वह उसके पास कितने साल से था यह बताया होकर, उसका अर्जुन के जन्मकाल से कोई सबंध नही।

कूट का स्पष्टीकरण

महाकवि ने फिर यहां एक शाब्दिक श्लेष किया है। उक्त वचन में 'षष्टिं' का अर्थ साठ न होकर, उसका विग्रह षष्+ टिं (टिम्) ऐसा है। षष् का अर्थ है छः। शेष रहा

'टिम्' । संस्कृत में 'क' का प्रयोग एक की संख्या के लिये भी होता है। इस क्रम से 'ख' यानी दो, 'ग' यानी तीन, ऐसा होते होते 'ट' का आशय ग्यारह होता है। प्राचीन ज्योतिष शास्त्रज्ञ आर्यभट्ट ने इन अक्षरों का ऐसा उपयोग किया है*। अब 'वर्षाणि' शब्द नपुंसकलिंग में है। अतः महाकवि ने 'ट' का रूपांतर नपुंसकलिंग में (किम् के समान) टिम् किया ; तथा उसकी षष् से संधि कर 'षष्टिं' शब्द तैयार किया ! इस प्रकार 'पंच च षष्टिं च' का अर्थ होता है पाच-छः (अथवा करीब साढ़े-पांच) और अधिक ग्यारह , कुल सोलह-सत्रह ! और अर्जुन को वह धनुष प्राप्त होकर इस समय तक करीब इतने ही साल हो सकते हैं, यह हमने ऊपर देखा है।

शायद यहां शंका उठाई जावे कि, 'च' का अर्थ 'और' होता है, जब कि मैने यहां 'पंच च षष्' का अर्थ पाँच 'या' छः (पाच-छः) किया है। किन्तु संस्कृत पद्य में 'च' का प्रयोग कई बार मात्र पादपूरणार्थ होता है ; अतः उसे छोड़कर सीधा 'पंच-षष्' (पाच-छः) ऐसा (शांतिपर्व के उपरोल्लेखित श्लोक में आये 'पंच-षट्' समान) शब्द हो सकता है। इसके अलावा, 'च' का कभी - कभी संभाव्य विकल्प के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

किन्तु इस संबंध में एक भिन्न स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत है। ऊपर आदिपर्व ६७ - ११७, ११८ के आधार पर अभिमन्यु की मृत्यु समय उमर सोलह वर्ष मानी है। किन्तु महाभारत में अन्यत्र अभिमन्यु के जो उल्लेख हैं, उनमें उसकी उमर वर्षों में न देते, उसे 'अप्राप्त यौवन', 'शिशु', 'बाल', 'युवा', 'तरुण', 'कुमार', आदि कहा है। इनमें कुछ विशेषण स्पष्ट ही वात्सल्य प्रेरित होकर वय की दृष्टि से अर्थवादात्मक हैं। अतः अभिमन्यु ने युद्ध में किया महान पराक्रम एवं अन्य भी कुछ घटना ध्यान में लेते, कुछ अभ्यासकों की राय में मृत्युसमय उसकी आयु सोलह से अधिक होगी। भाडांरकर शोध संस्था सोलह वर्षों का उल्लेख करनेवाले उपरोक्त दो श्लोक अधिकृत नही मानती है। पांडवों के वनवास पूर्व (बल्कि राजसूय यज्ञ पूर्व) अभिमन्यु का उपनयन संस्कार संपन्न हो गया था (आदिपर्व २२० - ८७)। और राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर कुछ सन्मान्य आमंत्रित वापिस जा रहे थे तब उनके साथ पांडवों की ओर से आदरपूर्वक राज्य की सीमातक जाने इतनी (सभापर्व ४५ - ४९) अभिमन्यु की उमर थी। यह देखते भी मृत्युसमय उसकी आयु सोलह से अधिक मानी जा सकती है।

इसके अलावा, ऊपर कहे अनुसार खांडवदहन के कुछही पूर्व अभिमन्यु का जन्म हुआ ; तथा खांडवदहन का 'महान कर्म' करने पश्चात अर्जुन को द्रौपदी से पुत्र प्राप्त हुआ

* देखिये डॉ. गोरख प्रसाद कृत 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास' पृ. ७७ - ८२ ; तथा ओक कृत 'गीर्वाण लघुकोश'।

(आदिपर्व २२० - ८३)। उसके एक वर्ष बाद द्रौपदी को नकुल से, तथा और एक वर्ष बाद सहदेव से पुत्र हुआ (देखिये आदिपर्व २२० - ८६)। इस प्रकार अभिमन्यु एवं उन नकुल सहदेव पुत्रों के जन्म काल में अंतर देखते, यदि अभिमन्यु की उमर मृत्युसमय सोलह वर्ष हो, तो उन नकुलसहदेव पुत्रों की उमर महायुद्ध समय करीब चौदह एवं तेरह वर्ष ही होगी। किन्तु सब पांडव पुत्रों ने इसके पूर्वा बारह वर्ष पूर्ण विद्याभ्यास कर शस्त्रविद्या प्राप्त की थी —

एते द्वादश वर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः
अस्त्रार्थमवसन् भीष्मे बिभ्रतो व्रतमुत्तमम् ॥ द्रोणपर्व १०-५२

"इन बालकों ने बारह वर्ष कीडा त्याग कर उत्तम विद्यार्थीव्रत पालन कर अस्त्रविद्या प्राप्ति हेतु कठोर वातावरण मे बिताये थे"*। यदि ऊपर अनुसार वयगणना की, तो (स्वयं अभिमन्यु , एवं युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन के द्रौपदी पुत्रों का विचार अलग रखा तो भी) कमसे कम नकुल सहदेव के पुत्रों के बारे मे बारह वर्षों तक शिक्षा ग्रहण का यह विधान वास्तविक नही हो सकता। इस दृष्टि से भी युद्ध में मृत्युसमय अभिमन्यु की आयु सोलह वर्षो से अधिक मानना संभव है।

यह मत स्वीकार किया तो "पंच च षष्टिं च" का अर्थ ५ + ६ + ११ = २२ ऐसा हो सकेगा। तथा अभिमन्यु के जन्म से राजसूय यज्ञ तक सात वर्ष (जिसमें उसका उपनयन संस्कार) , बाद में यज्ञ के दो वर्ष , (फिर कुछ माह) , तत्पश्चात वनवास - अज्ञातवास के तेरह वर्ष , और अंत में महायुद्ध में अभिमन्यु के निधन तक करीब सात माह , इस प्रकार गणना करने से अभिमन्यु की कुल आयु करीब तेईस वर्ष होकर , अर्जुन को (खांडवदाह समय) गांडीव धनुष्य की प्राप्ति से गोग्रहण युद्ध तक का कालावधि करीब बाईस वर्ष होता है।

किन्तु, "पंच च षष्टिं च" के ऊपर प्रस्तावित दो अर्थों में से किसी को भी स्वीकारना हो, उसका अर्थ 'पैंसठ' नही इसमें संदेह नही।

* इस श्लोक में 'भीष्म' शब्द का अर्थ 'भीष्म के पास' ऐसा नही है। पांडवों के पुत्र भीष्म के पास अस्त्रविद्या प्राप्त करने कभी भी नही रहे। यहां 'भीष्मे' का अर्थ 'कठोर संयमित वातावरण में' ऐसा प्रतीत होता है। 'भीष्म' शब्द का भीषण , भयावह , कठोर आदि अर्थ में प्रयोग स्त्री पर्व २३ - १४ में आया है। बल्कि यही उसका मूल अर्थ है। ये बारह वर्ष पांडवों के वनवास - अज्ञातवास समय के होंगे ; उन वर्षों में शैशवावस्था में ही अभिमन्यु अपने पिता से तथा द्रौपदी के पुत्र अपने माता - पिता से बिछुड़ कर द्वारका में शिक्षा ले रहे थे। ❑

प्रकरण २०

द्रोणाचार्य और एकलव्य

द्रोणाचार्य - एकलव्य कथा महाभारत के आदिपर्व में आती है। द्रोण और पांचाल राजपुत्र द्रुपद विद्यार्थी अवस्था में मित्र थे। उस समय द्रुपद ने द्रोण को वचन दिया था कि वह राजा होने बाद भी द्रोण से मित्रता कायम रखेगा। बाद में द्रुपद सिंहासनस्थ होने पश्चात एक दिन द्रोण उस वचन का ख्याल कर उसके पास गये। किन्तु द्रुपद ने उद्दंडतापूर्वक कहा कि, एक सामान्य निर्धन व्यक्ति ने किसी राजा से मित्रता की अपेक्षा करना मूर्खता है। इस पर द्रोण ने, जो धनुर्विद्या में पूर्ण पारंगत हो गये थे, सोचा कि कुछ अच्छे शिष्य तयार कर उनसे राजा द्रुपद को सबक सिखाऊंगा।

इस उद्देश से घूमते घूमते द्रोण कुरुकुल की राजधानी हस्तिनापुर आये। वहां उनके शालक कृप शिक्षक थे। तब तक राजा पण्डु का निधन होकर, विधवा कुन्ती पाच बालक पांडवों को लेकर हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र - गांधारी के पास आकर रहती थी। धृतराष्ट्र अंध होने से राजकाज भीष्म देखते थे। पाच पांडव और सौ धृतराष्ट्र पुत्र इनकी एक साथ पढाई हो रही थी।

धनुर्विद्या के श्रेष्ठ ज्ञाता द्रोण स्वयं हस्तिनापुर आये हैं यह जानकारी प्राप्त होने पर भीष्म ने उनसे अनुरोध किया कि, वे कुरुकुल के राजपुत्रों को उच्च धनुर्विद्या प्रदान करें। भीष्म ने द्रोणाचार्य के निवास, उपजीविका आदि की उत्तम व्यवस्था कर दी (आदिपर्व १३१ - ३)। इस प्रकार द्रोण ने हस्तिनापुर में कौरव - पांडव राजपुत्रों के आचार्य नाते कार्य प्रारंभ किया। आसपास के अन्य भी विद्यार्थी उनके पास आकर धनुर्विद्या ग्रहण करने लगे।

एकलव्य का प्रवेश

इस पृष्ठभूमि में एकलव्य भी आचार्य द्रोण के पास आता है —

ततो निषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः
एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगाम ह ॥ आदिपर्व १३१-३१

(वैशंपायन कहते हैं), ''महाराज (जनमेजय), इसके बाद निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य (धनुर्विद्या के अध्ययनार्थ) द्रोण के पास आया''। किन्तु —

न स तं प्रतिजग्राह नैषादिरिति चिन्तयन्
शिष्यं धनुषि धर्मज्ञस्तेषामेवान्ववेक्षया ॥ १३१ - ३२

''उस कर्तव्यनिष्ठ (द्रोण) ने यह नैषादि यानी निषाद राज्य का राजपुत्र है यह सोचकर, मात्र उनका (कुरु कुल के राजपुत्रों का) हित ध्यान में रखकर, उसे (एकलव्य को) धनुर्विद्या में शिष्य करने स्वीकार नही किया''। यहां महाकवि ने 'तेषाम् एवं अन्ववेक्षया' कहा है। यही शब्द प्रयोग आदिपर्व ३० - ५ में गरुड एवं बालखिल्य ऋषियों की कथा में भी आया है ; जहां उसका अर्थ 'केवल उन (ऋषियों) (की सुरक्षा) का ख्याल कर' ऐसा है। प्रस्तुत संदर्भ में तेषाम् (उनका) शब्द का संबंध हस्तिनापुर के राजपुत्रों से है ; तीन श्लोक पूर्व (१३१ - २९) 'कौरवान्' (कुरु कुल के वंशज) शब्द से उनका उल्लेख आया है। एकलव्य एक अन्य राज्य का राजपुत्र था। इसी का ख्याल कर हस्तिनापुर शासन के 'कर्तव्यनिष्ठ' सेवक द्रोण ने एकलव्य को धनुर्विद्या हेतु अपना शिष्य करने इन्कार किया। यह आक्षेप गलत है कि एकलव्य 'निषाद' जाति का होने मात्र से द्रोण ने उसे अस्वीकार किया।

स्वाभिमानी ईमानदार द्रोण

द्रोणाचार्य की अस्वीकृति की पर्वाह न करते, एकलव्य ने उनकी पार्थिव प्रतिमा तयार कर, उसीकी गुरु रूप में पूजा करते हुए जंगल में स्वयंही धनुर्विद्या का निष्ठापूर्वक अध्ययन आरंभ किया। उसने स्वयं को द्रोण से इस प्रकार संबद्ध क्यों किया ? उघड है कि, उन दिनों में स्वयं को द्रोणशिष्य कहने से समाज में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त होती होगी।

एक दिन, एकलव्य ने इस प्रकार अर्जित अद्भुत धनुर्विद्या कौशल्य जगंल में देखकर विस्मयचकित हुए पांडवों को अपना परिचय देते हुए एकलव्य ने कहा —

निषादाधिपतेर्वीरा हिरण्यधनुषः सुतम्
द्रोणशिष्यं च मां वित्त धनुर्वेदकृतश्रमम् ॥ आदिपर्व १३१-४५

''वीरों, जान लीजिये कि मैं निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एवं द्रोण का शिष्य होकर परिश्रमपूर्वक यह धनुर्विद्या मैने प्राप्त की है''। यह सुनकर स्वाभाविकही पांडवों को आश्चर्य हुवा। उन्होंने एकलव्य को द्रोणशिष्यों में कभी नही देखा था। अर्जुन ने द्रोण के पास जाकर कहा —

तदाहं परिरभ्यैकः प्रीतिपूर्वमिदं वचः
भवतोक्तो न मे शिष्यस्त्वद्विशिष्टो भविष्यति ॥ १३१-४८
अथ कस्मान्मद्विशिष्टो लोकादपि च वीर्यवान्
अन्यो ऽस्ति भवतः शिष्यो निषादाधिपतेः सुतः ॥ ४९

"उस दिन आपने मुझे हृदय से लगाकर प्रीतिपूर्वक निश्चित आश्वासन दिया था कि, आपका अन्य कोई भी शिष्य मुझ से बढकर नही होगा ; फिर मुझ से बढकर तथा (मुझे ज्ञात) सब लोगों से श्रेष्ठ (धनुर्धारी) पराक्रमी यह निषाद राजपुत्र आपका एक अन्य शिष्य कैसा है ?" क्या अर्जुन को उक्त आश्वासन देने बाद , द्रोणाचार्य गुप्त रीतीसे जंगल मे उस निषाद राजपुत्र को अर्जुन से भी श्रेष्ठ धनुर्विद्या सिखा रहे थे ? द्रोण ने अर्जुन के आक्षेप पर विचार किया, और अर्जुन को साथ लेकर वे सीधे एकलव्य के पास पहुंचे।

द्रोण स्वाभिमानी एवं अपनी ईमानदारी के प्रति निष्ठावान थे। जैसा कि हमने प्रकरण ७ में देखा है, कुरुक्षेत्र पर जयद्रथवध के बाद चले रात्रि युद्ध में कौरव सेनापति द्रोण ने शत्रुपक्षीय अर्जुन के उचित प्रस्ताव पर चन्द्रोदय तक कुछ युद्धविराम मान्य करने पर, दुर्योधन ने आपत्ति उठाकर द्रोण की निष्ठा पर भी संशय व्यक्त किया, तब अति व्यथित होकर द्रोणाचार्य ने चन्द्रोदय पर फिर चालू हुई लड़ाई बिना किसी विश्राम के चालू रखी, और अंत में उसमें रणभूमि पर अपने प्राण त्याग दिये। ऐसे थे वे द्रोणाचार्य, जो इस समय अर्जुन के समक्ष एकलव्य के शिष्यत्व के संबंध में अपनी सत्यता सिद्ध करना चाहते थे।

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को दिये आश्वासन के दो भाग थे। एक उनके शिष्यवर्ग तक सीमित था, तथा दूसरा उससे व्यापक था। व्यापक आश्वासन स्वयं द्रोण के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुवा है —

प्रयतिष्ये तथा कर्तुं यथा नान्यो धनुर्धर :
त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १३१-२०

"अर्जुन मैं तुझे सत्य कहता हूँ कि , मैं ऐसा प्रयास करूंगा कि संसार में तेरे समान अन्य कोई धनुर्धर नही होगा" । यहां 'प्रयतिष्ये' का आशय द्रोण के अध्यापन परिश्रम से संबंधित है। स्पष्ट है कि द्रोण ऐसा आश्वासन नही दे सकते थे कि, समग्र संसार में अर्जुन के समान कोई अन्य योद्धा होगाही नही। अतः तुझे अध्यापन करने में मैं यथासंभव पूरा प्रयास करूंगा इतनाहि एक श्रेष्ठ गुरु ने अपने शिष्योत्तम को दिया वह आश्वासन था।

अर्जुन को द्रोण ने अपने शिष्योंतक सीमित दिया आश्वासन स्वयं अर्जुन ने ऊपर उद्धृत श्लोक १३१ - ४८ में व्यक्त किया है। द्रोण ने कहा था कि उनका अन्य कोई शिष्य अर्जुन से श्रेष्ठ नही होगा। इसमें आशय यह नही कि वे अन्य विद्यार्थियों को पढाने में कुछ कोताही करते थे। द्रोण सभी को समान विद्यादान करते थे —

तुल्येष्वस्त्रोपदेशेषु सौष्ठवेन च वीर्यवान्
एकः सर्वकुमाराणां बभूवातिरथोऽर्जुनः ॥ १३१-६५

"द्रोण सभीको शस्त्रविद्या समान पढाते थे, फिर भी अर्जुन अपनी प्रतिभा से सब कुमारों मे अतिरथी हुवा"।

एकलव्य को आखरी मौका

द्रोण एकलव्य के पास पहुचने पर उसने नतमस्तक होकर उनका स्वागत किया। एकलव्य के विषय में अर्जुन ने उठाई आपत्ति द्रोण ने शिष्यों के बारे में दिये आश्वासन पर आधारित थी। एकलव्य ने स्वयं को द्रोणशिष्य बताया इससे अर्जुन ने द्रोण के पास तक्रार की थी। अतः द्रोण ने एकलव्य से कहा —

यदि शिष्योऽसि मे वीर वेतनं दीयतां मम ॥ १३१-३४

"वीर, यदि तू मेरा शिष्य हो तो मेरी गुरुदक्षिणा दे" । इसमें 'यदि' शब्द महत्त्व का है। उस शब्द के द्वारा उन्होंने अर्जुन के सामने एकलव्य को जताया कि वस्तुतः मैने तुझे शिष्य नही किया, अतः तू मेरी शिष्य होनेका दुराग्रह छोड दे, फिर (भलेही तू एक श्रेष्ठ धनुर्धर हो, अर्जुन ने उठायी) बात समाप्त हो जायगी ; किन्तु यदि तू अपना वह आग्रह कायम रखना चाहता हो तो मेरी गुरुदक्षिणा दे।

द्रोणाचार्य ने 'यदि' का प्रयोग कर क्यों न हो गुरुदक्षिणा मांगी, तब एकलव्य ने सोचा होगा कि, वे विपुल द्रव्य आदि लेकर मुझे शिष्य स्वीकार कर लेंगे। किन्तु द्रोण धन के लोभी नही थे ; वे तो अर्जुन के समक्ष अपना वचन सत्य करना चाहते थे। अतः एकलव्य ने 'आप चाहेंगे वह अर्पण करने मैं तयार हूँ' ऐसा कहनेपर (१३१ -५६), द्रोण ने उसका दाहिना अंगूठा मांगा। स्वयं महाभारतकार इस मांग को 'दारुण' कहते हैं (१३१ - ५७)। और इसीलिये उन्होंने उसकी पार्श्वभूमि सूक्ष्मता से दिग्दर्शित की है।

एकलव्य ने अपने अथक परिश्रम से धनुर्विद्या में जो श्रेष्ठता प्राप्त की थी , वह उसे 'वीर' संबोधित कर मान्य करते हुए भी, उस श्रेष्ठता के साथ एकलव्य को अपना शिष्य स्वीकार करना द्रोण ने अर्जुन को (शिष्यों के संबंध में दिये) आश्वासन का भंग होता। अतः एकलव्य को उसकी इच्छानुसार शिष्यत्व मान्य करते समय उसकी धनुर्विद्या कुछ कम स्तर पर लाना उनके लिये आवश्यक हुवा।

प्रतिष्ठापूर्ण द्रोणशिष्यत्व प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा रखनेवाले एकलव्य ने अपना अंगूठा काटकर द्रोण के सामने रख दिया ! किन्तु तत्पश्चात भी वह अपनी श्रेष्ठ धनुर्विद्या कायम रख सका, यद्यपि पहिलेसे कुछ कम स्तर पर —

ततः शरं तु नैषादिरङ्गुलीभिर्व्यकर्षत

न तथा च स शीघ्रोऽभूद् यथा पूर्वं नराधिप ॥ १३१-५९

"राजन् (जनमेजय), तबसे एकलव्य अपनी अंगुलियों से बाण चलाने लगा, किन्तु उसमें पहिले जितनी शीघ्रता नही रही" । वह अब अर्जुन से 'अधिक श्रेष्ठ' नही रहा ; समान रहा होगा। उसकी तीव्र आकांक्षानुसार उसे अधिकृत द्रोणशिष्यत्व प्राप्त हो गया ; और उधर द्रोण ने अर्जुन को दिया (शिष्यों संबंधी) वचन कायम रहा।

ततोऽर्जुनः प्रीतमना बभूव विगतज्वरः

द्रोणश्च सत्यवागासीन्नान्यो ऽ भिभवितार्जुनम् ॥ १३१-६०

"इससे अर्जुन की (द्रोण ने दिये आश्वासन के विषय में) आशंका दूर होकर उसे प्रसन्नता हुई ; तथा अर्जुन से श्रेष्ठ अन्य कोई (द्रोणशिष्य) नही होगा यह द्रोण का वचन सत्य रहा" । यहां 'नान्यो' (न अन्यः) का संबंध द्रोण के शिष्यों से है। शिष्यत्व को ही लेकर अर्जुन एकलव्य के बारे में द्रोण के पास शिकायत लेकर पहुचा था। एकलव्य की भी विशेष आकांक्षा द्रोणशिष्यत्व प्राप्त करनेके लिये थी।

महाभारत के एक पाठ में दिये निम्न श्लोक के अनुसार इसके बाद स्वयं द्रोण ने एकलव्य को शेष अगुंलियों से बाण चलाना सिखाया —

स सत्यसंधं नैषादिं दृष्ट्वा प्रीतो ऽब्रवीदिदम्

एवं कर्तव्यमिति वा एकलव्यमभाषत ॥

"अचूक बाण संधान करनेवाले एकलव्य की ओर देखकर वे (द्रोण) प्रसन्न चित्त से यह बोले, (धनुष्य चलाना) इस अन्य प्रकार से भी (शेष अंगूलियों से) किया जा सकता है ; ऐसा उन्होंने एकलव्य से बताया" । उस समय इसका भी महत्त्व रहाही होगा। लड़ाई में अंगूठा आहत होने पर भी धनुष्य चलाते रहने की कला योद्धाओं के लिये आवश्यक थी। भील (निषाद) लोगों में तो बिना अंगूठा लगाते बाण छोडने की प्रथा दीर्घकाल से प्रचलित बताई जाती है। एक लेखक के अनुसार "All the other Bhil warriors who trained in archery followed the prince's example and drew the bow with their middle finger, and the custom prevailed ever afterwards amongst the Tribe" ('Indian myth and Legend', by D.A. Mackenzie , p. 183)|

द्रोणाचार्य और अर्जुन

केवल अर्जुन को लाभ पहुचाने एकलव्य को घोर नुकसान पहुचाने का द्रोण पर आरोप करनेवाले प्रायः यह भूलते हैं कि, उसी अर्जुन से द्रोणाचार्य ने बाद में घोर लड़ाई की,और वह भी दो बार — गोग्रहण युद्ध में और फिर कुरुक्षेत्र युद्ध में। हस्तिनापुर शासन का एक निष्ठावान सेवक के नाते द्रोण ने कर्तव्य बुद्धि से उसी अर्जुन से युद्ध किया। एकलव्य के प्रति भी उनका सारा वर्ताव कर्तव्यभावना एवं सत्यप्रियता से प्रेरित था। इस दृष्टि से महाभारत के द्रोण की तुलना Victor Hugo के उपन्यास 'Les Miserables' के पोलिस अधिकारी जॅव्हर्ट से, या सॉमरसेट मॉम के उपन्यास 'An Hour before the Dawn' के सैनिक अधिकारी रोजर से करना उद्‍बोधक होगा।

यहां एक घटना पर विचार इष्ट होगा, जिससे लेकर भी द्रोण पर आरोप किया जाता है। अध्यापन प्रारंभ करने पूर्व द्रोण शिष्यों को नदी से पानी लाने कहते थे। एक समय उन्होंने पुत्र अश्वत्थामा को (बडे मुंह का) कुंभ, किन्तु अन्य शिष्यों को (छोटे मुंह वाले) कमंडलु देना प्रारंभ किया। परिणामस्वरूप अश्वत्थामा पानी लेकर द्रोण के पास अन्य शिष्यों से शीघ्र पहुचने लगा ; और उतने समय में द्रोण अकेले अश्वत्थामा को कुछ विशेष सिखा देते थे। किन्तु शीघ्रही अर्जुन के ध्यान में यह बात आकर, वह अपना कमंडलु द्रोण ने ही सिखाए वरुणास्त्र का प्रयोग कर शीघ्र भरने लगा ; और इस प्रकार अश्वत्थामा के साथ ही द्रोणाचार्य के पास पहुचने लगा (आदिपर्व १३१ - १६ से १९)।

इसपर आक्षेप लिया जाता है कि, द्रोण अपने पुत्र को पक्षपात पूर्वक कुछ अधिक विद्या प्रदान करने पात्रों में वह भेद करते थे। किन्तु अश्वत्थामा उन्हींका पुत्र था, ओर वे उसे कोई भी विद्या किसी अन्य समय भी दे सकते थे। उसके लिये ऐसी किसी चालाखी की क्या आवश्यकता थी ? किन्तु वस्तुतः बात यह थी कि, बर्तनों के भेद द्वारा द्रोण अपने शिष्यों की परीक्षा लेना चाहते थे। और वरुणास्त्र का प्रयोग कर अर्जुन द्रोण के पास शीघ्र पहुचने लगा, तो द्रोण की दृष्टि मे अर्जुन कसौटी पर खरा उतरा। अन्य शिष्य गुरु के पास देरसे पहुचने की पर्वाह न करते अश्वत्थामा को दिये कुंभ से अपना कमंडलु हलका है इसी में खुश रहे !

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न

द्रोण ने अपने द्वारा शिक्षित युवा पांडवों द्वारा उद्दंड राजा द्रुपद को बंदी बनाकर उदारता से उसे मुक्त कर दिया। तब इस अपमान का बदला लेने द्रुपद ने एक यज्ञ कर द्रोण

का वध करने पुत्र धृष्टद्युम्न प्राप्त किया। धृष्टद्युम्न का जन्म ही द्रोण के वधार्थ था ; और स्वयं द्रोण को भी यह ज्ञात था। फिर भी राजा द्रुपद ने धृष्टद्युम्न को धनुर्विद्या हेतु आचार्य द्रोण के पास ही भेजा। द्रोण ने द्रुपद को मुक्त किया था तब द्रुपदने (असहाय होकर) द्रोण से मित्रता मान्य की थी, यद्यपि भीतर से वह द्रोण की शत्रुताही करता था। किन्तु उस मित्रता का अपनी ओर से पालन करने द्रोण ने धृष्टद्युम्न को धनुर्विद्या प्रदान करना मान्य किया।

धृष्टद्युम्नं तु पांचाल्यमानीय स्वं निवेशनम्
उपाकरोदस्त्रहेतोर्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ आदिपर्व, १६६-५५
अमोक्षणीयं दैवं हि भावि मत्वा महामतिः
तथा तत् कृतवान् द्रोण आत्मकीर्त्यनुरक्षणात् ॥ ५६

"पांचाल राजपुत्र धृष्टद्युम्न को प्रतापी द्रोणाचार्य अपने घर ले आये और उसे अस्त्रविद्या सिखाकर उपकृत किया। महाबुद्धिशाली द्रोण मानते थे कि, दैव में लिखी भावी घटना अटल है ; अतः उन्होंने (मित्र के रूप में) अपनी कीर्ति कायम रखने ऐसा किया"। आखिर धृष्टद्युम्न ने कुरुक्षेत्र पर निःशस्त्र द्रोण का क्रूर वध कर ही डाला। क्या जो अपना वध करनेवाला है उसी को उदारतापूर्वक शस्त्रविद्या सीखाने का कोई अन्य उदाहरण कहीं है ? और इसी अभूतपूर्व गुरु द्रोण पर अपने शिष्यों में पक्षपात करने का क्षुद्र आरोप किया जाता है।

एकलव्य का शेष जीवन

अंगूठा काटने के बाद भी महाभारत में एकलव्य के उल्लेख आये है। एकलव्य इन्द्रप्रस्थ में पांडवों के राजसूय यज्ञ में सन्मान्य आमंत्रित के रूप में उपस्थित था। भीष्म ने अग्रपूजा के लिये श्रीकृष्ण का नाम प्रस्तावित करने पर, शिशुपाल ने आक्षेप लेकर अग्रपूजा के लिये (उसकी राय में) अधिक पात्र उपस्थितों के जो नाम लिये, उनमें उसने "एकलव्यं च विक्रान्तं" (पराक्रमी एकलव्य) का भी उल्लेख किया (सभापर्व ४४ - २९)। अंगूठा काटने के बाद भी एकलव्य एक महान योद्धा माना जाता था।

इसके अलावा, कुरुक्षेत्र युद्ध में घटोत्कच वध के समय अर्जुन से बोलते हुए श्रीकृष्ण ने कुछ बलवान दुष्टों के नाम लिये, उनमें भी एकलव्य का उल्लेख है।

जरासन्धश्चेदिराजो महात्मा
महाबाहुश्चैकलव्यो निषादः ॥ द्रोणपर्व १८० -३२

एकैकशो निहताः सर्व एते
योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव । ३३
जरासन्धश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः
यदि स्युर्न हताः पूर्वमिदानीं स्युर्भयंकराः ॥ १८१ -२
ते हि वीरा महेश्वासाः कृतास्त्रा दृढयोधिनः
धार्तराष्ट्रीं चमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥ ४

"जरासंध , महामनस्वी शिशुपाल तथा महाबाहु निषाद एकलव्य ये सब मेरे द्वाराही तुम्हारे हित में युक्तिप्रयोगों से एक एक कर मारे गये हैं — ३२,३३. जरासंध, चेदिराज शिशुपाल , तथा महाबलवान निषादराजपुत्र (एकलव्य) यदि अभीतक न मारे जाते , तो इस समय भयंकर सिद्ध होते — २. वे महाधनुर्धर, अस्त्रों के ज्ञाता, तथा दृढ योद्धा वीर थे, और कौरवों की सारी सेना की देवों के समान सुरक्षा करते — ४"। यह बताता है कि अंगूठा काटने के बाद भी एकलव्य एक महान योद्धा था।

श्लोक १८० - ३२,३३ में शिशुपाल एवं जरासंध के साथ एकलव्य का भी श्रीकृष्ण ने उल्लेख किया है। वहां श्रीकृष्ण "मयैव निहताः" (मेरे द्वारा ही मार डाले गये) ऐसा कहते है ; किन्तु उसका आशय यह नही कि उन सबको स्वयं श्रीकृष्ण ने ही प्रत्यक्ष मारा था। जरासंध का वध श्रीकृष्ण की प्रेरणा से किन्तु भीमने किया था। येही "मयैव निहताः" शब्द गीता में (११- ३३) श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र पर लड़ने वालों के लिये भी कहे होकर, उनका प्रत्यक्ष वध स्वयं श्रीकृष्ण ने किया ऐसा आशय नही है। एकलव्य का वध अंत में कब और किस परिस्थिति में हुआ इसका पर्याप्त स्पष्टीकरण महाभारत में नही है ; किसी अन्य पौराणिक रचना में होगा।

एक श्लोक का भिन्न अर्थ

द्रोणपर्व के अध्याय १८१ में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है —

त्वद्धितार्थे च नैषादिरङ्गुष्ठेन वियोजितः
द्रोणेनाचार्यकं कृत्वा छद्मना सत्यविक्रमः ॥ १८१ -१७

इसमें 'आचार्यकं' का अर्थ 'आचार्यत्व', आचार्य ने शिष्य के प्रति किया वर्ताव' ऐसा कर , श्लोक का प्रायः यह आशय लिया जाता है कि, "अर्जुन, तेरे लाभार्थ द्रोण ने 'आचार्यकं' (आचार्य रूप में गुरुदक्षिणा की मांग) का कपटी बहाना कर सत्यपराक्रमी

एकलव्य का अंगूठा कटवाया''। किन्तु 'आचार्यकं' का 'शिष्य का गुरु के प्रति वर्ताव' 'शिष्यद्वारा गुरु का पूजन या आदरसत्कार' ऐसा भी अर्थ होता है *। द्रोणपर्व में ही एक स्थान पर 'आचार्यकं' शब्द इस अर्थ में आया है। कुरुक्षेत्र युद्ध में एक समय कृपाचार्य एवं अश्वत्थामा अर्जुन पर भारी बाण वर्षा करने लगे, तब —

सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च
चकाराचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ द्रोणपर्व १४७ - ६
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रोणैः शारद्वतस्य च
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरवासृजत् ॥ ७

''वह (अर्जुन) युद्ध में गुरु (कृपाचार्य) एवं गुरुपुत्र (अश्वत्थामा) का वध करना न चाहता हुआ, उसने उस समय 'आचार्यकं' यानी गुरु के प्रति आदर व्यक्त किया — ६. अतः (मात्र स्वयं को बचाने) उसने अश्वत्थामा एवं कृपाचार्य के अस्त्रों का अपने अस्त्रों से प्रतिकार कर, उनके प्राणों को खतरा न पहुचे इस प्रकार मन्दगति से उनपर बाण डाले — ७.'' यहां 'आचार्यकं' का आशय शिष्य का गुरु के प्रति पूज्यभाव ऐसा है।

उद्योगपर्व में भी यह शब्द आया है। युद्धारंभ के पूर्व भीष्म दुर्योधन को उसके पक्ष के रथीमहारथी के नाम बता रहे थे, तब द्रोण का उल्लेख कर वे बोले —

नैव जातु महेश्वासः पार्थमक्लिष्टकारिणम्
हन्यादाचार्यकं दीप्तं संस्मृत्य गुणनिर्जितम् ॥ उद्योग पर्व १९७ - १६

यहां 'आचार्यकं' का अर्थ 'शिष्य द्वारा गुरु का पूजन' ऐसा होकर इस श्लोक का यह सुसंगत अर्थ है, ''अर्जुन ने अपने श्रेष्ठ युद्धकौशल्य द्वारा (राजा द्रुपद को) जीतकर (तथा द्रोण के सामने खडा कर) जो 'दीप्तं' (उज्वल) 'आचार्यकं' (गुरुपूजन) किया था, उसका स्मरण कर महाधनुर्धारी द्रोण अनायासही महान कर्म करने वाले अर्जुन का कदापि वध नही करेंगे''।

इस प्रकार 'आचार्यकं' का आशय लेकर उपरोक्त श्लोक १८१ - १७ का यह अर्थ होता है, 'सत्यपराक्रमी (श्रेष्ठ धनुर्धारी) निषाद राजपुत्र एकलव्य ने (द्रोणाचार्य का)

---

* देखिये ज.वि. ओक कृत 'गीर्वाण लघु कोश' (संस्कृत - मराठी), तथा आपटे कृत 'संस्कृत - इंग्रजी कोश'।

चोरीछिपी से (उनकी अनुमति के विरुद्ध) (उनकी पार्थिव प्रतिमा का) गुरुपूजनादि कर स्वयं को द्रोणशिष्य कहने पर, द्रोण ने तेरे हितार्थ (उनके शिष्यों में तुझसे बढकर कोई नही होगा यह कथन सत्य करने हेतु) उसको अंगुठारहित किया (और उसका धनुर्धारित्व तुझ से बढकर न हो इस स्तर पर लाया)''

एकलव्य की इस कथा में आर्य -अनार्य विरोध देखना भी निराधार है। महाभारत की रचना ऐसे भेद से पूर्णतया अलग है। उसमें वर्णित प्रमुख संघर्ष एकही कुरुकुल की दो शाखाओं में हुवा था। ऊपर कहे अनुसार द्रोण ने एकलव्य को अपना शिष्य करने इन्कार का कारण एकलव्य 'निषाद' था यह न होकर, वह एक अन्य राज्य का राजपुत्र था यह था। उधर राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा हेतु शिशुपाल ने प्रमुख व्यक्तियों के नाम प्रस्तावित करने में राजा विराट, द्रुपद, मगधराज सहदेव, भगदत्त आदि के साथ सन्मानपूर्वक निषादराज एकलव्य का भी समावेश किया यह ऊपर उद्धृत किया है। ❑

प्रकरण २१

कर्ण एवं उसका जन्म रहस्य

महाभारत के पात्रों में कर्ण का एक विशिष्ट स्थान है। वस्तुतः वह कुंती का कौमार्यावस्था में सूर्य से हुआ पुत्र था। पिता का रोष एवं जननिंदा के भय से कुंती नें कर्ण का जन्म होते ही उसे दासी द्वारा एक पेटी में ठीक रखकर नदी में प्रवाहित कर दिया। संयोगवश वह पेटी हस्तिनापुर के अधिरथ सूत के हाथ लगी ; और उसने तथा उसकी पत्नी राधा ने उस नवजात शिशु को अपनाहि पुत्र मानकर बडे प्रेम से उसका पालनपोषण किया। कर्णका कुंतीपुत्रत्व जनता में अज्ञात रहकर, वह सूतपुत्र तथा राधापुत्र (राधेय) इस रूप में ही जाना जाता रहा। कुरुक्षेत्र पर युद्ध में उसकी मृत्यु होनेबाद पाण्डव दोनो पक्षों के मृतात्माओं के तिलांजलि दे रहे थे, तब स्वयं कुंती ने कर्ण का जन्मरहस्य पाण्डवों को बताया , और तब से आम जनता में भी वह जाहीर हो गया।

इस विषय में एक विशेष प्रश्न यह है कि, स्वयं कर्ण को उसका जन्मरहस्य सर्वप्रथम कब तथा किससे ज्ञात हुवा ?

क्या स्वयं श्रीकृष्ण नें कर्ण से वह रहस्य प्रथम बताया ?

बहुप्रचलित धारणा यह है कि , सर्वप्रथम श्रीकृष्ण ने कर्ण को वह रहस्य बताया। हस्तिनापुर में शांतिवार्ता भंग होने पर श्रीकृष्ण वहां से तुरन्त वापिस लौटते समय, कर्ण को अपने रथ में नगर की सीमा तक ले आये ; और कर्ण को कौरव पक्ष छोड पांडवों की तरफ आनेके लिये समझाने में, तू वस्तुतः कुंती का कन्यावस्था में जन्मा पुत्र है यह बताते हुए कहा —

त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनान्
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिविष्ठितः ॥ उद्योगपर्व १४० - ७
कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते
बोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदोजनाः ॥ ८
सोऽ सि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः
निग्रहाद् धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि ॥ ९

" कर्ण, तु स्वयं सतातन वैदिक नियम जानता है ; धर्मशास्त्र के सूक्ष्म विधानों का तू अच्छा ज्ञाता है — ७. कन्या के कानीन पुत्र (जिसका जन्म कन्या के विवाहपूर्व होता है) का, एवं सहोढ पुत्र (जिसका गर्भसंभव कन्या के विवाह पूर्व किन्तु जन्म विवाहोत्तर हो) का पिता उस कन्या से विवाह करने वाले को माना जावे ऐसा धर्मशास्त्रज्ञों ने कहा है — ८. कर्ण, तेराभी जन्म इसी प्रकार होनेसे तू पांडू का धर्मपुत्र है ; मेरे साथ चल, धर्मशास्त्रों के अनुसार तू (पांडवों के राज्य का) राजा होगा — ९. "

किन्तु श्रीकृष्ण से अपने जन्मरहस्य का यह उल्लेख सुनकर कर्ण ने उत्तर दिया —

सर्वं चैवाभिजानामि पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः
निश्चयाद् धर्मशास्त्राणां यथा त्वं कृष्ण मन्यसे ॥ १४१-२
कन्यागर्भं समाधत्त भास्करान्मां जनार्दन
आदित्यवचनाच्चैव जातं मां सा व्यसर्जयत् ॥३
सो ऽ स्मि कृष्ण तथाजातः पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः
कुन्त्या त्वहमपाकीर्णो यथा न कुशलं तथा ॥४
सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यानयद् गृहात्
राधायाश्चैव मां प्रादात् सौहार्दान्मधुसूदन ॥५

"कृष्ण, तेरे कथनानुसार धर्मशास्त्रों की दृष्टि से मैं पांडू का धर्मपुत्र हूँ यह सब मुझे पूरी तरह ज्ञात है — २. जर्नादन, मेरी माता ने कुमारी अवस्था में सूर्य के कहनेपर * उसके साथ संगम कर मुझे गर्भ में धारण किया , तथा मेरा जन्म होते ही उसने मुझे त्याग दिया — ३. कृष्ण, इस प्रकार मेरा जन्म हुवा होकर मैं धर्मशास्त्रानुसार पांडू का पुत्र हूँ ; किन्तु कुन्ती ने मुझे इस प्रकार त्याग दिया कि मेरा कुशल जीवित रहना भी मुश्किल था — ४. मधुसूदन , तदनंतर अधिरथ सूत ने मुझे देखकर अपने घर लाया, और प्रेम से मुझे राधा के

* गीता प्रेस नें यहां 'आदित्य वचनात्' का संबंध 'विसर्जयत्' से लगाकर अर्थ दिया है , "और मेरा जन्म हो जानेपर उन सूर्यदेव की आज्ञा से ही मुझे जल में विसर्जित कर दिया था "। किन्तु नवजात शिशु का त्याग करने सूर्य ने कहा था ऐसा महाभारत में नही है। न हि उस कारण कर्ण ने कभी सूर्य को दोष दिया है। इसके विपरीत 'आदित्यवचनात्' का संबंध सूर्य समागम से लगाने की पुष्टि यह है कि, कुती काफी देर तक उस लिये तैयार नही थी, किन्तु सूर्य ने बारबार आग्रह करने पर वह राजी हुई (वनपर्व अध्याय ३०६,३०७)।

हाथ में सौंप दिया —— ५.''। कर्ण ने आगे और कहा, ''उस क्षण मेरे प्रति प्रेमभाव से राधा के स्तनों से दुग्धस्त्राव होने लगा, और बाद में उसीने मेरा मलमूत्र उठाकर मुझे छोटे से बडा किया ; अत: धर्मशास्त्रों का ज्ञाता होते हुए मैं अब (उसकी वृद्धावस्था में उसको त्यागकर) उसके मुंह का स्नेह एवं सहारे का ग्रास कैसा छीनूं ?'' (१४१ - ६,७)।

कर्ण के इस उत्तर से स्पष्ट है कि, उसे अपना जन्मरहस्य श्रीकृष्ण ने बताने के पूर्वही ज्ञात हो गया था। तथा विशेष यह है कि,कर्ण को वह रहस्य ज्ञात हो गया है यह श्रीकृष्ण भी जानते थे ; इसी लिये कृष्ण ने कर्ण को तू कुंती का विवाहपूर्व पुत्र है यह कहते हुए भी उसके जन्मदाता पिता सूर्य का उल्लेख नही किया; स्वयं कर्ण ने ही वह कह दिया।

फिर, कर्ण को उसका जन्मरहस्य सर्वप्रथम किससे ज्ञात हुवा ?

क्या कुंती ने कर्ण से वह प्रथम बताया ?

पांडव पक्ष में आना कर्ण ने अमान्य करने बाद श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर छोड दिया। उधर कर्ण वापिस नगर लौटा। यह दोपहर प्रारंभ का समय था। कर्ण अपने नियमानुसार माध्यान्ह सूर्योपासना हेतु गंगातट पर गया। इस समय वह किसी की भी याचना (बने वहां तक) अमान्य नही करता था। इसके थोडेही समय पूर्व श्रीकृष्ण द्वारा कुंती को शांतिवार्ता भंग होकर कौरवपांडवों में अब युद्ध अनिवार्य होनेकी जानकारी मिल चुकी थी। विदुर ने भी आकर बडे दुख के साथ कुंती को वह कहा था (उद्योगपर्व १४४ - १ से ९)। अत: कमसे कम उस अंतिम घडी में कर्ण का अपनेही सहोदर भाईयों से संग्राम टालने हेतु, माता कुन्ती भी सीधी कर्ण के माध्यान्ह उपासना स्थल पर पहुची। जाते जाते वह सोचती रही ——

आशंसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽ हं पाण्डवान् प्रति ॥१४४ - १८
प्रसादयितुमासाद्य दर्शयन्ती यथातथम् । १९

''आज मैं कर्ण से (उसके जन्मसंबंधी) सब वास्तविक स्थिति बताकर उसका मन पाण्डवों की ओर प्रसन्न करने हेतु उसे कहूंगी''। इससे स्पष्ट है कि कुन्ती नही जानती थी कि, कर्ण को उसका जन्मरहस्य तबतक ज्ञात हो चुका था। उपासना समाप्त होनेपर कर्ण ने कुंती को देखकर कहा ——

राधेयो ऽहमाधिरथि: कर्णस्त्वामभिवादये
प्राप्ता किमर्थं भवती ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १४५- १

''देवी, मैं राधा एवं अधिरथ का पुत्र आपको नमस्कार करता हूँ ; किस हेतु आपका आगमन हुवा है ? बताइये,मैं आपकी क्या सेवा करूं ?''

और इसपर ,वर्षों से अपने मानस में छिपा रखा रहस्य अब सारी शरम दूर कर कर्ण के पास व्यक्त करने हेतु , वह अभागी जन्मदात्री कहने लगी ——

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथ: पिता
नासि सूतकुले जात : कर्ण तद् विद्धि मे वच: ॥ १४५ -२
कानीनस्त्वं मया जात: पूर्वज: कुक्षिणा धृत:
कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ॥ ३
प्रकाशकर्मा तपतो योऽयं देवो विरोचन:
अजीजनत् त्वां मय्येष कर्ण शस्त्रभृतां वरम् ॥ ४

''कर्ण ,तू राधापुत्र न होकर कौन्तेय अर्थात मेरा पुत्र है ; तेरा पिता भी अधिरथ न होकर तेरा जन्म सूतकुल में नही हुवा है ; मेरा यह कहना ठीक जान ले —— २. बेटा, कुन्तिराज के यहां मैं रहती थी तब कन्यावस्था में मैंने गर्भ धारण किया; तू मेरा प्रथम पुत्र होकर पार्थ (पृथा का पुत्र) है —— ३. कर्ण, प्रकाश एवं ऊष्णता प्रदान करनेवाले इस भगवान सूर्यदेव ने शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ तुझे मेरे द्वारा जन्म दिया है —— ४''। इसी समय आकाशवाणी द्वारा सूर्य ने भी कुंती के इस कथन की पुष्टि की (१४६ - १, २,३)।

भारी उत्कंठा से कुंती कर्ण की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगी। उसने सोचा होगा कि यह रहस्य सुनतेहि कर्ण अतीव ममता से मुझे माता पुकारकर मेरे पास आयगा। किन्तु कर्ण को उसका यह जन्मरहस्य अब नया नही था। इसके पूर्व श्रीकृष्ण ने वह कर्ण को बताया था, और उससे भी पूर्व कर्ण को वह ज्ञात हो चुका था। अत: अब कुन्ती से वह सुनकर कर्ण जराभी स्तंभित या विचलित नही हुआ।

कर्ण को वह रहस्य सर्वप्रथम किससे ज्ञात हुवा यह हम आगे देखने वाले हैं। किन्तु जब कभी भी वह उसे सर्वप्रथम ज्ञात हुआ होगा, उसका ध्यान स्वाभाविकही विचारी कुन्तीपर केन्द्रित हुआ होगा —— और वह प्रेम के बजाया रोष से ! 'इतने सालों से मेरे आसपास सतत रहनेवाली * कुंतीही आखिर मेरी जन्मदात्री है ! और फिरभी आजतक उसने कभी मुझे पहिचान नही दी। सूतपुत्र के रूप में ही मेरे संस्कार एवं विवाह हुए , मेरे

* पांडवों के वनवास - अज्ञातवास के काल में भी कुंती हस्तिनापुर में ही (धृतराष्ट्र - गांधारी के आश्रय से) रही थी।

पुत्रों की भी वैसीही अवस्था हुई , और यह कुन्ती सब कुछ चुपचाप देखती हुई केवल अपने अन्य पुत्रों के सुखदु:ख की चिंता करती रही '।

इसी लिये,उस रोज तडपती धूप में माना कुंती ममता की भीख मांगने दाता कर्ण के सामने दीन मुद्रा से खडी हुई , तो कर्ण ने शुरूमें ही अपना सारा शेष बिनासंकोच उसे सुना दिया (अध्याय १४६) । नवजात अवस्था में अपना त्याग करनेपर उसने कुंती को सीधा दोष दिया। स्वयं कुंती ने उस घटना का उल्लेख न करने पर भी, कर्ण को वह सब अब तक ज्ञात हो जाने से स्वयं उसने उसका उल्लेख किया। अंत में उसने कहा कि, आजतक कौरवों के साथ रहनेबाद अब ऐन युद्ध के समय वह उन्हें नही छोडेगा। फिर भी माध्यान्ह सूर्योपासना के समय याचना करने आयी कुंती को बिलकुलही रिक्त हाथों वापिस न लौटाते, उसने कुंती को वचन दिया कि, लड़ाई में अर्जुन को छोड शेष चार पाण्डवों का वह वध नही करेगा।

क्या सूर्य ने वह कर्ण को बताया था ?

पांडवों के वनवास समाप्ति समय इन्द्र ने (अर्जुन के प्रेम से तथा पांड वों के हितार्थ) कर्ण को जन्म से प्राप्त दिव्य कवचकुंडल हरण करनेका सोचा। सूर्य को उसका पता लगकर, उसने पुत्रप्रेम से कर्ण के पास जाकर उसे सचेत किया कि, शीघ्रही इन्द्र ब्राह्मणरूप लेकर तेरे कवचकुण्डल मांगने आयगा जो तू मत देना। किन्तु कर्ण ने कहा कि, मैं मेरा दातृत्त्व नियम भंग नही करूंगा। इस पर सूर्य ने सुझाया कि, कमसे कम तू बदले में इन्द्र से एक अमोध 'शक्ति' (एक प्रकार का शस्त्र) मांग ले। इस संवाद में सूर्य ने कर्ण से कहा —

अहं तात सहस्रांशु : सौहृदात् त्वां निदर्शये
कुरूष्वेतद् वचो मे त्वमेतत् श्रेय: परं हि ते ॥ वनपर्व ३००-२२

''कर्ण ,मैं सहस्रांशु सूर्य प्रेमभाव से तुझे यह बता रहा हूँ ; तू मेरे कहेअनुसार कर, यह तेरे परम हित में होगा।'' इस अवसर पर सूर्य ने अपना पितृत्वसंबंध व्यक्त न करते कर्ण से इतनाहि कहा, 'मुझे मेरे भक्तों की रक्षा करना आवश्यक होनेसे (मैं तुझे यह बता रहा हूँ); महाबाहो कर्ण , यह मेरा भक्त है, मेरी एकनिष्ठ उपासना करता है, यह देख मेरे मन में भी तेरे प्रति ममत्व उत्पन्न हुवा है ; अत: मैने कहा वैसा कर'' ३०१ - ८। कर्ण दीर्घकाल से सूर्योपासक होने से सूर्यका यह स्पष्टीकरण उसे स्वाभाविक ही पर्याप्त प्रतीत हुवा। इससे स्पष्ट है कि इस समयतक कर्ण को अपना सूर्यपुत्रत्व एवं जन्मरहस्य ज्ञात नही हुवा था।

कर्ण को रहस्य कब ज्ञात हुआ ?

यहां इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि, इस रहस्य की जानकारी से कर्ण के पाण्डवों के साथ संबंध पर भारी प्रभाव पडनेवाला था। अबतक मेरा उनसे कोई संबंध नही इस भावना से वह उन्मुक्त ढंग से पांडवों के प्रति मत्सर एवं द्वेष व्यक्त करता रहा। किन्तु उस रहस्य से कुंती पुत्र उसके सहोदर भाई सिद्ध हो रहे थे ; तथा आज नही तो कल यह बात जनता के सामने प्रकट होगी इसकी कल्पना उसे अवश्य होगी। अत: यद्यपि पाण्डवों के प्रति उसका वैरभाव दृढ हो गया था , इस रहस्य की जानकारी के बाद कमसे कम समाज में उनके विषय में बोलने में कुछ संयम बरतनेकी इष्टता कर्ण समझ सकता था।

इस दृष्टि से कर्ण का आचरण देखने पर कर्ण को वह रहस्य कब मालुम हुआ होगा इसके कुछ संकेत मिलते हैं। अज्ञातवास समाप्ति बाद राजा द्रुपद का पुरोहित पाण्डवों की ओर से उनका राज्य वापिस मांगने हस्तिनापुर आया, तब स्वयं दुर्योधन कुछ बोलने के पूर्वहि कर्ण एकदम बोला , ''दुर्योधन की ओर से शकुनी ने पाण्डवों को द्यूत में हराया , और शर्त के अनुसार वे वनवास पर गये। अब शर्त पूरी न करतेही (तेरहवा वर्ष पूर्ण होने के पूर्व ही अज्ञातवास से प्रकट होकर) पाण्डव राज्य वापिस मांग रहे हैं यह उनकी मूर्खता है। किसी के भी डर से दुर्योधन वह राज्य वापिस नही करेगा। हां, न्याय से सारी पृथ्वी भी देगा। सच तो यह है कि, प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डव फिर वनवास करें, अन्यथा लड़ाई कर देखें'' (उद्योगपर्व अध्याय २१ श्लनोक ८ से १५)। इन उद्गारों में हमे वही पुराना कर्ण दीखता है।

कुछ और दिन बाद धृतराष्ट्र के दूत के रूप में संजय पांडवों के पास गया। वह असफल वापिस आनेपर, कौरव सभा में हुए विचार विमर्श में भी कर्ण की पांडवों के प्रति वही पुरानी वृत्ति झलकती है (उद्योगपर्व , अध्याय ४८श्लोक २९ से ३२)। कर्ण ने यहां तक कहा कि, ' मैं पलभर में पांचालादि वीरों को तथा कुंती पुत्रों को उनके पुत्रपौत्रादि सहित मार डालूंगा' (६२ - ५)।

इसके कुछ रोज बाद श्रीकृष्ण शांतिवार्ता हेतु हस्तिनापुर आये। शांतिवार्ता भंग होनेबाद उसी रोज कर्ण के श्रीकृष्ण से एवं कुंती से ऊपर उद्धृत संवाद हुए। किन्तु उसके पूर्व उसे वह जन्मरहस्य ज्ञात हो गया था। अत: निष्कर्ष यह कि , वह रहस्य कर्ण को हस्तिनापुर शांतिवार्ता के कुछही समय पूर्व मालुम हुआ होगा। किन्तु यह और निश्चित करने पूर्व एक अन्य प्रश्न पर विचार आवश्यक है।

वह रहस्य किसकिस को ज्ञात था ?

स्वयं कुंती को वह रहस्य ज्ञात था यह तो कहनाही क्या ? अधिरथ सूत ने पालापोसा बालक वसुशेण यही सूर्य से मुझे हुआ पुत्र है इसकी जानकारी कुंती को गुप्तचरों द्वारा शीघ्रही हो गई थी (वनपर्व, ३०९ - १५) ।

सूर्य भी वह रहस्य जानता था । इन्द्र भी वह जानता होगा । कवचकुंडलहरण के समय जब कर्ण ने इन्द्र से कहा कि, आपके इस तरह मेरे पास आनेकी पूर्वसूचना मुझे मिल चुकीथी, तब इन्द्र ने उत्तर दिया कि, मेरी योजना सूर्य को मालुम हो चुकी थी और उसनेही तुझे वह सूचना दी होगी । (वनपर्व ३१० - १८) ।

श्रीकृष्ण यह रहस्य शुरू से ही जानते थे इस आशय का एक वचन हरिवंश में है । श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाकर ब्रजवासियों की रक्षा की, तब उनकी प्रशंसा करते हुए इन्द्र ने श्रीकृष्ण से अनुरोध किया कि, कुंती के उदर से जन्मे (मेरे पुत्र) अर्जुन को सदा सहायता करते रहे । इसपर मैं कुंती , अर्जुन आदि से परिचित हूँ यह बताते हुए श्रीकृष्ण ने और कहा —

कानीनं चापि जानामि सवितुः प्रथमं सुतम्
पितृष्वसरि कर्णं वै प्रसूतं सूततां गतम् ॥ विष्णुपर्व १९-९७

"मेरी बुआ कुंती को कुवारी अवस्था में सूर्यसे हुआ प्रथम पुत्र कर्ण , जो जन्म के बाद सूत जाति का कहा जाता है, भी मैं जानता हूँ" । वस्तुतः महाभारत में श्रीकृष्ण को जिस ईश्वरी स्वरूप में चित्रित किया हैं वह देखते यह रहस्य उन्हें कभीभी अज्ञात रहना असंभव ही था ।

किन्तु इनके अलावा कर्ण का जन्म रहस्य कृष्णद्वैपायन व्यास, नारद एवं भीष्म भी जानते थे । कुरुक्षेत्र पर लड़ाई में भीष्म का पतन होकर वे शरशय्या पर पडनेबाद कर्ण उनसे मिलने गया । कौरव पक्ष छोडकर पांडवों को मिलने उसे समझाते हुए भीष्म ने कहा —

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता
सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया ॥ भीष्मपर्व १२२-९
कृष्णद्वैपायनाच्चैव तच्च सत्यं न संशयः ॥ १०

"महाबाहू कर्ण, तू राधापुत्र न होकर कौन्तेय (कुन्तीपुत्र) है ; तेरा पिता भी अधिरथ नही ; तू सूर्यपुत्र है ; मुझे यह नारद तथा कृष्णद्वैपायन से ज्ञात है, जो निःसंदेह सत्य है" । किन्तु कर्ण को यह इसके पूर्व मालुम हो गया था । कर्ण ने कौरव पक्ष छोडने फिर इन्कार कर दिया ।

नारद को यह रहस्य ज्ञात था इसका भीष्म के इस वचन के अलावा भी प्रमाण है । युद्धसमाप्ति पश्चात् कुंती द्वारा कर्ण का जन्मरहस्य जानने पर युधिष्ठिर को कर्णवध पर भारी शोक हुआ । उस समय युधिष्ठिर को कर्ण का समग्र चरित्र बताते हुए, नारद नें आरंभ में कहा कि, समाज में सूतपुत्र के रूप में प्रसिद्ध हुवा कर्ण असल में एक कुमारी कन्या के गर्भ से पैदा हुवा था । (शांतिपर्व २-३,४,५) ।

कुछ लेखकों के अनुसार विदुर को भी कर्ण का जन्मरहस्य ज्ञात था । किन्तु मुझे महाभारत में इसका पर्याप्त आधार नही मिला । युवा कौरव पांडवों की शस्त्रास्त्रशिक्षा पूर्ण होने बाद आचार्य द्रोण ने उसका जनता के समक्ष प्रदर्शन कराया (आदिपर्व अध्याय १३३ से १३६) । उस प्रसंग में संयोगवश कर्ण एवं अर्जुन आव्हानपूर्वक द्वंद्व युद्ध के लिये आमने सामने खडे हो गये । यह देखतेही, मेरेही दो पुत्र अब परस्पर लड़ेंगे इस कल्पना से कुंती मूर्च्छित हो गई । उस समय विदुर ने जलसिंचन कर उसे होश में लाया । किन्तु मात्र इतना आधार विदुर को कुंती के मन की वास्तविक व्यथा ज्ञात थी इस अनुमान के लिये पर्याप्त नही । कर्ण भी शस्त्रास्त्रों में अतिकुशल होने से इस द्वंद्व युद्ध में अर्जुन के जीवित को धोखा है इस विचार से कुंती व्यथित हुई होगी ऐसी भी विदुर की कल्पना होना संभव था । इसके अनेक वर्षो बाद हस्तिनापुर शांतिवार्ता के दिन कुंती कर्ण के पास गई उसके कुछही क्षण पूर्व विदुर कुंती से मिला था (उद्योगपर्व अध्याय १४४) । उस समय हुई बातचीत में कौरवपांडवों के गृहकलह पर ही चिंता व्यक्त होकर, कर्ण के जन्मरहस्य का कोई उल्लेख नही ।

कर्ण को जन्मरहस्य प्रथम किसने बताया ?

वह सूर्य ने नही बताया , न इन्द्र ने । श्रीकृष्ण तथा कुन्ती ने शांतिवार्ता के दिन उसका उच्चार कर्ण से करने पूर्व कर्ण वह रहस्य जान चुका था ।

ऐसा प्रतीत होता है कि, जबतक समाज में अपनी इज्जत बचाने स्वयं कुन्ती कर्ण का जन्मरहस्य प्रकट नही करना चाहती थी, तबतक वह रहस्य जानने वाले अन्य भी उसका उच्चार प्रायः टालते रहे । किन्तु कर्ण को उसका जन्मरहस्य हस्तिनापुर की शांतिवार्ता के कुछ ही समय पूर्व ज्ञात हुवा होगा यह अनुमान हमने ऊपर किया है । अन्य सारे शांति प्रयास विफल होकर स्वयं श्रीकृष्ण अंतिम शांतिवार्ता हेतु हस्तिनापुर जा रहे थे ; फिरभी दुर्योधन का दुराग्रही स्वभाव एवं धृतराष्ट्र की लाचार अवस्था सर्वविदित होनेसे श्रीकृष्ण के शांतिप्रयास की सफलता संदेहास्पदही थी । उपप्लव्य से निकलने पूर्व श्रीकृष्ण ने रोती

हुई द्रौपदी से कहा था कि, कौरवों ने न्यायसंगत सुलह न स्वीकार किया तो अंत में वे मारे जाकर , तू रो रही है उसी तरह उनकी विधवा स्त्रियाँ रोती रहेंगी (उद्योगपर्व अध्याय ८२) ।

इस परिस्थिति में इस अंतिम समय कर्ण को उसका कुन्तीपुत्रत्व बताकर (कौरवपांडव कुलयुद्ध हुआ तो भी) कुन्ती के ही पुत्रों में परस्पर घृणास्पद संघर्ष न हो ऐसा प्रयास करनेकी इच्छा नारद एवं श्रीकृष्ण को भी होना स्वाभाविक था। नारद ने इसके पूर्व भी पांडवों के जीवन में कुछ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। द्रौपदी स्वयंवर के बाद, उसके कारण पांडव बन्धुओं में आपस में कभी विरोध न हो इस उद्देश से नारद ने स्वयं इन्द्रप्रस्थ जाकर उन पाच भाईयों के लिये द्रौपदी के विषय में एक नियम डाल दिया था (आदिपर्व अध्याय २०७ से २११) । फिर उसके कुछ वर्ष बाद महर्षि नारद नें फिर इन्द्रप्रस्थ में पांडवों के पास आकर उन्हें राजसूय यज्ञ करने की प्रेरणा दी (सभापर्व अध्याय ५ से १२) । इस संदर्भ में महाभारतकार ने नारद की जो प्रशंसा की है (सभापर्व अध्याय ५) उसमें उन्हें 'संधिविग्रहतत्त्वज्ञ:' ऐसा कहा है (श्लोक ८) ।

श्रीकृष्ण की हस्तिनापुर शांतिवार्ता के समय नारद की उपस्थिति महाकवि ने विशेष रूप से दर्शायी भी है। श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जा रहे थे तब रास्ते में उन्हें कुछ महर्षी मिले, जो शांतिवार्ता में भगवान श्रीकृष्ण का भाषण प्रत्यक्ष श्रवण करना चाहते थे (उद्योगपर्व अध्याय ८३ श्लोक ६० से ७२);महाभारत के एक पाठ में उन ऋषियों के नाम भी दिये होकर उनमें नारद को प्रमुख बताया है । फिर प्रत्यक्ष शांतिवार्ता में उपस्थित उन ऋषियों का उल्लेख श्रीकृष्ण ''नारदप्रमुखान् ऋषीन्'' ऐसा करते हैं (अध्याय ९४ श्लोक ४१ से ४६) । इसके अलावा उस सभा में स्वयं नारद ने भाषण देकर दुर्योधन को समझाने का प्रयास भी किया (अध्याय १०६ से १२३) ।

यह सब संदर्भ ध्यान में लेते , नारद ने इस समय कर्ण को उसका जन्मरहस्य बताने का सोच कर हस्तिनापुर के रास्ते में श्रीकृष्ण को अपना विचार बताया, श्रीकृष्ण को भी वह (कुंती पुत्रों में संघर्ष टालने के अलावा) दुर्योधन के विरुद्ध 'भेदनीति' के प्रयोग की दृष्टि से भी उचित प्रतीत हुवा, और तदनुसार नारद ने हस्तिनापुर पहुंचतेही कर्ण को उसका जन्मरहस्य सर्वप्रथम कथन किया, यह निष्कर्ष सभी संबद्ध तथ्यों से एवं संकेतों से सुसंगत प्रतीत होता है। इसी कारण हस्तिनापुर पहुचनेपर श्रीकृष्ण जानते थे कि, कर्ण को (नारद द्वारा) उसका जन्मरहस्य ज्ञात हो गया है, और उसी संदर्भ मे उन्होंने कर्ण से अलग में वार्तालाप किया यह हमने ऊपर देखाही है।

यदि श्रीकृष्ण से नारद का इस विषय पर विचार विनिमय हस्तिनापुर के रास्ते में हुआ था, तो वे श्रीकृष्ण के पूर्व हस्तिनापुर पहुंचकर कर्ण को वह रहस्य कैसे बता सके ? वैसे तो नारद आकाशसंचारी थे (उद्योगपर्व ९४ - ४१) । किन्तु इस समय वे अन्य ऋषियों के साथ रास्ते से जा रहे थे इसका भी ख्याल किया, तो प्रकरण ५ में बताये अनुसार स्वयं श्रीकृष्ण का वह हस्तिनापुर प्रवास मात्र एक दिन का न होकर चार पाच दिन चला था , और उस दरम्यान नारदादि ऋषी शीघ्रतापूर्वक हस्तिनापुर पहुच सकते थे ।

कर्ण को उसका जन्मरहस्य नारद ने बताया होगा इसकी पुष्टि में महाभारत में एक विशेष संकेत भी है। जब कवचकुण्डल मांगने इन्द्र आने की पूर्वसूचना सूर्य ने कर्ण को दी , तब उसने कर्ण को अपना पितापुत्र संबंध न बताकर मात्र भक्त कहा (वनपर्व ३०० - २२, ३०१ - ८ ऊपर उद्धृत) । किन्तु उसीके साथ सूर्य ने यह भी कहा —

अस्ति चात्र परं किञ्चिदध्यात्मं देवनिर्मितम्
अतश्च त्वां ब्रवीम्येतत् क्रियतामविशङ्कया ॥ वनपर्व ३०१ -९
देवगुह्यं त्वया ज्ञातुं न शक्यं पुरुषर्षभ
तस्मान्नाख्यामि ते गुह्यं काले वेत्स्यति तद् भवान् ॥ १०

'' इस विषय में देवों की योजनानुसार एक रहस्य होने से मैं तुझे यह कह रहा हूँ, तू यह आशंकारहित होकर कर - ९ पुरुषश्रेष्ठ (कर्ण) , देवों का वह 'गुह्य' (रहस्य) तू इस समय नही जान सकेगा (इस समय तुझे वह ज्ञात होना देवों की योजना नही है), अत: मैं तुझे वह नही बता रहा हूँ ; किन्तु उचित समय पर तुझे वह ज्ञात होगा — १०'' । इस सदर्भ में जनमेजय ने वैशंपायन से पूछा , '' किं तद् गुह्यं न चाख्यातं कर्णायेहोष्णरश्मिना'' (३०३ - १ , 'सूर्य ने इस समय कर्ण को न बताया वह 'गुह्य' क्या था '); इसके उत्तर में वैशंपायन ने कर्णजन्म का पूरा वृत्तांत कथन किया।

महाभारतकार ने कर्ण के जन्मरहस्य के लिये विशेष रूप से प्रयुक्त यह 'देव गुह्यं' शब्दप्रयोग नारद ने युद्धसमाप्ति बाद युधिष्ठिर को कथन किये कर्ण के जन्मवृत्तांत के आरंभ में भी फिर आया है, ''गुह्यमेतत् तु देवानां कथयिष्यामि तेऽनघ'' (शांतिपर्व २ - ३, ऊपर उद्धृत) । यह शब्दसाम्य इस तर्क की पुष्टि करता है कि, महाभारत के अनुसार वह 'देवगुह्यं ' (कर्ण का जन्मरहस्य) देवर्षि नारद नें कर्ण को सर्वप्रथम बताया था। देवों की बातें इधर उधर पहुचाने में नारद की पौराणिक भूमिका प्रसिद्धही है।

नारद द्वारा कर्ण को वह रहस्य कथन पूर्ण विफल भी नही रहा। श्रीकृष्ण की शातिंवार्ता सभा में कर्ण एक अक्षर भी नही बोला। इसके पूर्व वह दुर्योधन की ओर से पांडवों के विरुद्ध कैसी उद्दाम बातें करता था यह ऊपर देखा है। किन्तु इस सभा में श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से स्वयं कर्ण का नाम लेकर तुच्छतापूर्वक कहा, ''दुर्योधन, तू दुःशासन, शूर कर्ण तथा शकुनी पर भरोसा कर रहा है, किन्तु ये पांडवों के विरुद्ध पराक्रम में अपर्याप्त ही होंगे'' (उद्योगपर्व १२४ - ४५, ४६, ४७) ; फिरभी अभिमानी कर्ण ने इसपर कुछ भी उत्तर नही दिया। श्रीकृष्ण ने उस सभा में स्वयं कर्ण के साम्ने और यह भी कहा —

नृशंसानामनार्याणां पुरुषाणां च भाषणम्
कर्णदुःशासनाभ्यां च त्वया च बहुशः कृतम् ॥ उद्योगपर्व १२८ -१२

''दुर्योधन, तेने, तथा कर्ण एवं दुःशासन ने (पाण्डवों के विरुद्ध) कई क्रूर एवं असभ्य पुरुषों के समान वचन कहे हैं''। इसपर दुःशासन ने तुरन्त उठकर प्रत्युत्तर दिया (१२८ - २२, २३, २४) ; किन्तु दो दिन पूर्व अपना जन्मरहस्य जानने वाला कर्ण मूक ही रहा! वह रहस्य ज्ञात होने पर भी दुर्योधन पक्ष त्यागने का उसने विचार नही किया ; फिर भी समाज में अपना पांडव द्वेष व्यक्त करने को उसकी प्रवृत्तीपर अंकुश लगा ऐसा दीखता है। ❑

सूचि

(उल्लेखित लेखक व रचना)

संस्कृत

'मैत्री उपनिषद', १५४-५५

लगध, 'वेदांग ज्योतिष', १४, १५४

'लक्षाभरण' (विराटपर्व भाष्य), ९,२५

वराहमिहिर 'बृहत्संहिता', १४,१६०

'विमलबोध' (महाभारत भाष्य), ११६

'विरोधार्थभंजिनी' (विराटपर्व भाष्य) ८,२५

'विषमपाद विवरण' (विराटपर्व भाष्य) ९, २५

वृद्धगर्ग, १४

'वेद', १५४

व्यास, कृष्णद्वैपायन, १, १६५ ,१६८,१७२-१७५

'शतपथ ब्राह्मण', ३०, २००

'सर्वज्ञनारायण' (महाभारत भाष्य), ३५

'सांख्यायन श्रौतसूत्र', १६५

हिंदी

कवीश्वर,ग.वा.'गीतातत्वमीमांसा'', २,१६४

खेडवाल, देवकीनंदन, 'भारतीय कालगणना', ५९, ६७

गीताप्रेस गोरखपुर, 'महाभारत का हिंदी अनुवाद', २५,९२, ११०, २१५

गुप्त, मैथिलीशरण, 'जयद्रथ वध ', १८२

गोरखप्रसाद, 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास,' १५४, १५७, १६७,२०२

चतुर्वेदी, गिरिधर शर्मा, 'गीताप्रवचन - गीता व्याख्यानमाला',७०, ७१

द्वारकादास हर्ष, 'महाभारत का अर्थ', १६४

'हिंदी शब्दसागर', ९५

'हिंदी विश्वकोश', १६८

इंग्रजी

Aurobindo "Essays on the Gita",१६४

Belvalkar, S.K., ६८, ११६-११७, १२१

Bhandarkar Research Institute, "Critical Edition of Mahabharata", ७०,८१,९४,१२८,१७२,१७३,१८१,१८६,१९१,१९७,१९८,२०२

Bhattacharya, T., १६२

" Cambridge History of India", १६५

" Columbia Encyclopedia " १५९,१६३

Daftari, K.L., " The Astronomical Method and Its Application....", ९,६६,६७,१२४,१२७,१३२,१३६,१७६,२०१

Dandekar, R.N., १२१

Desai, Mahadeo, " The Gita according to Gandhi", ९५

Dion Chrysotom, १६३

Eggermont, P.H.L., " The Chronology of the Reign of Asoka Moriya, १५९

Fanning, A. E., " Planets, Stars, and Galaxies," १५९

Hipparchus, १५९,१६०,१६६

"History and Culture of the Indian People", १२४

Homer, १६३

Hopkins, " The great Epic of India",१६३

"Indian Antiquary",१६३

"Inscriptionum Indicarum",१६३

Jacobi,१६३

Kane, P.V., "History of Dharmashastra", ३०, ६६, ७१, १२४, १२७, १३२, २००

Kohl, १४९,१६६

Mackenzie, D.A., "Indian Myth and Legend",२०८

Megasthenes,१६३

इस लेखक की कुछ अन्य रचना

THE METAPHYSICS OF BERKELEY

"..... in many ways an achievement of unusual merit .... outstanding philosophical merits of Mr. Kaveeshwar's work" -- **London Times, Literary Supplement.**

"A scholarly study of Berkeley's metaphysics. The exposition is clear, the treatment sympathetic, the criticisms acute." -- **C.E.M. Joad**, Britain.

" Your notable contribution to the history of **Berkeley's** Philosophy" -- **Dr. G. A. Johnston, Geneva.**

" Admirable exposition .... I respect the **achievement**" -- **Reviewer in `Philosophy', London.**

" It is a pity that our scholars do not bring out such books in abundance " -- **`Prabuddha Bharata or Awakened India'.**

ETHICS OF THE GITA

Comparative critical exposition of the psychological state of Arjuna, and the ethical gospel preached by Lord Krushna. Foreword Dr.S.Radakrishnan. Recognised as Learned Research Work by the University Grants Commission of India.

THE LAW OF KARMA

Lectures delivered at the University of Pune.

PROBLEMS OF CHILD EDUCATION IN INDIA

(Edited).Foreword by Dr.Rajendra Prasad,President of India

CHRONOLOGICAL SECRETS OF THE MAHABHARATA WAR.

गीता तत्व मीमांसा

"Ethics of the Gita" का हिंदी संस्करण

इंदु से हिन्दू

'हिन्दुस्थान' का मूल शब्द 'हिन्दू' यह विदेशी ईरानीयों ने 'सिंधू' का वैसा उच्चार कर भारतीयों को दिया नाम है, इस प्रचलित भ्रमात्मक कल्पना का खंडन कर, इस पुस्तक में भारतीय, चीनी, ईरानी, ग्रीक, अंग्रेज विचारकों का चिकित्सक परामर्श लेते हुए, प्रतिपादन किया है. कि भारतीयों का यह राष्ट्रीय संबोधन 'हिन्दू' भारत मे ही 'इन्दु' (=चन्द्र =सर्वश्रेष्ठ) का प्राकृत उच्चारण होकर, स्वयं भारतीयों ने स्वाभिमानपूर्वक धारण किया है।

गीता तत्व मीमांसा

"Ethics of the Gita" का मराठी संस्करण.